संस्कृत
पत्रकारिता
का
इतिहास

सागर विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध

प्रथम संस्करण
वसन्त पंचमी २०३३

मूल्य : पचास रुपये

विवेक प्रकाशन
सी ११/१७ माडल टाउन
दिल्ली-१०००९

संस्कृत पत्रकारिता का इतिहास

लेखक

डॉ० राम गोपाल मिश्र

एम० ए०, पी-एच० डी०, साहित्याचार्य

पितृकुल के समुद्धारक, श्री सीताराम के उपासक
पूज्यपितृव्य
श्री स्वामी सियावरशरण
को
सादर समर्पित

जगति निखिलविद्यासिन्धुमुष्टिन्धयानां
परभणितिपरीक्षा युज्यते सज्जनानाम् ।
तदिह मम प्रबन्धे दूषणं भूषणं वा
भवति यदि विदग्धैस्तद्ध्यवश्यं विमृश्यम् ॥

पुरोवाक्

संस्कृत ही विश्व का वह अनन्य साहित्य है, जिससे मानवता की प्रथम अभिव्यक्ति का परिचय मिलता है। संस्कृत साहित्य के द्वारा सुदूर प्राचीन युग से आज तक के मानव के श्रेष्टतम विचारों की सरिता प्रवाहित हुई है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि विश्व के अनेक भागों में अच्छी से अच्छी भाषायें विकसित हुई और उनमें सत्साहित्य की सर्जना हुई, किन्तु उन सब की चमक-दमक कुछ शताब्दियों तक ही रही और अन्य भाषाओं को अपने स्थान पर प्रतिष्ठित करके वे स्वयं विलीन-प्राय हो गई। केवल संस्कृत ही अमर रही, जो विश्व की असंख्य भाषाओं को अनुप्राणित करती हुई, स्वयं इतनी उदात्त, लावण्यमयी और रस-निर्भर बनी रही कि आज तक भारत की या विश्व की कोई भाषा उसे दूरवर्ती बना देने का साहस नहीं कर सकी। ऐसा लगता है कि जिन महामानवों ने संस्कृत का आदि काल से पल्लवन किया है, उन्हें हिमालय ने एक ऊँचाई दी है और गंगा ने उन्हें पावन शक्ति दी है, जिसके बल पर उनकी सर्जना अनुत्तम और अमर है।

परतन्त्रता की शृंखलाओं से निगडित भारत मूर्छित सा हो कर आत्म-विस्मृति के क्षणों में अपनी स्वर्णिम उपलब्धियों को खोने सा लगा था। स्वतन्त्र होने पर भी भाव पारतन्त्र्य की शृंखलायें अभी वह नहीं तोड़ पा रहा है। उसने अपना देशाधिकार तो शनैः शनैः बहुत खोया है, कालाधिकार को भी नगण्य सा मान कर तीव्र गति से किसी ओर कहीं कुछ खोजने जा रहा, उनकी पद्धति पर, जिनकी अपनी निजी उपलब्धियाँ शाश्वत मान दण्डों से आँकने पर विगलित सी सिद्ध होती हैं।

भारत सदा से महामनीषियों का देश रहा है। उन महामनीषियों ने मानवता को अपने जीवन-दर्शन के प्रकाश में, अपने निजी कर्मयोग के द्वारा जहाँ तक हमें पहुँचाया है, उसके आगे हमें जाना है। उनके शाश्वत, दिव्य और सांस्कृतिक नाद में आपका दिया जो कुछ घटिया है, वह घिस कर वैसे ही मिट जायेगा, जैसे गंगा जल में कूड़ा-करकट। संस्कृत की वाग्धारा में जब आप स्नान करते हैं तो कोटि कोटि वर्षों के महामनीषियों और

महर्षियों की विचार-तरंगिणी आप को उस अनन्त ज्ञान, दर्शन और रस की ओर उन्मुक्त कर देती है, जो सदा सदा के लिए आप को पूर्णता प्रदान करते हैं।

उपर्युक्त विचारों से प्रेरित हो कर सागर विश्वविद्यालय ने आधुनिक सांस्कृतिक निधियों का अनुसन्धान करके उन्हें लोकोपयोगी बनाने का प्रयास विगत तीस वर्षों से किया है। कार्य विशाल है। इस महायज्ञ में अगणित छोटे-बड़े छात्रों का योगदान रहा है। इनमें डा० रामगोपाल मिश्र का कृतित्व आपके समक्ष है। इन्होंने उन्नीसवीं और बीसवीं शती की सांस्कृतिक वाग्धारा में समाज को अवगाहन करने की जो सुविधा अपने शोध-निबन्ध द्वारा प्रदान की है, इसके पीछे उनकी तपोमयी साधना है। आशा है, भविष्य में भी उनकी साधना निरन्तर नई-नई कृतियों के द्वारा भारत में भारती का प्रकाश समुज्ज्वल करती हुई लोक को शाश्वत पावन पथ पर अग्रसर करती रहेगी।

रामजी उपाध्याय
एम० ए०, डी० फिल०, डी० लिट०

आचार्य एवं अध्यक्ष
संस्कृत विभाग
सागर विश्वविद्यालय
सागर, म० प्र०

सिद्धवाक्

'संस्कृत पत्रकारिता का इतिहास' नामक पुस्तक को मैंने यत्र तत्र बड़ी सावधानी के साथ पढ़ा। उन्नीसवीं तथा बीसवीं शती की समस्त संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं का प्रामाणिक परिचय प्रस्तुत पुस्तक में प्राप्त हो जाता है। सन् १८६६ में **काशीविद्यासुधानिधिः** नामक मासिक पत्रिका के प्रकाशन से ही संस्कृत पत्रकारिता का इतिहास प्रारम्भ होता है। काशीविद्यासुधानिधिः तथा **काव्यमाला** इन दोनों पत्रिकाओं में संस्कृत के अप्रकाशित तथा दुर्लभ ग्रंथों का प्रकाशन होता था। श्रीमान् विद्यावाचस्पति पण्डित श्री अप्पाशास्त्री राशिवडेकर की **संस्कृतचन्द्रिका** प्रकाण्ड पण्डितों का मनस्तोप करने में समर्थ हुई थी। कुछ पत्रिकाओं में केवल संस्कृत की समस्यापूर्ति ही प्रकाशित होती थी। त्रैमासिक, मासिक, पाक्षिक, साप्ताहिक तथा दैनिक सभी प्रकार के संस्कृत पत्र पिछले सौ वर्ष में प्रकाशित होते रहे हैं। कुछ नियमित, कुछ अनियमित, कुछ दीर्घकालस्थायी तथा कुछ अल्पकालस्थायी रहे। इन पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादकों का प्रमुख उद्देश्य संस्कृत भाषा का प्रचार तथा प्रसार करना था। अभिनव गद्य-पद्यमयी रचनाओं तथा नव-नव कथा-आख्यायिकाओं से ये पत्रिकाएँ मण्डित रहती थीं। संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादकों के सामने दो प्रधान समस्याएँ रहीं। पहली, लेखकों के लेख नहीं मिलते थे। दूसरी, ग्राहक शुल्क नहीं भेजते थे।

इन सम्पादक विद्वानों की संस्कृतानुरागिता, संस्कृत-निष्ठा तथा त्यागभावना ही संस्कृत पत्रिकाओं के प्रकाशन का एकमात्र अवलम्बन थी। लेखकों तथा ग्राहकों के अभाव की चर्चा प्रायः सभी संस्कृत पत्रिकाओं के सम्पादकीय वक्तव्यों तथा निवेदन-टिप्पणियों में मिलती है। प्रतिवादभयंकर श्री अण्णङ्गराचार्य ने तो अपनी **वैदिकमनोहरा** नामक मासिक पत्रिका स्वयं ही चलाई। कभी भी किसी लेखक का एक भी लेख स्वीकार नहीं किया। उन्होंने सन् १९६३ में मुझे स्वयं कहा था 'जब मेरी लेखनी में शक्ति नहीं रहेगी, तब दूसरे लेखकों की शरण लूँगा'। पण्डित प्रवर श्री अप्पाशास्त्री और प्रतिवादभयङ्कर श्री अण्णङ्गराचार्य इस शताब्दी के उन सिद्धवाक् तपस्वी तथा वीतराग विद्वानों में से हैं, जिन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन संस्कृत की सेवा में निस्स्वार्थ

भावना से समर्पित कर दिया। पण्डित श्री अप्पाशास्त्री ने अपने स्वरचित अनेक उपन्यास, आलोचनाएँ, निबन्ध, स्वोपज्ञ टीका-टिप्पणियाँ, काव्य तथा गीत प्रकाशित करके अपनी पत्रिका को चलाया था और भगवती सुरसरस्वती की अनोखी सेवा की थी। मैं उन सभी सम्पादक विद्वानों के चरणों में सादर तथा सभक्त्युन्मेष श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ, जिन्होने अपने अथक परिश्रम, त्याग तथा निष्ठा से इन संस्कृत पत्रिकाओं को सँजोया था।

मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि डा० राम गोपाल मिश्र ने अपनी पुस्तक में संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं के ऐतिहासिक क्रमिक परिचय के साथ सम्पादकों के व्यक्तित्व, पाण्डित्य, शैली तथा संस्कृत प्रेम-निष्ठा का पूर्ण तथा प्रामाणिक परिचय प्रस्तुत किया है। संस्कृत पत्रकारिता पर यह प्रथम पुस्तक है और मुझे आशा है कि संस्कृत के विद्वान् इससे प्रेरणा तथा लाभ उठायेंगे। यदि परिशिष्ट में उन मूल ग्रंथों की सूची जुड़ जाती जो **काशीविद्यासुधानिधिः** तथा **काव्यमाला** आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए थे तो संस्कृत पण्डितों तथा आधुनिक शोधच्छात्रों का महान् हित होता। संस्कृत पत्रकारिता के इस अछूते क्षेत्र पर प्रामाणिक सामग्री जुटाने की प्रथम प्रकल्पना के अवसर पर मैं, मेरे सहकर्मी युवा पण्डित डा० राम गोपाल मिश्र का हार्दिक स्वागत करता हूँ। मुझे पूरा विश्वास है कि संस्कृत जगत् डा० मिश्र की अनेक प्रौढ़ रचनाओं से कालान्तर में लाभान्वित होगा।

रसिक विहारी जोशी
एम० ए०, पी-एच० डी०, डी० लिट० (पेरिस)

आचार्य एवं अध्यक्ष
संस्कृत विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली

वाग्द्वार

इदं गुरुभ्यः पूर्वेभ्यः नमोवाकं प्रशास्महे-

संस्कृत पत्रकारिता का इतिहास नामक पुस्तक विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए मुझे अपार हर्ष हो रहा है क्योंकि साहित्य के इतिहास में संस्कृत पत्रकारिता सर्वथा उपेक्षित पक्ष रहा है। आधुनिक संस्कृत साहित्य के अध्येताओं के लिए इस पक्ष का प्रामाणिक इतिहास अब तक अनुपलब्ध था। संस्कृतज्ञों की भी सामान्य धारणा है कि महाभारत के पर्वों की संख्या से अधिक शायद ही संस्कृत की पत्र-पत्रिकायें प्रकाशित हुई हों। इस धारणा का निर्मूलन प्रकृत ग्रंथ से सहज ही में हो जायगा और साथ ही यह भी प्रतीत होगा कि उन्नीसवीं शती में ही ऐसी अनेक पत्र-पत्रिकायें प्रकाशित हुई हैं जिनका प्रखर स्वर आज भी दिशायों को मुखरित करने में समर्थ है।

संस्कृत पत्रकारिता के इतिहास पर जब मैंने कार्य करना आरम्भ किया, उस समय ऐसा लगा था जैसे मरुस्थल में जलान्वेषण कर रहा हूँ परन्तु धीरे धीरे विपुल पत्र-पत्रिकाओं के मिलने से कार्य सुकर होता गया। प्रारम्भ में अनेक विद्वानों से 'नोचितस्तव विषयः' का तीव्र स्वर सुनता रहा। कई विद्वानों ने यही कहा कि कौन इन्हें पढ़ता है, न तो ये सुन्दर चित्रों से सुसज्जित रहती हैं कि इन्हें बच्चे देख सकें और न प्रौढ़ निबन्ध रहते हैं कि विद्वान् इन्हें पढ़े। अतः संस्कृत पत्रकारिता अल्प प्रयत्न से कीर्ति-कौमुदी को शीघ्र प्राप्त करने की चेष्टा मात्र है। महाकवि कालिदास अपने को मन्दमति कह कर कवि-कर्म में प्रवृत्त हुए परन्तु आज ये सम्पादक अपने को सर्वज्ञ मानकर पत्र-पत्रिका में अनर्गल सामग्री प्रकाशित करते रहते हैं। संस्कृत पत्रकारिता से बुद्धि-वर्धन तो दूर रहा, प्रत्युत अव्यवस्थित एवं त्रुटिपूर्ण मुद्रण से अर्थ ज्ञान की अपेक्षा अनर्थ की प्रतीति होती है—आदि बातें मुझे इस विषय पर कार्य करते समय तथ्य रहित प्रतीत हुई। ग्राहकों, सम्पादकों आदि के विचारों से अवगत होने पर ऐसा लगा जैसे यह सब संस्कृत पत्रकारिता की गरिमा को न जानने के कारण हुआ है। इस विषय की गरिमा ने ही मुझे कार्य करने की प्रेरणा प्रदान की है। यद्यपि इस कार्य में आने वाली अनेक कठिनाइयों का

आभास था। संस्कृत की अधिकांश प्राचीन पत्र-पत्रिकाओं की प्रतियाँ दुष्प्राप्य हैं। जो मिलती भी हैं, वे अधूरी हैं। इन जीर्ण-शीर्ण पत्र-पत्रिकाओं को उपलब्ध कराने में अनेक महनीय विद्वानों का सहयोग रहा है। जिन विद्वानों और महानुभावों के परामर्श और वरद हस्त से यह कार्य सम्पन्न हो सका है, उन में कीर्तिशेष प्रख्यात मनीषी पद्मभूषण महामहोपाध्याय गोपीनाथ जी कविराज तथा प्रो० चिन्ताहरण चक्रवर्ती जी का मैं स्मरण करता हूँ और उनके उपकार के लिए अधमर्णता स्वीकार करता हूँ। संस्कृत-संसार के प्रख्यात विद्वान् पद्मभूषण डा० वे० राघवन जी का विशेष कृतज्ञ हूँ जिन्होंने समय समय पर मेरा मार्ग दर्शन किया है और मद्रास में रहते समय मैंने उन के निजी पुस्तकालय का सदुपयोग किया है। इस समय अन्य विद्वानों में प्रतिवादभयंकर स्वामी अण्णङ्गराचार्य (कांची), डा० रुद्रदेव त्रिपाठी (दिल्ली), डा० लक्ष्मण नारायण शुक्ल (इन्दौर), श्री गणेश राम शर्मा (उदयपुर) तथा अन्य असंख्य संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादकों का आभार प्रदर्शित करता हूँ जिन्होंने अनेक प्रकार से मेरी सतत सहायता की है

संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं की प्राप्ति के लिए मैंने भारत-भूमि का परिभ्रमण किया। उत्तर से दक्षिण तक देश-दर्शन का अपूर्व अवसर मिला है। अनेक प्रख्यात मनीषियों के सम्पर्क में आने से मेरा तमसाच्छन्न पथ सतत सत्परामर्श-ज्योति से आलोकित होता रहा है। मद्रास, बंगलौर, मैसूर, कलकत्ता, काशी, उज्जयिनी, लखनऊ, प्रयाग, श्रीनगर, बम्बई, दिल्ली आदि स्थानों में जाकर अनुसन्धान किया और अनेक विद्वानों के सम्पर्क में आने का सौभाग्य मिला। इन स्थानों के अनेक विद्वानों ने लुप्त पत्र-पत्रिकाओं का परिचय प्रदान कर मुझे अनुग्रहीत किया है। उन सबका प्रबन्धकर्ता यावज्जीवन कृतज्ञ है। मैं उन सभी सम्पादकों को सादर, श्रद्धा पूर्वक प्रणाम करता हूँ जिनका त्याग, उत्साह और भारती की सेवा से सम्बन्ध रहा है। संस्कृत पत्रकारिता को सौभाग्य से विशिष्ट पत्रकारों का योग तथा प्रत्येक प्रदेश के मूर्धन्य मनीषियों का सहयोग मिला है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी भी संस्कृत पत्रकारिता से सम्बन्धित रहे हैं।

विश्व साहित्य में पत्रकारिता एक अभिनव कोटि का साहित्य है। भारत में इस कोटि के साहित्य का विकास विविध भाषाओं में हुआ और इस विकास का इतिहास तत्साहित्य में रुचि रखने वालों को प्राप्त है। किन्तु दुर्भाग्यवश अभी तक संस्कृत पत्रकारिता के सम्बन्ध में संस्कृत के विशेषज्ञों को भी पर्याप्त ज्ञान नही है। साधारणतः संस्कृतज्ञों के लिए ये पत्र-पत्रिकायें अज्ञात रही

हैं। संस्कृत में प्रकाशित दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक, त्रैमासिक आदि पत्र-पत्रिकाओं का परिचय अनुसन्धानात्मक प्रणाली पर प्रस्तुत यह प्रथम शोध-प्रबन्ध है। जहाँ तक शोध की वैज्ञानिक प्रक्रिया का सम्बन्ध है, मैंने उसका सतत अनुपालन किया है, फिर भी अपनी परिधि के भीतर ही उसकी परिक्रमा है। परिक्रमा के मध्य स्थित लक्ष्य-विग्रह का परित्याग नहीं किया गया है।

उन्नीसवीं शती के मध्ययुगानन्तर संस्कृत पत्रकारिता का इतिहास आरम्भ होता है। उस समय से लेकर आजतक भारत के प्रायः सभी भू-भागों से संस्कृत पत्र-पत्रिकायें प्रकाशित हुई हैं। संस्कृत पत्रकारिता प्रदेश विशेष की धरोहर नहीं है। वह कश्मीर से कन्याकुमारी तक तथा कच्छ से कामरुप तक प्रसृत है। इसका आयाम विशाल है और शायद ही ऐसी कोई भारतीय भाषा हो जिसकी पत्रकारिता इतनी व्यापक परिधि उन्नीसवीं शती में रख पायी है। इस असीमिति परिधि के भीतर अनेक महामनीषियों ने अपनी मातृभाषा का मोह त्याग कर संस्कृत पत्रकारिता अपनायी है। इनमें महनीय रचनाओं का प्रकाशन हुआ है। इन पत्र-पत्रिकाओं का आद्यन्त अनुशीलन किये बिना आधुनिक संस्कृत साहित्य की विविध एवं वैचित्र्यपूर्ण गतिविधि का ज्ञान नहीं हो सकता है।

भारत वर्ष के लिए विगत सौ वर्ष का इतिहास सामाजिक और सांस्कृतिक अभ्युत्थान की दृष्टि से भी विशेष महत्त्वपूर्ण रहा है। अनेक उथल-पुथल का सम्यक् निरूपण संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं में हुआ है। सार्वदेशिक और समकालीन प्रवृत्तियों का ज्ञान यदि एक भाषा के माध्यम से प्राप्त करना है तो संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं का पर्यालोचन करना ही पड़ेगा। इसमें इस अनाकलित नियतकालिक साहित्य के साथ साथ प्रत्येक पत्र-पत्रिका का परिचय प्रदान किया गया है। यद्यपि आज संस्कृत में भी रेडियों पत्रकारिता पनप रही है परन्तु वह दृश्य विधान से परे है। केवल श्रव्य है। इसी प्रकार स्वातन्त्र्य प्राप्ति के पश्चात् भारतीय जन-जीवन में संस्कृत अनेक प्रकार से अपनायी गयी है। वन्दे मातरम्, सत्यमेव जयते, योगक्षेमं वहाम्यहम्, अहर्निशं सेवामहे आदि वाक्य मिलने पर भी संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं में संस्कृत के महत्त्व का प्रतिपादन सतत होता रहा है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में संस्कृत पत्रकारिता के प्राचीनतम रूप, विकास-क्रम और उनके प्रकाशन की प्रेरणा वर्णित है। इसी अध्याय के प्रारम्भ में पूर्वाचार्यों के शोध का इतिहास भी वर्णित है। परम्परा से प्राप्त ज्ञान आगे वर्णित हुआ है। अतः पूर्वाचार्यों की विचारणा का सम्बल सतत सहायक सिद्ध हुआ है। उसमें संशोधन अपेक्षित था, जिसे मैंने आद्यन्त

किया है। पूर्वाचार्यों की विचार सरणि में नवीन तथ्य सामने आते गये हैं। इसके पश्चात् अनेक अध्यायों में उन्नीसवीं और बीसवीं शती में अद्यावधि प्रकाशित विविध प्रकार की पत्र-पत्रिकाओं का विवेचन किया है। ऐसी भी पत्र-पत्रिकाओं की चर्चा मिलेगी, जिनके अंक आज अनुपलब्ध हैं, केवल उनकी सूचना अन्यत्र मिलती है। संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन के उद्देश्य का सप्रमाण विवेचन अग्रिम सोपान है। इन पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादकों को अनेक विषम परिस्थितियों का सामना करना पड़ा है। स्व-अस्तित्व के रक्षा की अगली सीढ़ी है। सप्तम अध्याय में विशिष्ट सम्पादकों का जीवन-वृत्त वर्णित है। प्रत्येक सम्पादक का परिचय एवं चित्र संयोजन के नारद-मोह का भंग धनाभाव के कारण हुआ है, जिससे समस्त संस्कृत पत्र-पत्रिकायें ग्रस्त रही है, फिर उनका इतिहास क्यों न हो? आठवें अध्याय में संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं का क्रमिक इतिहास और उनकी उपादेयता आदि की चर्चा है। इस प्रकार अनेक भ्रान्त धारणाओं का निराकरण करते हुए अब तक ज्ञात, अज्ञात और अल्प ज्ञात पत्र-पत्रिकाओं का परिचय दिया गया है।

पत्र-पत्रिकाओं का अध्ययन करते समय उनसे सम्बन्धित विविध विषयों पर विचार किया गया है। देश और काल का प्रभाव, प्रतिपाद्य विषय आदि का पर्यालोचन किया गया है। यथासंभव पत्र-पत्रिका का सर्वाङ्गीण चित्र प्रस्तुत करने के लिए अधिकांश सामग्री मूल रूप में प्रस्तुत की गयी है।

संस्कृत पत्रकारिता का इतिहास प्रस्तुत कराने का सर्वाधिक श्रेय गुरुवर्य प्रो० रामजी उपाध्याय, आचार्य तथा अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, सागर विश्व-विद्यालय को है। उन्हीं के निर्देशन में यह शोध कार्य सम्पन्न हुआ है। विषय-सचयन, महत्त्व-प्रतिपादन, उत्साह-सवर्धन तथा मार्ग-प्रदर्शन आदि का समस्त कार्य प्रो० उपाध्याय जी ने किया है। पुनः पुस्तक के लिए पुरोवाक् लिख कर मेरे ऊपर अपार स्नेह-वृष्टि की है और इसके प्रकाशन के लिए सतत प्रेरित किया है। सागरिका के प्रकाशन से अयाचित सेवा का संवरण कर उन्होंने संस्कृत जगत् का महान् उपकार किया है। मैं भक्ति पूर्वक नमन करता हुआ, उनका कृतज्ञ हूँ।

इस शोध-ग्रंथ के परीक्षकों का नाम लेने से मैं गौरवान्वित हो जाता हूँ और पुस्तक का महत्त्व उनकी बहुमूल्य सम्मतियों से असंख्य गुना हो जाता है। महामहोपाध्याय पद्मभूषण डा० गोपीनाथ कविराज जी तथा प्रख्यात भाषाविद् डा० बाबूराम सक्सेना जी, उपकुलपति, रविशंकर विश्वविद्यालय रायपुर, इस प्रबन्ध के परीक्षक रहे हैं। आप दोनों महामनीषियों के सुझावों

से मैं अनेक बार उपकृत हुआ हूँ। आप दोनों का आभार प्रकट करने में आनन्द का अनुभव करता हूँ।

दिल्ली में प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशन के लिए सतत प्रेरणा देने वाले विश्व-विश्रुत विद्वान् प्रो० रसिक विहारी जोशी, आचार्य तथा अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली का मैं बहुत ही हृदय से आभारी हूँ। अत्यधिक व्यस्त रहने पर भी पुरोवाक्, जिसे मैं अपने लिए सिद्धवाक् मानता हूँ, लिखकर मेरे ऊपर अपार अनुग्रह किया है। उनके प्रति हार्दिक आभार प्रकट करना अपना पुनीततम कर्तव्य समझता हूँ।

इस कार्य को मैंने बड़े ही धैर्य और निष्ठा से किया है। इस कार्य में परिश्रम तथा धन अधिक लगा है परन्तु इस परिश्रम में मुझे आनन्द मिला है। प्रकाशन के समय में गृह कार्यों से सर्वथा मुक्ति एवं सहयोग प्रदान करने वाली पत्नी श्रीमती आभा मिश्रा का भी उपकृत हूँ।

अग्रजकल्प डा० मधुसूदन मिश्र एम०ए०,पी-एच्०डी०, उपनिदेशक, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान दिल्ली का मैं बहुत ही हृदय से आभारी हूँ जिनसे स्वेच्छा से सतत परामर्श करता रहा हूँ।

श्याम प्रिंटिंग एजेंन्सी के अक्षर संयोजक विधि चन्द और रामधनी को धन्यवाद देता हूँ, जिन्होंने लगन के साथ शीघ्र प्रकाशन में सहयोग दिया है। यह कार्य प्रेस के मालिक श्री शाम लाल की मैत्री से समय पर हो पाया है। उनकी प्रगति की कामना करता हूँ और उनके सहयोग के लिए धन्यवाद देता हूँ।

भारत के प्रायः सभी विश्वविद्यालयों के पुस्तकालयाध्यक्षों ने मेरी भरपूर सहायता की है। इसी प्रकार काशी नागरी प्रचारिणी सभा, सरस्वती भवन तथा विश्वनाथ पुस्तकालय काशी के अधिकारिओं को साञ्जलि प्रणाम करता हूँ, जिन्होंनें मेरे साथ स्वयं कार्य कर निष्काम कर्म को सार्थक किया है। काशी ऐसी नगरी है जहाँ से प्रथम संस्कृत पत्रिका निकली तथा संख्या में भी काशी आज तक अग्रणी है। इनके अधिकारियों के प्रति आभार प्रदर्शित करता हूँ।

अपनी अल्पमति से यथासाध्य प्रयास एवं सीमित साधनों का उपयोग कर यह पुस्तक संस्कृत के मनीषियों से कर-कमलों मे है। इस विशाल कार्य क्षेत्र में मैंने अनेक सम्पादकों के कृतित्व को प्रकाश में लाने का प्रथम उपक्रम किया है। तनुवाग्विभव होने पर भी यथेष्ट विवेचन करने का प्रयत्न किया गया है। संस्कृत तथा संस्कृतेतर पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित वाङ्मय का सर्वेक्षण प्रस्तुत पुस्तक में अर्थाभाव के कारण नही दिया जा रहा है।

सामयिक संस्कृत साहित्य नाम से भविष्य में विद्वानों के शुभाशिर्वाद से प्रस्तुत करने की योजना है, क्योंकि इनमें चिरस्थायी साहित्य प्रचुर मात्रा में प्रकाशित हुआ है।

मेरा विश्वास है कि संस्कृत पत्रकारिता के विभिन्न पहलुओं का ऐतिहासिक और प्रामाणिक अध्ययन प्रथम बार मनीषियों के समक्ष प्रस्तुत किया जा रहा है। इस श्रमसाध्य कार्य में मुझे पूर्ण आत्मतोष है। भारत की किसी भी भाषा में लिखी संस्कृत पत्रकारिता पर यह प्रथम पुस्तक है, जिसमें संस्कृत पत्रकारिता का सांगोपांग विवेचन और पूर्ण जानकारी दी गयी है। मैंने यह कार्य स्वलोचननियोजनया किया है। नयन निमीलित तथ्यान्वेषण नहीं है। तथ्य पूर्ण विवेचन ही है। प्रत्येक संस्कृत अनुसन्धित्सु के लिये यह ग्रंथ दीपशिखा की तरह उनके पथ को आलोकित करेगा। पुस्तक में अज्ञानजन्य कृष्ण पक्ष मेरा अपना है। महामतिमानों से निवेदन है कि वे अपने सुझावों से शुक्लपक्ष प्रदान करें ताकि आगे मैं संशोधन कर सकूँ। यही मेरी विनम्र याचना है और बड़ों से की गयी प्रार्थना फलवती होती है।

पी० जी० डी० ए० वी० कालेज
नेहरू नगर
नयी दिल्ली-२४

मनीषिशिष्य
राम गोपाल मिश्र

अनुक्रम

प्रथम अध्याय

विषय-प्रवेश

संस्कृत पत्रकारिता पर शोध ऐतिहासिक मूल्याङ्कन

आज से लगभग एक सौ दस वर्ष पहले संस्कृत का प्रथम पत्र काशीविद्या-सुधानिधि: बनारस से १ जून १८६६ ई० को प्रकाशित हुआ। इसके पश्चात् अनेक प्रदेशों से अनेक संस्कृत पत्र-पत्रिकायें प्रकाशित हुई। इन पत्र-पत्रिकाओं में वैविध्य पूर्ण सामग्री का प्रकाशन हुआ है, जिसका कि आकलन और विवेचन आवश्यक है। इन पत्र-पत्रिकाओं के शोध के इतिहास का काल-क्रमानुसार विवेचन इस प्रकार है।

अर्नेस्ट हास

आज से सौ वर्ष पहले डा० हास ने संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं का विवरण प्रस्तुत किया। १८७६ ई० में उन्होंने **काशीविद्यासुधानिधि:** और **प्रत्नकम्र-नन्दिनी** दो संस्कृत पत्रिकाओं का एक सामान्य परिचय प्रदान किया जिसमें सम्पादक का नाम, प्रकाशन स्थल, आकार आदि बातें ही कही गयीं हैं। पत्र-पत्रिकाओं का विस्तृत अध्ययन नहीं किया गया है।[1] इस ग्रन्थ में **विद्योदय** का परिचय नहीं मिलता, जिसका कि प्रकाशन ग्रन्थ के प्रकाशित होने के पूर्व हो चुका था, तथापि संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं के सम्बन्ध में सूचना प्रदान करने का श्रेय सर्व प्रथम डा० हास को ही है।

मैक्स मूलर

दिसम्बर १८८२ ई० में मैक्स मूलर ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक **इन्डिया ह्वाट कैन इट टीच अस** में संस्कृत के व्यापक अध्ययन और अध्यापन का उल्लेख किया है[2] तथा उन्होंने उस समय तक प्रकाशित संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं

---

१. Dr. Ernst Hass : catalogue of Sanskrit and Pali Books in the British Museum, P. 101, 1876.

२. Max Muller : INDIA what can it teach us. p, 72-73

का संक्षिप्त किन्तु विशिष्ट परिचय दिया। इस ग्रन्थ में काशीविद्यासुधानिधि, प्रत्नकम्रनन्दिनी, विद्योदय और षड्दर्शनचिन्तनिका का उल्लेख है। उन्होंने यह भी सूचित किया कि उन्हें अन्य संस्कृत की पत्र-पत्रिकायें ज्ञात नहीं हैं।[1]

काशीविद्यासुधानिधि पत्रिका में प्रकाशित साहित्य पर वैदुष्यपूर्ण टिप्पणी, प्रत्नकम्रनन्दिनी की बहुमूल्य सामग्री तथा विद्योदय के महत्त्वपूर्ण निबन्धों की चर्चा मैक्स मूलर ने की है। दो ऐसी पत्रिकाओं का उल्लेख किया, जिनमें संस्कृत के ग्रंथ भी प्रकाशित होते थे। हरिश्चन्द्र चन्द्रिका और तत्त्वबोधिनी में यत्र-तत्र संस्कृत में लेख निकलते रहते थे। उनके अनुसार संस्कृत ही एक ऐसी भाषा है जो आज भी इस विशाल देश के एक कोने से दूसरे कोने तक बोली और समझी जाती है।[2]

एल० डी० बर्नेट्

हास की तरह बर्नेट् ने १८९२ ई० में प्रकाशित ब्रिटिश कैटलाग में अनेक संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं का यथावत् परिचय दिया। इसका प्रथम प्रकाशन १८९२ ई० में हुआ, जिसमें १८७६ ई० से १८९२ ई० तक की पत्र-पत्रिकाओं का विवरण पीरिऑडिकल भाग में है। इसी प्रकार इसका द्वितीय प्रकाशन १९०८ ई० हुआ। इसमें १८९२ ई० से १९०६ ई० तक की संस्कृत पत्र-पत्रिकायें उल्लिखित हैं। १९२८ ई० में इसका तृतीय प्रकाशन हुआ जिसमें १९०६ ई० से १९२८ ई० तक प्रकाशित समस्त संस्कृत एवं संस्कृत मिश्रित पत्र-पत्रिकाओं की सूचनात्मक चर्चा है।[3]

उपर्युक्त तीनों ग्रन्थ संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं की सूचना की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं, परन्तु अपेक्षित सामग्री का विवरण नहीं मिलता है। भारत के विभिन्न भागों से प्रकाशित संस्कृत और संस्कृत मिश्रित पत्र-पत्रिकाओं की संख्या एवं सही विवरण इन ग्रन्थों में उपलब्ध है। सकलविद्याभिवर्धिनी, विद्यामार्तण्ड, विद्योदय, ग्रन्थमाला, आर्षविद्यासुधानिधि, बहुश्रुत, सूक्तिसुधा, संस्कृतचन्द्रिका, विद्यारत्नाकर, उषा आदि अनेक संस्कृत की पत्र-पत्रिकायें हैं। भारतदिवाकर, मिथिलामोद, द्वैतदुन्दुभि, वैष्णव सन्दर्भ, संस्कृत-

---

१. वही पृ० ७२।

२. वही पृ० ७१।

३. L. D. Barnett : A supplementary catologue of the Sanskrit Pali and Prakrit Books in the library of the British Museum. 1892, 1908. 1928. [Uder Periodicals]

भारती, आनन्द चन्द्रिका, वीरशैवमतप्रकाश, सरस्वती, ब्रह्मविद्या आदि संस्कृत मिश्रित पत्र-पत्रिकायें हैं, जिनका विवरण इन ग्रंथों में दिया गया है।

अप्पाशास्त्री राशिवडेकर

भारतीय विद्वानों में विद्यावाचस्पति अप्पाशास्त्री राशिवडेकर प्रथम विद्वान् हैं, जिन्होंने अनेक संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं का निर्देश और समीक्षा **संस्कृत चन्द्रिका** में किया जिसके कि वे सम्पादक थे। संस्कृतचन्द्रिका मासिक पत्रिका थी। उसका प्रकाशन १८९३ई० में हुआ था। पाँचवें वर्ष से इस पत्रिका के सम्पादक अप्पाशास्त्री हुए जो प्रकाण्ड पण्डित और अनेक शास्त्र ज्ञाता थे। संस्कृत-चन्द्रिका का सम्पादन उच्चकोटि का था। आज तक प्रकाशित संस्कृत पत्रिकाओं में उसका प्रमुख स्थान है। संस्कृत चन्द्रिका के नववत्सरारम्भ अंकों में अनेक पत्र-पत्रिकाओं की चर्चा मिलती है। कतिपय पत्रिकाओं का विज्ञापन तथा अनेक पत्र-पत्रिकाओं की समीक्षा इसमें मिलती है। अप्रकाशित पत्रों की भी चर्चा मिलती है। विद्योदय, विज्ञान-चिन्तामणि, काव्यकादम्बिनी, मञ्जुभाषिणी, विचक्षण, संस्कृत-रत्नाकर, ग्रन्थप्रदर्शिनी आदि पत्र-पत्रिकायें हैं जिनकी आलोचना इस पत्रिका में प्रकाशित हुई है। इस पत्रिका के वर्ष के प्रथम अंक संस्कृत पत्रकारिता के शोध पर पर्याप्त प्रकाश प्रदान करते हैं। यह पत्रिका अप्पाशास्त्री के सम्पादकत्व में १९०९ ई० तक प्रकाशित हुई। यद्यपि किसी भी पत्रिका का प्रारम्भकाल से ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में मूल्याङ्कन अप्पाशास्त्री का लक्ष्य नहीं था, तथापि १८९८ ई० से १९०९ ई० तक के पत्र-पत्रिकाओं का उल्लेख अप्पाशास्त्री ने संस्कृत चन्द्रिका में अनेक बार किया है।[1]

१९०७ ई० में **विन्तर नित्स** ने भारतीय साहित्य के इतिहास का लेखा अपने ग्रंथ में प्रस्तुत किया। उन्होंने संस्कृत भाषा के जीवित होने में सबल प्रमाण संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं को प्रदान किया। उनके अनुसार आज भी अनेक संस्कृत की पत्र-पत्रिकायें प्रकाशित हो रहीं हैं, अतः संस्कृत को मृत-भाषा घोषित करना समीचीन नहीं है[2]। इसके अतिरिक्त विन्तरनित्स ने अधिक विवरण संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं का नहीं प्रस्तुत किया।

---

१. संस्कृत चन्द्रिका : ७.३, ८.१, १०.३-६, ११.१-४, १३.२

२. M. Winternitz : History of Indian Literature, part I, p. 38-39,

१९१३ ई० में **संस्कृत-रत्नाकर** नामक मासिक पत्र में **वासन्तिक-प्रमोदः** शीर्षक के अन्तर्गत अनेक प्राचीन पत्र-पत्रिकाओं का उल्लेख मिलता है।[1] इस प्रमोद प्रधान निवन्ध में प्राचीन पत्रिकाओं का केवल नाम मिलता है। वे संस्कृत के प्रचार के लिए कार्य कर रहीं हैं—इस महत्त्वपूर्ण तथ्य का उन्मेष तथा संगठन शक्ति से कार्य के साफल्य का कथन है। रत्नाकर, विज्ञानचिन्तामणि, मञ्जुभाषिणी, उषा, शारदा, आर्यप्रभा, सहृदया आदि पत्र-पत्रिकायें इस दिशा में कार्य करने के लिए वचन वद्ध हैं।

१९१३ ई० में इम्पीरियल लाइब्रेरी कलकत्ता से प्रकाशित ग्रन्थ में भी संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं का यत्र तत्र विवरण मिलता है।[2] इसके द्वितीय संस्करण में १९३३ ई० तक की संस्कृत मिश्रित पत्र-पत्रिकाओं की सूचना संकलित की गयी है।

गुरु प्रसाद शास्त्री

१९१७ ई० में हिन्दी की प्रसिद्ध पत्रिका सरस्वती में गुरुप्रसाद शास्त्री का **संस्कृत भाषा में पत्र और पत्रिका** नामक निवन्ध प्रकाशित हुआ[3]। यह प्रथम निवन्ध है जिसमें अनेक संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं का वैविध्यपूर्ण एवं उनकी आर्थिक स्थित पर गम्भीर विवेचन मिलता है। अभी तक स्वतंत्र निवन्ध में इस प्रकार का विवेचन नहीं किया गया था। इसकी पूर्ति प्रथम वार गुरुप्रसाद शास्त्री द्वारा हुई। उन्होंने संस्कृत के वैभव, उपयोगिता और संरक्षण पर अपने विचारों के साथ-साथ प्रारम्भ से लेकर १९२७ ई० तक की पत्र-पत्रिकाओं की चर्चा की है। इस निवन्ध में ऐतिहासिकता पर ध्यान नहीं दिया गया है। कई पत्र-पत्रिकाओं का केवल नाम गिनाया गया है। प्रकाशन समय एवं स्थल आदि का भी निर्देश न होने से निवन्ध अपूर्ण सा लगता है। उन्होंने इस वात पर अधिक वल दिया है कि आधुनिक अनुसन्धानों का ज्ञान संस्कृतज्ञ के लिए आवश्यक है। यह तभी सम्भव है जव इस प्रकार के निवन्धों का प्रकाशन संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं में हो। इसमें

---

१. संस्कृतरत्नाकर, ९.९-११. पृ० १-७।

२. List of Periodicals received in the Imperial Library, calcatta, 1913, 1933.

३. सरस्वती, नवम्वर १९२७, भाग २२, खण्ड २, पृ० १२८४-१२८६

पण्डित, संस्कृतचन्द्रिका, विद्योदय, मित्रगोष्ठी, सूक्तिसुधा, सहृदया और शारदा पत्र-पत्रिकाओं का विस्तृत अध्ययन आर्थिक परिप्रेक्ष्य में किया गया है अन्य पत्रिकाओं का नहीं। अनेक पत्र-पत्रिकाओं का उल्लेख इस निबन्ध में नहीं है।

दीनानाथ शास्त्री सारस्वत

१६३६ ई० आगरा से प्रकाशित संस्कृत मासिक पत्रिका **कालिन्दी** में दीनानाथ शास्त्री का **संस्कृतपत्राणां साधारण इतिहासः** नामक निबन्ध प्रकाशित हुआ।[1] यही निबन्ध भारतोदय में भी प्रकाशित हुआ।[2] इस निबन्ध में कतिपय नयी पत्र-पत्रिकाओं का विवरण मिलता है। सुप्रभात, उद्योत, सूर्योदय, श्री, कालिन्दी, मञ्जूषा, पीयूषपत्रिका प्रधान हैं। निबन्ध में प्राचीन पत्र-पत्रिकाओं का नाम भी नहीं लिया गया है तथा पत्र-पत्रिकाओं के किसी भी पहलू पर पर्याप्त विवेचन नहीं किया गया है।

१६४१ ई० में इनका दूसरा निबन्ध **'संस्कृतपत्राणामनभिवृद्धौ कारण निर्देशः** श्रीः पत्रिका में प्रकाशित हुआ।[3] इसमें संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं की अनियमितता, धनाभाव, उत्साहादि की कमी, ग्राहकाभाव आदि बातों पर पर्याप्त विवेचन किया गया है। दोनों निबन्ध अपने परिवेष में सीमित होने पर भी महत्त्वपूर्ण हैं।

एम्० कृष्णमाचारियार

मई १६३७ ई० में एम्० कृष्णमाचारियार का संस्कृत साहित्य का इतिहास नामक महनीय ग्रंथ प्रकाशित हुआ[4]। कृष्णमाचारियार को आधुनिक संस्कृत साहित्य का समुद्धारक कहने में अतिशयोक्ति का स्पर्श भी नहीं है, क्योंकि पहली बार इस ग्रंथ में आधुनिक साहित्य के अनेक ग्रंथों पर पर्याप्त प्रकाश मिलता है। यद्यपि इस ग्रंथ में संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं की चर्चा स्वतंत्र रूप से कहीं भी नहीं की गयी हैं तथापि अनेक पत्र-पत्रिकाओं का यत्र तत्र उल्लेख, उनमें प्रकाशित साहित्य का संकलन तथा अनेक संस्कृत

---

१. कालिन्दी. १.३
२. भारतोदय, नवम्बर १०६३. पृ० २-४
३. श्रीः ८.१-२, पृ० २०-२५
४. M. Krishnamachariar : History of classical Sanskrit Literature, 1937.

पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादकों की जीवनी समुपलब्ध है। संस्कृत-चन्द्रिका, विज्ञान चिन्तामणि, मित्रगोष्ठी, सहृदया, मधुरवाणी, मंजूषा संस्कृतपद्य-वाणी, आर्यप्रभा आदि पत्रिकाओं का उल्लेख किया है। संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादकों में अप्पाशास्त्री (संस्कृत-चन्द्रिका) नीलकण्ठशास्त्री (विज्ञान चिन्तामणि) रामावतारशर्मा और विधुशेखर भट्टाचार्य (मित्रगोष्ठी) अनन्ताचार्य (मञ्जुभाषिणी) आदि के कृतित्व और व्यक्तित्व का निरूपण मिलता है। अतः पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित साहित्य और सम्पादकों का परिचय जानने के लिए यह पुस्तक महत्त्वपूर्ण है।

रा० ना० दांडेकर

१९४५ ई० में डा० दांडेकर का एक महत्त्वपूर्ण निबन्ध प्रकाशित हुआ जिसमें वर्तमान संस्कृत साहित्य पर एक विहंगम दृष्टि डाली गयी।[1] डा० दांडेकर वैदिक वाङ्मय के धुरन्धर विद्वान् हैं तथापि वर्तमान साहित्य ने उन्हें अपनी ओर आकृष्ट कर लिखने को प्रेरित किया, यही उसकी महिमा है। इस निबन्ध में नाम के अनुसार विवरण भी मिलता है।[2] इसमें संस्कृत-चन्द्रिका, सूनृतवादिनी, संस्कृत-साहित्यपरिषत्पत्रिका, उद्यानपत्रिका; मधुर-वाणी, संस्कृत-संजीवनम् तथा अन्य संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं पर संक्षिप्त विचार किया गया है।

१९४९ ई० में लुई रनु ने आधुनिक भारत में संस्कृत की उपयोगिता एवं महत्त्व आदि पर अपना विचार प्रस्तुत किया गया है। इस निबन्ध में संस्कृत धर्म दर्शन आदि की भाषा होने के कारण आज भी पठनीय है। संस्कृत ही अकेले राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय भाषा है। वर्तमान काल में भी इस पर साहित्य प्रणीत हो रहा है—केवल इतना ही उल्लेख है। आधुनिक साहित्य या संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं का निर्देश नहीं है।[3]

चिन्ताहरण चक्रवर्ती

१९५३ ई० में प्रो० चिन्ताहरण चक्रवर्ती ने आधुनिक भारत के सन्दर्भ में

---

१. R. N. Dandekar : The Indian Literature of Today, A symposium. p. 140-143.

२. Bird's eye-view of Sanskrit Literature of the present day. p. 140-143.

३. Journal of the Travancore University Oriental Manuscripts Library : vol. v. 2 p. 19-22. Sanskrit in modern India.

संस्कृत के स्थान का विवेचन प्रस्तुत करते हुए अपने निबन्ध में अनेक संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं की चर्चा करते हैं।[१] यह निबन्ध गंगानाथ झा शोध संस्थान पत्र में प्रकाशित हुआ है।[२] इस निबन्ध में आधुनिक संस्कृत साहित्य की अनेक प्रवृत्तियों और विभिन्न विधाओं पर गम्भीर विवेचन किया गया है। संस्कृत पत्रकारिता के लम्बे इतिहास की चर्चा और प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं का उल्लेख किया गया है।[३] कतिपय महत्त्वपूर्ण पत्र-पत्रिकायें लेखक को ज्ञात न होने के कारण अनुल्लिखित हैं। प्रो० चक्रवर्ती ने १९२७ में संस्कृत-पत्रेतिहासः नामक पुस्तक लिखने की योजना बनायी थी परन्तु यह योजना फलवती न हो पायी।[४]

१९५५ ई० में प्रकाशित नाइफर गाइड टु इण्डिअन पीरिऑडिकल ग्रंथ में मनोरमा, मंजूषा, संस्कृत भवितव्यम्, वैदिकधर्मवर्धिनी और ब्रह्मविद्या संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं की सूचना प्रकाशित हुई[५]। इन पत्र-पत्रिकाओं के आकार, पृष्ठसंख्या आदि का भी उल्लेख है। अनेक संस्कृत मिश्रित पत्र-पत्रिकाओं की भी सूचना मिलती है।

१९५५ में ही प्रकाशित ब्रिटिश यूनिअन कैटलाग में भी अनेक संस्कृत और संस्कृत मिश्रित पत्र-पत्रिकाओं की सूचना संग्रहीत है।[६]

वे० राघवन्

कारयित्री और भावयित्री प्रतिभा सम्पन्न डा० राघवन् आधुनिक संस्कृत साहित्य के लेखकों में अग्रणी हैं। १९५६ ई० में ब्रह्मविद्या में उनका प्रथम

---

१. Prof. Chintaharan Chakravarti : Place of Sanskrit in the Literary History of Modern India.

२. Journal of the Ganganath Jha Research Institute : vol. xiii, p. 153-164.

३. वही. पृ० १६२-१६४

४. संस्कृत-साहित्यपरिषत्पत्रिका (कलकत्ता) ११.३ 'भूयांसमेवाखिलव्यो-पयोगं प्रस्तुयते संस्कृतपत्रेतिहासः। न चास्य सम्यक् सम्पादनं एकेन सुकरं सम्भविता। नैकः सर्वमर्हति ज्ञातुम्। बहूनामुपलब्धे साहाय्ये ईदृशेतिहासप्रणयनं सम्यक् अनपरिशून्यञ्चार्हति भवितुम्'

५. Nifor Guide to Indian Periodical. 1955 p. 16,92.

६. British Union Catalogue. 1955.

निबन्ध **माडर्न संस्कृत राइटिंग्स्** नाम से प्रकाशित हुआ।[१] इस निवन्ध में अनेक महत्त्वपूर्ण पहलुओं पर गम्भीर विचार, आधुनिक संस्कृत साहित्य का मूल्याङ्कन एवं अनेक पत्र-पत्रिकाओं तथा उनमें प्रकाशित साहित्य का संकलन किया गया है। इसमें कई पत्रिकाओं की चर्चा, प्रकाशन-समय, सम्पादक और स्थान आदि का उल्लेख किये विना ही की गयी है।

१९५७ ई० में साहित्य अकादमी द्वारा प्रकाशित पुस्तक **कन्टेम्पोररी इन्डिअन लिटरेचर** में डा० राघवन् का द्वितीय निबन्ध **माडर्न संस्कृत लिटरेचर** प्रकाशित हुआ।[२] यद्यपि इस निवन्ध में और पूर्व प्रकाशित निबन्ध में पर्याप्त साम्य है तथापि इसमें आधुनिक साहित्य और पत्र-पत्रिकाओं पर पहले की अपेक्षा अधिक सामग्री मिलती है। कतिपय पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन समय के उल्लेख पर विसंवाद है।

उपर्युक्त दोनों निवन्धों में आधुनिक संस्कृत साहित्य की अनेक विधाओं का उल्लेख हुआ है। अधिकांश सामग्री संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं से संकलित की गयी है। सच तो यह है कि आधुनिक संस्कृत साहित्य का मूल्याङ्कन अथवा आकलन संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं के विना सम्भव ही नही हैं क्योंकि आधे से अधिक आधुनिक संस्कृत साहित्य पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुआ है। अतः डा० राघवन् ने संस्कृत की अनेक पत्र-पत्रिकाओं से सामग्री संकलित कर उन्हें सुव्यवस्थित एवं समीक्षात्मक दृष्टि से मूल्याङ्कन किया है। द्वितीय निबन्ध का हिन्दी अनुवाद **आज का भारतीय साहित्य** नामक ग्रन्थ में प्रकाशित है।[3]

१९५६-५८ ई० के मध्य अनेक ग्रंथ प्रकाशित हुए जिनमें संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं की सूचना संग्रहीत है। १९५६ ई० में नेशनल लाइब्रेरी इन्डिया से पत्र-पत्रिकाओं का कैटलाग् प्रकाशित हुआ।[४] १९५६ ई० में भारत सरकार ने एक संस्कृत समित का संगठन किया, जिसमें अनेक संस्कृत विद्वानों ने कार्य किया। इसकी विधिवत् सम्प्राप्ति १९५८ ई० में प्रकाशित हुई।[५]

---

१. ब्रह्मविद्या [The Adyar Library Bulletin] vol. xx. 1-2, p. 20-56 [Modern Sanskrit Writings]
२. Contemporary Indian Literature. 1957. p. 189-237. Modern Sankrit Literature.
३. आज का भारतीय साहित्य पृ० २९९-३७१.
४. National Library. India Catalogue of Periodicals Newspapers and Gazette's.
५. Report of the Sanskrit Commission.

इसमें बीस संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं का नाम लिया गया है तथा महत्त्वपूर्ण कतिपय तथ्यों का उल्लेख किया गया है।[1] संस्कृत पत्रकारिता शुरू से ही अदम्य उत्साह और तपस्या पर आधारित है। लाभ की आकांक्षा से रहित केवल भारती की सेवा से सम्पृक्त भावना से ही संस्कृत पत्र-पत्रिकायें प्रकाशित हुई हैं तथा ऐसी ही पत्रिकायें दीर्घजीवी एवं उच्चस्तरीय रही हैं, जिनके सम्पादक विशुद्ध संस्कृत-सेवा की भावना से पत्र-पत्रिकायें प्रकाशित करते थे।

१९५६ ई० में शंकरलाल शर्मा का भारती संस्कृत पत्रिका में '**संस्कृत-पत्राणां विहंगमावलोकनं उपयोगित्वं च**' नामक निबन्ध भी उल्लेखनीय है।[2]

१९५३ में ल० म० चक्रदेव का **संस्कृतभाषायाः प्रगतिपथे कः तिष्ठति अस्मिन् विषये कः उपायः** निबन्ध भवितव्यम् में प्रकाशित हुआ है[3]। संस्कृत के प्रचार और प्रसार के लिए संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन प्रमुख है। यही सत्य है तथा कतिपय पत्र-पत्रिकाओं का उल्लेख भी किया गया है।

गणेश राम शर्मा

१९५७ ई० में गणेश राम शर्मा का **संस्कृते पत्रकारिता** नामक निबन्ध दिव्यज्योति पत्रिका में प्रकाशित हुआ।[4] संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं से सम्बन्धित अन्य पत्र-पत्रिकाओं में भी इनके अनेक निबन्ध प्रकाशित मिलते हैं, जिनमें **संस्कृत पत्रकारितायाः क्रमविकाशः** प्रमुख है।[5] इन निबन्धों में काल-क्रमानुसार विवेचन का अभाव है तथा अनेक महत्त्वपूर्ण प्राचीन-अर्वाचीन पत्र-पत्रिकाओं का उल्लेख नहीं किया गया है।

१९५८ ई० में **दि इन्डियन नेशनल बिब्लिओग्राफी** का प्रकाशन हुआ जिसमें उस समय प्रकाशित होने वाली पत्र-पत्रिकाओं का उल्लेख मिलता है।[6] इसका प्रकाशन आगे भी हुआ है।

---

१. वही पृ० २१९-२२१।
२. भारती [जयपुर] ६. ४, पृ० ८४-८७
३. संस्कृतभवितव्यम् (नागपुर) ७.३२-३६, १९५७
४. दिव्यज्योतिः [शिमला] १. १२ पृ० २-१४
५. विश्वसंस्कृतम् [होशियारपुर] ५.२ पृ० १४६-१५६
६. The Indian National Bibliography Annual volume. 1958, 59, 60, 61.

१९६१ में प्रकाशित एक ग्रन्थ के द्वितीय भाग में भारत के कोने कोने से प्रकाशित होने वाली पत्र-पत्रिकाओं की विस्तृत सूची मिलती है।[१] इसमें विश्वविद्यालयों और विद्यालयों से भी प्रकाशित संस्कृत तथा संस्कृत मिश्रित पत्र-पत्रिकाओं को सम्मिलित किया गया तथा उस समय प्रकाशित होने वाली एक सौ तीस पत्र-पत्रिकाओं की सूची समुपलब्ध है। इस दृष्टि से यह ग्रंथ महत्त्वपूर्ण है। इसमें अनेक ऐसी पत्र-पत्रिकायें चर्चित हैं जो बहुभाषा से युक्त हैं। इन पत्रिकाओं में गम्भीर एवं चिरस्थायी साहित्य का अभाव परिलक्षित होता है।

रामगोपाल मिश्र

१९६२ई० में सागर म०प्र० से प्रकाशित सागरिका संस्कृत पत्रिका में मेरा प्रथम निबन्ध **संस्कृतपत्रकारिता** प्रकाशित हुआ।[2] इस निबन्ध में उन्नीसवीं शताब्दी में प्रकाशित समस्त संस्कृत और संस्कृत मिश्रित पत्र-पत्रिकाओं का सर्वाङ्गीण अध्ययन प्रस्तुत किया है। इस निबन्ध की विद्वानों ने भूरि भूरि प्रशंसा एवं तथ्यों के सही निरूपण का उल्लेख किया है।[3] इस निबन्ध में बीस संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं का विशद निरूपण एवं उनमें प्रकाशित साहित्य का दिग्दर्शन किया गया। इसके पश्चात् १९५५ ई० तक की संस्कृत पत्रकारिता का विस्तृत इतिहास पहली बार विद्वानों के समक्ष सागरिका के माध्यम से पहुँचता रहा। संस्कृत भाषा में संस्कृत पत्रकारिता का इतिहास सर्वप्रथम मैंने ही प्रस्तुत किया, जिसमें प्रत्येक पत्र-पत्रिका का विस्तृत अध्ययन किया गया है तथा सही-सही तथ्यों का निरूपण किया गया है।

१९६३ ई० में काशीविद्यासुधानिधिः **संस्कृते प्रयमपत्रम्** निबन्ध का

---

१. Annual Report of the Registrar of Newspapers for India, Part II, 1961.

२. सागरिका [सागर] १. १ पृ० ७६-८६

३. Advent [Shri Arvindo Ashram Pondicherry] vol. xx, No 2, 'The Contributor's are all erudite scholars, who have taken care to write in elegant, simple style. Remarkable is the article on Sanskrit Journalism for its wealth of facts"

प्रकाशन मालवमयूर पत्र में किया।[1] १९६४ ई० में **हरिद्वारतः प्रकाशिताः संस्कृतपत्रपत्रिकाः** निबन्ध गुरुकुलपत्रिका में प्रकाशित किया।[2] इस प्रकार संस्कृत पत्रकारिता का गम्भीर और विपुल विवेचन मैंने अनेक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कर इस कमी को दूर करने का प्रयत्न किया तथा अनेक ऐसी पत्र-पत्रिकायें ज्ञात हुईं जिनका ज्ञान पहले विद्वानों को नहीं था।

१९६२ ई० में उन्नीसवीं शताब्दी की संस्कृत पत्रकारिता विषय पर मैंने लघुशोध प्रबन्ध एम० ए० उत्तरार्ध के एक प्रश्न-पत्र के विकल्प में प्रस्तुत किया था, जिसमें उन्नीसवीं शताब्दी में प्रकाशित संस्कृत और संस्कृत मिश्रित पत्र-पत्रिकाओं का इतिहास, उद्देश्य, प्रकाशित साहित्य, सम्पादकों का परिचय और उनकी विभिन्न स्थितियों पर पर्याप्त विवेचन किया गया है।

श्रीधर भास्कर वर्णेकर

१९६३ में वर्णेकर ने **अर्वाचीन संस्कृत साहित्य** नामक ग्रंथ लिखा। मराठी भाषा में लिखित इस ग्रंथ में नियत कालिक साहित्य प्रकरण के अन्तर्गत संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं का परिचय मिलता है। इस ग्रंथ में यद्यपि अनेक पत्र-पत्रिकाओं का विशद विवेचन मिलता है तथापि न तो काल-क्रम का ध्यान रखा गया है और न उनमें प्रकाशित साहित्य की चर्चा की गई है। कुछ ऐसी पत्र-पत्रिकाओं की चर्चा हैं, जिनका प्रकाशन ही नहीं हुआ तथा कई पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन समय को सही नहीं प्रस्तुत किया गया हैं, फिर भी यह ग्रंथ अपने आप में महनीय है। इस ग्रंथ का अवलोकन आधुनिक संस्कृत साहित्य के हर एक अध्येता के लिए आवश्यक है।

इसके पश्चात् १९६४ ई० में हरिदत्त शास्त्री मे 'संस्कृत साहित्य की रूपरेखा' नामक ग्रंथ का प्रतिसंस्कार करते हुए एक अध्याय **संस्कृत पत्र-पत्रिकाएं** जोड़ दिया[4]। इसमें मेरी सामग्री का ही उपयोग किया गया है।

उपर्युक्त निबन्धों और पुस्तकों के अतिरिक्त संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं का परिचय अनेक पत्र-पत्रिकाओं में भी मिलता है। एक पत्रिका के किसी एक अंक का समीक्षण ही इस प्रकार की पत्र-पत्रिकाओं में है। ऐसी

---

१. मालवमयूर [मन्दसौर] श्रावणमासाङ्क सं० २०२०. पृ० १७-२१

२. गुरुकुलपत्रिका [हरिद्वार] १९६४ ई० पृ० २४३-२४५.

३. अर्वाचीनसंस्कृत साहित्य, पृ० २८४-३१४.

४. संस्कृत साहित्य की रूपरेखा पृ० ४२६-४३६।

पत्र-पत्रिकाओं में संस्कृत चन्द्रिका, मित्रगोष्ठी, सहृदया, मधुरवाणी, सारस्वती-सुषमा, संस्कृत रत्नाकर, सागरिका आदि प्रमुख पत्र-पत्रिकायें हैं, जिनमें पत्र-पत्रिकाओं का विज्ञापन या विवेचन मिलता है। इस प्रकार का विवेचन संक्षिप्त एवं एकांगी होने के कारण ऐतिहासिक अध्ययन में विशेष सहायता नहीं मिलती है।

इस प्रकार संस्कृत पत्रकारिता पर हुए शोध की ऐतिहासिक रूपरेखा प्रस्तुत करने के पश्चात् इस ग्रन्थ के महत्त्व की प्रतीति स्वतः सिद्ध हो जाती है। क्योंकि मेरे निबन्धों को छोडकर किसी भी विद्वान् ने संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं का समग्र अध्ययन नहीं किया है।

संस्कृत पत्र-पत्रिकायें आज भी प्रकाशित हो रही हैं। प्रारम्भ से लेकर अद्यावधि उनका समीक्षात्मक अध्ययन, उनके उत्थान-पतन का विवेचन इस ग्रंथ में किया गया है जो सहज ही विद्वानों का भाजन बनेगा।

संस्कृत पत्रकारिता का इतिहास कष्टमय रहा है। अर्थाभाव, ग्राहकाभाव मुद्रणाभाव, लेखकाभाव आदि अभावों से जूझती हुई पत्र-पत्रिकायें अपने पथ से कभी भी विचलित नहीं हुई हैं। सच तो यही है कि जिस उत्साह और देववाणी की सेवाभावना से विद्वानों ने अनेक कष्ट सहन कर संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन किया, वह अविस्मरणीय है। संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन स्वयं अभावों को आमंत्रण देना है, परन्तु संस्कृत सेवा परायण विद्वानों ने इस अयाचित सेवा को स्वीकार किया है। त्याग का उच्चादर्श उनमें मिलता है।

विद्योदय, संस्कृतचन्द्रिका, उषा, सहृदया, मित्रगोष्ठी, मञ्जुभाषिणी, सूनृतवादिनी, शारदा, श्रीः, सारस्वतीसुषमा, सागरिका आदि अनेक ऐसी पत्र-पत्रिकायें हैं जिनमें महनीय शोध-प्रधान निबन्ध प्रकाशित हुए हैं। सम्पादकीयों में सम्पादकों का प्रखर पाण्डित्य और तत्त्वविवेचिनी बुद्धि का ज्ञान होता है।

पत्रकारिता के स्रोत

मानव में स्वभावतः ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा पाई जाती भी है। ज्ञान-पिपासा को शान्त करने वाले माध्यमों में से पत्र-पत्रिकाओ का प्रकाशन भी है। पत्र-पत्रिकाओं में विभिन्न प्रकार की सामग्री रहने के कारण भिन्न-भिन्न रुचि वाले मनुष्यों तक उनका प्रचार होता है। पत्र-पत्रिकाओं के अनेक लक्ष्य होते हैं तथापि प्रधान लक्ष्य लोगों की अनन्त एवं वैविध्यपूर्ण जिज्ञासा को शान्त

करना है। समाचारों का प्रसार पूर्णरूपेण पत्र-पत्रिकाओं के द्वारा होता है। समाचारों को प्राप्त करने के लिए अनेक साधन मानव संस्कृति के आदि काल से ही रहे हैं।

प्रकाशन के समुचित साधनों का अभाव होने पर भी ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी के मध्य भाग में सम्राट् अशोक ने अपने साम्राज्य के विभिन्न भागों और सीमाओं में चट्टानों, स्तम्भों और गुफाओं पर ऐसे अनेक लेख उत्कीर्ण करवाये, जिन्हें पत्रकारिता का पूर्वरूप कहा जा सकता है। एक ही विषय अनेक स्थलों पर अंकित होने से उनका समाचार पत्र-रूप प्रमाणित होता है। शिला-लेखों का निर्माण भी आज की पत्रकारिता की भाँति जन सामान्य के लिए हुआ है। अशोक ने एक ही लेख अनेक स्थलों पर खुदवाया जिससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि उत्कीर्ण लेख वास्तव में पत्रकारिता का प्राचीन रूप था। उस समय की यह पत्रकारिता अनन्तकाल के लिए है। इन उत्कीर्ण लेखों की भाषा पत्र-पत्रिकाओं के समान ही सामान्य जनोचित है। उसने एक ही भावना को व्यक्त करने वाले अनेक शिलालेख उत्कीर्ण करवाया जिनका प्रधान कारण उसके अनुसार माधुर्य है। यथा—

'अथि चाहेता पुनं पुन लपिते तष तषा अथषा मधुलियाये येन जने तथा पटिजयेया'।[1]

इन शिलालेखों की स्थापना में अशोक का क्या ध्येय था, निम्नाङ्कित लेख में स्पष्ट है, साथ ही उसकी भाषा भी जनसामान्य की है। यथा—

त एताय अथा अतं धंमलिपी लेखापिता किति चिरं तिस्टेय इति। तथा च मे पुत्रा पोता च पपोत्रा च अनुवतरां सवलोकहिताय।[2]

मैंने धर्म के इस लेख को इसलिए अंकित करवाया हैं कि यह दीर्घकाल तक चिरस्थायी रह सके और मेरे पुत्र, पौत्र तथा प्रपौत्र सम्पूर्ण संसार के हित के लिए इसका अनुसरण करें।

अशोक की यह दूरदर्शिता अन्य शिलालेखों में भी मिलती है। यथा—

अथाये इयं धंमलिपि लिखापिता। हैवं अनुपतिपजंतु चिलं थितिका च होतु तीति[3]।

१. Rock Edict XIV.
२. Rock Edict VI
३. Pillar Edict II, Edicts of Ashoka. The Adyar Library Series.

इस प्रकार चाहें शिलालेख हों। या शिला-स्तम्भ हों, अशोक ने उनको स्थायी रूप प्रदान करने के लिए ही अंकित करवाया। यथा—

धंमलिपि अत अथि सिलाथंमानि वा सिलाफलकानि वा तत कटविया एन एस चिलठितिके सिया।[1]

इन उत्कीर्ण लेखों में पत्रिका की पूरी अनुकृति है। ये लेख अशोक साम्राज्य के विभिन्न भागों में पाये जाते हैं। सम्राट् अशोक का उद्देश्य जन-हित था। पत्र-पत्रिकाओं का उद्देश्य भी जन-हित होता है। जिस पत्रिका में जन-हित का सम्पादन नहीं होता, उस पत्रिका का जन-समूह में आदर भी नहीं होता। अशोक का यह जन-हित मूल मंत्र था—

'हेवं लोकसा हित सुखेति पटिवेखामि। अथा इयं नातिसुहेवं पत्यासनेसु हेवं अपकठेसु किमं कानि सुखं आवहामी ति तथा च विदहामि'

'मैं लोगों के हित और सुख को लक्ष्य में रख कर यह देखता हूँ कि जाति के लोग, दूर के लोग तथा पास के लोग किस प्रकार से सुखी रह सकते हैं। इसी उद्देश्य के अनुसार में कार्य करता हूँ'।

अतः पत्रकारिता का पूर्व रूप अशोक के शिलालेखों में मिलता है। जन-जन में राजकीय कार्य-कलापों का प्रचार-प्रसार हो अतः अशोक ने शिलालेखों को माध्यम बनाया जो चिरस्थायी साहित्य भी है।

अशोक के शिलालेखों का मुख्य उद्देश्य लोक-हित था[2]। उसके अनुसार उसने जीवन में जो कुछ किया है, उसका रहस्य यह है कि आगे के लोग उनका आचरण करें, अपने जीवन में उतारें। यथा—

इमं च धंमा नु पटीपती अनुपटी पजंतु ति एतदथा मे एस कटे[3]।

अशोक के पश्चात् उत्कीर्ण निबन्धों की धारा सी प्रवाहित हो गयी और गद्य के स्वाभाविक विकास की रूपरेखा में रुद्रदामन् (१५०ई०) का शिलालेख अद्वितीय है। यह एक साहित्यिक और सूचनात्मक कोटि की पत्रिका का रूप था। इन्हीं शिलालेखों में संस्कृत पत्रकारिता का वीज निहित है। संस्कृत पत्रकारिता के ऐसे पूर्व रूप होने पर उसे आधुनिक युग की नवीन प्रवृत्ति कहना

---

१. Pillar Edict VII,

२. Pillar Edict VI 'मे धंमलिपि लिखापिता लोकसा हित सुखाये, कटवियमुते हि मे सवलोकहितै'

३. Pillar Edict VII, वही० पृ० १११।

समीचीन नहीं है। आज की पत्रकारिता प्राचीन काल के उपर्युक्त प्रयासों का सर्वोच्च विकास मात्र है।

शिलालेखों के अतिरिक्त एक पुस्तक की कई प्रतिलिपियाँ बनाने की रीति रही है। जिस प्रकार आज एक पत्रिका की कई प्रतियाँ होती है, उसी तरह सुदूर प्राचीन काल में एक पुस्तक की कई प्रतियाँ बनाई जाती थीं। उनके मूल में यही धारणा होती थी कि तत्सम्बन्धी ज्ञान का प्रचार और प्रसार अधिक से अधिक लोगों में हो। साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं का भी यही लक्ष्य रहता है। अतः इन प्रतिलिपिओं में पत्रकारिता का उद्देश्य दृष्टिगोचर होता है।

संस्कृत पत्रकारिता का विकास आधुनिक संस्कृत साहित्य की दिशा में एक उज्ज्वल और महत्त्वपूर्ण अध्याय है। यद्यपि भारत में पत्रकारिता का अंकुर मुगलकाल से माना जाता है[1] तथापि इसका प्रत्यक्ष ज्ञान अंग्रेजी राज्य की स्थापना के पश्चात् होता है। नवीन विचारों और राष्ट्रीयता की वृद्धि में संस्कृत पत्रकारिता ने अभूतपूर्व योग दिया। पत्र-पत्रिकायें समाज के जीवन हैं तथापि विशेष कर संस्कृत पत्रकारिता द्रविण साध्य व्यवसाय रहा है क्योंकि लाभ की भावना से इन पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन नहीं हुआ, और न सम्भव ही है।[2]

वैवाहिक और अन्य प्रकार के पत्रों में तथा पत्रकारिता में कुछ समानता हैं। वैवाहिक पत्रों में एक सूचना रहती है और निश्चित समय के पश्चात् वे निरर्थक हो जाते हैं। पत्रिकाओं का सर्वदा महत्त्व रहता है। विषय और आकार-प्रकार गत भी भिन्नताएं हैं तथापि एक को लघु रूप तो दूसरे को वृहद् रूप से अभिहित किया जा सकता है।

विद्यावाचस्पति अप्पाशास्त्री राशिवडेकर ने संस्कृत चन्द्रिका के प्राथमिक निवेदनों में स्पष्ट रूप से कहा है कि संस्कृत पत्रकारिता से धनाशा सम्भव नहीं।[3] इसलिए संस्कृत भाषा में पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन की प्रेरणा

---

१. Journalism in modern India, p. 19.

२. संस्कृत-चन्द्रिका ७.९ 'पत्राणि समाजस्य जीवनानि, तथापि द्रविणसाध्य एवायं व्यवसाय:'

३. संस्कृत चन्द्रिका, ५. १. शारदा [प्रयाग] २.१२ संस्कृत पत्रिकया कश्चन धनमर्जयितुं शक्नोतीति न कोऽपि विशेषज्ञः प्रत्ययमादधाति वचनेऽत्र।

दैवी है अथवा दैववाणी के माध्यम से पत्र-पत्रिकाओं को प्रकाशन की भावना सेवात्मक और स्वाभाविक है।

सभा और गोष्ठियों में विचार-विनिमय का निरत व्यापार उन्नीसवीं शती में भी चल रहा था। अनेक गोष्ठियों की स्थापना हो चुकी थी, परन्तु वे एक स्थल विशेष, काल तथा व्यक्ति विशेष तक विचारों की सीमा द्योतित करती हैं। इन विचारों और भावों को असीमित और जन-साधारण तक पहुँचाने के लिए मानव ने पत्र-पत्रिकाओं को एक साधन के रूप में अपनाया। पत्र-पत्रिकाएं विचारों को एक साथ सर्व सामान्य तक पहुँचाने वाले साधनों में से एक हैं। अदम्य इच्छा और साधनों के द्वारा ही आज अनेक संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हो रहा है।

उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वभाग में सम्पूर्ण भारत में अन्य भाषाओं में पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन आरम्भ हुआ। संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन १८६६ ई० से आरम्भ हुआ। संस्कृत और भारतीय संस्कृति के विचारों को को इस देश की सनातन भाषा के माध्यम से सम्पूर्ण भारत में प्रकाशित करने के लिए पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन अनूठा साधन रहा है। डा० राघवन् के अनुसार—

'In the first flush of enthusiasm which energised the Sanskritists, the primary need that they felt was the starting of Sanskrit periodicals. A survey of Sanskrit journals is indeed a revelation, not only have there been numerous journals, but these journals have carried such varied contributions that they might well be credited with having played an important part in infusing a fresh life into Sanskrit.'[1]

हृषीकेशभट्टाचार्य, अप्पाशास्त्री सत्यव्रत शास्त्री, आर० कृष्णमाचारियार, महेशचन्द्र तर्कचूड़ामणि, आर० वी० कृष्णमाचारियार, पुन्नश्शेरि नीलकण्ठ-शर्मा और अनन्ताचार्य आदि विद्वानों ने संस्कृत के जागरण युग में योगदान दिया। उन्नीसवीं शताब्दी में संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं की प्रेरणा वास्तव में नव जागरण है। यथा—

'From the earliest time of the new awakening in Sanskrit efforts have been made to publish Sanskrit periodicals.'[2]

---

१. Modern Sanskrit Literature, p. 207.

२. Adyar Library Bulletin, vol. xx, parts 1-2, p. 43.

उन्नीसवीं शताब्दी में अंग्रेजी और प्रादेशिक भाषाओं में पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन शीघ्रता से आगे बढ़ रहा था। पाश्चात्य प्रणाली से प्रभावित होकर, प्रेरणा ग्रहण करने वाले संस्कृत विद्वानों ने सर्वप्रथम संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन आरम्भ किया—

'One of the earliest forms which the new literary activity in Sanskrit took, after contact with the West in modern times, was the Sanskrit Journal.'[1]

संस्कृत भाषा में सामयिक साहित्य की उपलब्धि न होने के कारण संस्कृत को **मृतभाषा** से अभिहित किया जाने लगा। गीर्वाणवाणी की सेवा में तत्पर धुरन्धर विद्वानों ने इस विवाद को पत्र-पत्रिकाओं द्वारा दूर करने का प्रयास किया। कई पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन की यही प्रेरणा थी। संस्कृत-चन्द्रिका, विद्योदय, सहृदया, मंजुभाषिणी, सूनृतवादिनी आदि उन्नीसवीं शताब्दी की प्रधान पत्र-पत्रिकाओं में विवेचनात्मक और तर्क प्रणाली के आधार पर यह प्रमाणित किया गया कि संस्कृत को मृतभाषा कहना समीचीन नहीं है। 'सूनृतवादिनी' पत्रिका में अप्पाशास्त्री की यह घोषणा प्रकाशित की जाती थी—

'ये किल मन्वन्ते मृतैव भगवती संस्कृतभाषेति, अवश्यमवेक्ष्यताममीभिः 'सूनृतवादिनी' येन जीवत्येवाद्याऽपि सर्वाङ्गीणसौष्ठवशालिनी संस्कृतभाषेति शक्येताममीभिरवबोद्धुम्'[२]

आधुनिक संस्कृत साहित्य की प्रगति में पत्र-पत्रिकाओं का विशेष महत्त्वपूर्ण योग रहा है। पाश्चात्य साहित्य से प्रभावित होकर संस्कृत में भी इस प्रकार की रचना का आरम्भ हुआ। सबसे बड़ी आवश्यकता अर्वाचीन साहित्य को प्रकाश में लाने की थी। यही प्रेरणा संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं की जन्मदायिनी है—

The Sanskrit Journal has played a valuable part in making Sanskrit a live medium of expression of contemporary thought and of discussion of current problems and in infusing new life into that language. History, politics, Sociology, modern science—all these have been dealt with in these Journals. The Sanskrit Journal can play a still more useful role in bringing into Sanskrit a good deal of modern knowledge. A

1. Report of the Sanskrit Commisson, 1956-57, p. 220,
२. सूनृतवादिनी १.१

strait, simple and expressive prose style has grown in Sanskrit. This is perhaps the one most significant development in Sanskrit, at the present day, which it owes largely to these periodicals. The Sanskrit Journal has also kept the Sanskritist close to the creative activity in the various modern Indian languages, and sometimes even in foreign languages by means of translations of some of the best literary creations in these langnages.[1]

'सरस्वती श्रुति महती महीयताम्' की भावना के कारण विभिन्न प्रकार के साहित्य का प्रकाशन पत्र-पत्रिकाओं के द्वारा हो रहा है। आज भारत के विभिन्न भागों से उच्च कोटि की पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन संस्कृत भाषा की प्रतिष्ठा को स्थापित करने के लिए ही हो रहा है। यथा—

Journals were and are published in Sanskrit in different parts of the country to win popularity for the language and to restore it to its pristine position of glory as the language of the people at, least the cultured people.[2]

मुद्रण यंत्र और पत्रकारिता

मुद्रण यंत्रों और आधुनिक ढंग की पत्रकारिता का अत्यन्त ही घनिष्ठ सम्बन्ध है। मुद्रण यंत्रों के आविष्कार के कारण ही आज संसार में अनेक पत्र-पत्रिकायें निकाली जा रही हैं। प्राचीन युग में इस प्रकार के प्रकाशन के साधन न होने के कारण केवल हस्तलिखित पत्र और ग्रंथ ही लिखे जाते थे, परन्तु आज मुद्रण यंत्रों के आविष्कार ने इस दिशा में अत्यन्त ही प्रगति प्रदान की है। आधुनिक ढंग की पत्रकारिता मुद्रण यंत्रों पर ही निभर है। इनके आविष्कार से पत्रकारिता की दिशा में जो प्रगति हुई, वह कथमपि नहीं कही जा सकती है। मुद्रण यंत्रों के कारण ही पत्र-पत्रिकाओं का महत्त्वपूर्ण स्थान मानव जीवन में प्राप्त हो गया है और समाचार जानने की उत्सुकता में भी पत्र-पत्रिकाओं का प्रमुख हाथ है।

भारत में आधुनिक पत्रकारिता का जन्म

आधुनिक समाचार पत्रों का उद्गम ढूढ़ निकालने के लिए यदि पीछे की ओर दृष्टिपात किया जाय तो स्पष्ट प्रतीत होगा कि दुनियाँ की सम्पूर्ण वातों

1. Report of Sanskrit Commission, 1956-57 p.-220.
2. Journal of Ganganath Jha Research Institute, Vol. XIII, p. 162.

को कहीं अंकित करने या लिख रखने की इच्छा मनुष्य में उसकी संस्कृति के उदय के पूर्व भी रही है। भारतवर्ष में इस प्रकार के असंख्य प्रमाण मिलते हैं। समाचार आदि से अवगत होने के लिए दूत, चर, भाट आदि बहुत पहले राजादिकों के यहाँ रखे जाते थे, परन्तु भारतवर्ष में आधुनिक ढंग की पत्रकारिता का विकास अंग्रेजों के समय से ही हुआ है। विदेश से आये हुये पत्रकारों ने भारतवर्ष में पत्रकारिता का बीज बोया, वह अंकुरित हुआ और धीरे-धीरे सतत उसका विकास होता गया। भारतीय पत्रकला यूरोप से भारत में आई और निरन्तर विकासोन्मुख रही।

भारत में पहला समाचार पत्र २० जनवरी सन् १७८० को जेम्स आगस्टस हिक्की के सम्पादकत्व में 'बंगाल गजट' नामक साप्ताहिक पत्र प्रकाशित हुआ। इसके पश्चात् अनेक पत्र अंग्रेजी भाषा में ही विभिन्न स्थानों से प्रकाशित किये गये।

देशी भाषा का पहला पत्र बंगला में सन् १८१७ में 'दिग्दर्शन' नाम से प्रकाशित हुआ। इस पत्र के प्रकाशन के पश्चात् पत्रकारिता में अत्यन्त प्रगति हुई और अनेक भाषाओं में मासिक, पाक्षिक, साप्ताहिक और दैनिक पत्रों का प्रकाशन हुआ।

हिन्दी पत्रकारिता

प्राप्त सामग्री के अनुसार हिन्दी भाषा का पहला पत्र ३० मई सन् १८२६ को कलकत्ता से **उदन्त मार्तण्ड** नाम से प्रकाशित हुआ। यह साप्ताहिक पत्र था और प्रति मंगलवार को प्रकाशित किया जाता था। इसके सम्पादक जुगुल किशोर शुक्ल थे। एक आदर्श श्लोक, जिसमें समाचार पत्रों का महत्त्व प्रदर्शित किया गया है, सदा प्रकाशित होता था।[1] जुगुल किशोर संस्कृत भाषा के ज्ञाता थे। प्रायः अनेक श्लोक इस प्रथम हिन्दी पत्र में प्रकाशित हुए हैं। श्लोक निर्माण में सम्पादक का असाधारण अधिकार था। निम्न श्लोक में उन्होंने अपना परिचय तथा 'उदन्त' पत्र के सम्बन्ध में कहा है—

जुगुलकिशोरः कथयति धीरः
सविनयमेतत्सुकुलवंशजः ।
उदिते दिनकृत सति मार्तण्डे
तद्वद् विलसति लोक उदन्ते ॥

---

१. दिवाकान्तकान्ति विना ध्वान्ततान्तं
न चाप्नोति तद्वज्जगत्यज्ञलोकः ।
समाचारसेवामृते ज्ञप्तमाप्तुं
न शक्नोति तमाकरोमीति यत्नः ॥

यह पत्र ११ दिसम्बर सन् १८२७ को बन्द हो गया। हिन्दी के क्षेत्र से पहली पत्रिका सन् १८४४ में बनारस से निकली। हिन्दी का सर्वप्रथम दैनिक पत्र 'सुधावर्षण' सन् १८५४ में कलकत्ते से प्रकाशित हुआ।

आज लगभग दो सो वर्षों से अधिक समय व्यतीत हो गया, जब पत्रकारिता का कोमलांकुर भारत की भूमि में अंकुरित हुआ था और तब से उत्तरोत्तर विकसित होता जा रहा है। साहित्यिक, वैज्ञानिक, राजनीतिक, धार्मिक तथा व्यवसायिक पत्रों के प्रकाशन के साथ साथ, संख्या में वृद्धि तथा उनका क्षेत्र भी व्यापक होता जा रहा है। यद्यपि भारत में समाचार पत्रों का प्रारम्भ, वास्तविक अर्थ में अंग्रेजों द्वारा हुआ था, पर अब यह बिलकुल अपने देश की वस्तु बन गई है और देश की ही भूमि में उत्पन्न पौधे की तरह इसमें प्राण और जीवनदायिनी शक्ति है। कला, शिल्प, सम्पादन, समाचार-संकलन और शीर्षक-संचयन तथा सम्पादकीय टिप्पणी आदि दृष्टियों से भारतीय पत्र-पत्रिकायें विश्व की पत्रकारिता में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं।

समाचार

महर्षि नारद को सबसे बड़ा समाचार दाता माना जाता है। इसमें भले ही सत्यांश कम हो, परन्तु प्राचीन काल से ही समाचार गुप्तचरों आदि से प्राप्त किया था। समाचारों का प्रसार पूर्णरूपेण पत्र-पत्रिकाओं के द्वारा होता है। समाचार से अवगत होने की भावना प्रायः प्रत्येक मानव में समान रूप से पायी जाती है। रामायण और महाभारत में समाचार दाताओं के नाम मिलते हैं। रामायण में 'सुमुख' गुप्तचर वेष में समाचारों को जानकर राम को बताता है। महाभारत का अध्ययन करने से विदित होता है कि उस समय समाचार दाता लोग नियत रहते थे, जो कि समाचार एक स्थान से लाया और ले जाया करते थे। संजय ने धृतराष्ट्र को कुरुक्षेत्र में होने वाले युद्ध का वर्णन प्रत्यक्ष की तरह किया है। भाट और दूत लोग भी समाचार दाताओं का काम करते थे और उन्हें पूरी स्वतंत्रता दी जाती थी।

प्रथम संस्कृतपत्रिका

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्यभाग के पूर्व ही सम्पूर्ण भारत में अनेक पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ। उन्हें देखकर संस्कृत विद्वानों ने भी अपनी भावनाओं को प्रकाशित करने के लिए, नूतन साहित्य से अवगत कराने के लिये, धार्मिक भावना को सबल बनाने के लिए, संस्कृत वाङ्मय प्रकाशित करने के लिये और गीर्वाण संस्कृति के गौरव को गौरवान्वित करने के लिए पत्र-पत्रिकाओं का माध्यम अपनाया।

हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं के विकास के समय से ही संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं का विकास हुआ। उन्नीसवीं शताब्दी में अनेक पत्र-पत्रिकायें संस्कृत मिश्रित थीं। संस्कृत के अनेक श्लोकों का प्रकाशन उनमें होता था। हिन्दी का पहला पत्र उदन्त मार्तण्ड है, जिसको देखने से ज्ञात होता है कि इस पत्र के सम्पादक जुगुल किशोर शुक्ल संस्कृत के विद्वान् थे। अनेक स्वरचित श्लोक इसमें प्रकाशित किये जाते थे। पत्र का नाम भी संस्कृत में था। इसी प्रकार और भी अनेक पत्र-पत्रिकायें थीं, परन्तु संस्कृत क्षेत्र से शुद्ध संस्कृत मासिक पत्र १ जून सन् १८६६ को बनारस से **काशीविद्यासुधानिधिः** नाम से प्रकाशित हुआ। प्राप्त सामग्री के अनुसार काशीविद्यासुधानिधिः ही संस्कृत का पहला पत्र है। यह पत्र राजकीय संस्कृत विद्यालय काशी से प्रकाशित होता था। सन् १८७६ तक इसकी प्रकाशित प्रतियां प्राचीन सञ्चिकायें कहलाईं और सन् १८८८ से सन् १९१७ तक की प्रकाशित प्रतियां नूतन सञ्चिकायें कहलाईं। *यह पत्र मई सन् १९१७ को बन्द हो गया। इस पत्र का दूसरा नाम* ***पण्डित*** पत्र था। इसमें अर्वाचीन और प्राचीन संस्कृत वाङ्मय प्रकाशित हुआ। इसके बाद सतत अनेक पत्र-पत्रिकायें प्रकाशित हुईं। संस्कृत पत्रकारिता सदा साहस पर निर्भर रही है। आत्मत्याग और अयाचित सेवा का सच्चा उदाहरण इसमें मिलता है। अधिक तो नहीं पर संस्कृत पत्रकार अपने पत्र विद्वानों में बांटकर उनकी प्रशंसा पर भी न्योछावर हो सुरवाणी की सेवा करता है। पत्र भी वे ही अच्छे निकलते हैं जो आत्मबल पर निकले हैं। शासकीय सहारा पा कर वे बोझिल बन गये।

इस प्रकार संस्कृत के पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादकों का जीवन सदैव त्याग-मय और आदर्श से परिपूर्ण रहा है। अनेक ऐसे सम्पादक हुए हैं जो आजीवन अनेक बाधाओं के रहने पर भी पत्र-पत्रिका के प्रकाशन से विमुख नहीं हुए। लाभ की भावना से किसी भी संस्कृत पत्र-पत्रिका का प्रकाशन नहीं हुआ है। अतः संस्कृत पत्रकारिता आत्मबल पर निर्भर प्रतीत होती है। इसीलिये यह प्रवाह अनवरत चल रहा है।

द्वितीय अध्याय

उन्नीसवीं शती की पत्र-पत्रिकायें

संस्कृत भाषा में पत्र-पत्रिकाओं के विकास का इतिहास भारत में अंग्रेजी राज्य की स्थापना के अनन्तर ही प्रारम्भ होता है। देश में शिक्षाप्रचार, मुद्रणयंत्रों के आविष्कार के साथ-साथ कुछ विद्वानों का ध्यान पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन की ओर आकृष्ट हुआ। संस्कृतज्ञों का यह प्रथम उत्साह पाश्चात्य प्रभाव से अत्यधिक प्रभावित था।

उन्नीसवीं शती में प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन की अनेक प्रेरणायें थीं। धार्मिक ग्रन्थों को प्रकाशित करने के लिए तथा धर्म की व्यापकता का ज्ञान कराने के लिए कुछ पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन आरम्भ हुआ था[1], इस प्रकार की पत्र-पत्रिकाओं का प्रमुख विषय वैदिक धर्म की विवेचना, धर्म के लक्षण और धार्मिक तत्त्वों का मूल्यांकन करना था। यह धार्मिक धारा विशेष रूप से साम्प्रदायिक स्थानों से पल्लवित हुई। अभ्युदय और निःश्रेयस् की प्राप्ति धर्म से ही सम्भव है —यह इन पत्र-पत्रिकाओं का मूल उद्देश्य था।

शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम् की भावना से ओत-प्रोत कुछ पत्र-पत्रिकायें प्रकाशित हुई।[2] इनमें आयुर्वेद के विषय में पर्याप्त प्रकाश डाला गया तथा अनेक विशेषाङ्कों का प्रकाशन हुआ। ऐसी पत्रिकाओं में भारतीय आयुर्वेद तथा चरकसंहिता को विशेष महत्त्व प्रदान किया गया। ऐसी पत्र-पत्रिकाओं में उनका हिन्दी अनुवाद और व्याख्या प्रस्तुत की गयी।

साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं में प्राचीन ग्रन्थों का प्रकाशन होता था, साथ ही इनमें अर्वाचीन ग्रन्थ भी प्रकाशित किये जाते थे।[3] विद्योदय, संस्कृत-चन्द्रिका,

---

१. धर्मप्रकाश, सद्धर्मामृतवर्षिणी, कामधेनु, धर्मनीतितत्त्व, ब्रह्मविद्या, श्रुत-प्रकाशिका, आर्यसिद्धान्त, मानवधर्मप्रकाश आदि।

२. आयुर्वेदोद्धारकः, आरोग्यदर्पण, चिकित्सा-सोपान आदि।

३. काशीविद्यासुधानिधिः, प्रत्नकम्रनन्दिनी, विद्यार्थी, आर्षविद्यासुधानिधि, विज्ञान-चिन्तामणि, उषा, साहित्य-रत्नावली आदि।

सहृदया, मंजुभाषिणी आदि साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं के द्वारा अनेक नूतन विधाओं का व्यापक प्रचार हुआ।

काव्यकादम्बिनी, विद्युत्कला और समस्यापूर्तिः पत्रिकाओं में एकमात्र समस्याओं का प्रकाशन होता था। इन पत्रिकाओं में पहले समस्या प्रकाशित की जाती थी। अगले अंक में समस्या पूरक श्लोक प्रकाशित किये जाते थे तथा पुनः समस्या प्रदान कर दी जाती थी। ऐसी पत्रिकाओं से नये लेखकों का काव्य-रचना में प्रवेश अनायास ही हो जाता है और यह प्रोत्साहन उन्हें काव्य रचना में प्रवृत्त कराता है। उन्नीसवीं शताब्दी में प्राप्त सामग्री के अनुसार पचास से भी अधिक पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ एवं इनमें पुष्कल साहित्य का प्रकाशन हुआ। प्रायः प्रचलित सभी विधाओं में वैविध्यपूर्ण साहित्य उन्नीसवीं शती की पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित मिलता है।

काशीविद्यासुधानिधिः

काशीविद्यासुधानिधि संस्कृत भाषा का पहला पत्र है। इसका प्रकाशन १ जून सन् १८६६ से प्रारम्भ हुआ था और लगातार सन् १९१७ तक प्रकाशित होता रहा। यह मासिक पत्र था। इसका प्रकाशन वाराणसी से होता था तथा प्रकाशन स्थान राजकीय संस्कृत विद्यालय वाराणसी था। इसके प्रकाशक ई० जे० लाजरुस थे।

काशीविद्यासुधानिधि का दूसरा नाम **पण्डित** था। इसके प्रकाशन का प्रमुख उद्देश्य अप्रकाशित और अप्राप्य पुस्तकों को प्रकाशित करना था।[1] इसमें अनेक उच्चकोटि के प्राचीन प्रामाणिक संस्कृत ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ। इसमें विवादास्पद निबन्धों का भी प्रकाशन होता था।[2]

काशीविद्यासुधानिधि पत्रिका की प्राचीन प्रतियों में अधिकांश प्राचीन ग्रन्थों का ही प्रकाशन हुआ। अर्वाचीन प्रतिओं में उस समय के विद्वानों के निबन्ध भी प्रकाशित किये। प्राचीन ग्रन्थों में व्याकरण और दर्शन सम्बन्धी ग्रन्थों को अधिक महत्त्व दिया जाता था।

अनुवाद की प्रथा का प्रचलन इसी पत्र से प्रारम्भ होता है। इसमें कुछ पाश्चात्य संस्कृत ग्रन्थों के अनुवाद प्रकाशित किये गये। जिनमें बर्कले के प्रिंसिपल आफ ह्यूमन नालेज ग्रन्थ का अनुवाद 'ज्ञान-सिद्धान्त-चन्द्रिका[3]

---

१. पण्डित १.१
२. India What can it teach us. p. 72.
३. पण्डित पुरातन सञ्चिका ८-१०

नाम से तथा लाक के 'एस्से कन्सर्निङ्ग ह्यूमन अण्डरस्टैन्डिग' ग्रन्थ मानवीय-ज्ञान-विपयक शास्त्र नाम से हुआ।[1] इसी प्रकार अनेक संस्कृत ग्रन्थों का आंग्लभाषा में अनुवाद प्रकाशित हुआ। जिनमें रामायण, साहित्य-दर्पण मेघदूत प्रमुख हैं। संस्कृत का पहला निवन्ध मानमन्दिरात्रिववेधालय-वर्णन है। इसके निवन्धक वापूदेवशास्त्री थे जिसका प्रकाशन इस पत्रिका में हुआ था।[2] रामभट्ट का **गोपाललीला** काव्य, अमरचन्द्रकृत **वालभारत** काव्य आदि महनीय रचनायें हैं। मथुरादास की **वृषभानुजा** नाटिका भी इसमें प्रकाशित हुई।

इस प्रकार प्रायः पचास वर्ष तक प्रकाशित इस पत्र में अनेक ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ। इसमें वर्ष के अन्तिम अकों का सिंहावलोकन किया जाता था। इस पत्र में पुस्तकों के पाठ-भेद भी दर्शाये जाते थे। इसका मुद्रण त्रुटि रहित और आकर्षक था।

सन् १८७५ में 'संस्कृत समाज' नामक एक विद्वद्‌गोष्ठी की स्थापना विद्यालय के अन्तर्गत हुई। गोष्ठी में होने वाले कार्य-कलापों का विवरण इस पत्र में प्रकाशित किया जाता था। पूर्वात्य और पाश्चात्य दोनों दृष्टि-कोणों से यह पत्र समन्वित था। अमरभारती पत्रिका के अनुसार—

'मन्ये सकलसंस्कृतपत्र-पत्रिकाणामादर्शभूता गुरुस्थानीयैव सेति। कालप्रभावादस्तंगताऽपि सा स्वकीयपुरातनसंचिकाभिः शिक्षयतीव लेखसौष्ठवगाम्भीर्यमाधुर्यमधुनातनास्मान्[3]

इस पत्र के प्रत्येक अंक में निम्नश्लोक प्रकाशित हुआ—

श्रीमद्विजयिनीविद्यापाठशालोदयोदितः
प्राच्यप्रतीच्यवाक्पूर्वापरपक्षद्वयान्वितः।
अङ्करश्मिः स्फुटयतु काशीविद्यासुधानिधिः
प्राचीनार्यजनप्रज्ञाविलासकुमुदोत्करान्॥

प्रत्नकम्रनन्दिनी

वाराणसी से सन् १८६७ में प्रत्नकम्रनन्दिनी पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ हुआ। इस प्रत्रिका का दूसरा नाम **पूर्णमासिकी** पत्रिका था। यह पत्रिका दुर्गाशंकर मुखर्जी आहिया वुट्टोला वनारस से प्रकाशित की जाती

१. पण्डित नूतन सञ्चिका ६.२
२. काशीविद्यासुधानिधि १.१ पृ० ७-६
३. अमरभारती वाराणसी १.१

थी। इसका वार्षिक मूल्य दश रूपये था।

प्रत्नकम्रनन्दिनी सत्यव्रत सामश्रमी के सम्पादकत्व में प्रकाशित होती थी। इसके प्रकाशक हरिश्चन्द्र शास्त्री थे सत्यव्रत सामश्रमी महान् विचारक, पण्डित और वैदिक वाङ्मय के ज्ञाता थे।

प्रत्नकम्रनन्दिनी पत्रिका में सामवेद और उसकी टीका प्रकाशित हुई। इसमें सामवेद का बंगला अनुवाद भी प्रकाशित होता था। इसके अतिरिक्त इसमें धर्म पर अनेक निबन्ध प्रकाशित किए गए। काशीविद्यासुधानिधि पत्रिका के कई अंकों में इसकी सूचना है।[1] प्रत्नकम्रनन्दिनी पत्रिका लगभग आठ वर्ष तक प्रकाशित हुई। मैक्समूलर ने पत्रिका में प्रकाशित उच्चकोटि के निबन्धों की प्रशंसा की है।[2]

प्रत्नकम्रनन्दिनी पत्रिका पाँच विभागों में विभाजित थी। प्रथम भाग में वैदिक समालोचना, द्वितीय भाग में कविकल्पलता स्तम्भ तथा तृतीय भाग में मीमांसा दर्शन का दिग्दर्शन होता था। चतुर्थ भाग में सटीक सामवेद बंगला अनुवाद सहित और पाँचवें भाग में ब्राह्मधर्म का विवेचन प्रस्तुत किया जाता था। इस पत्रिका की निम्नांकित कामना थी—

सट्टीकसाङ्गवेददर्शनादिकाशिनी
साधुबोधदर्शिनी ह्यनेकशास्त्रशालिनी।
राजतादसौ सुचित्तचित्प्रफुल्लकारिणी
प्रत्नकम्रनन्दिनी चिरन्धरा विहारिणी ॥

विद्योदय

लाहौर से सन् १८७१ में विद्योदय संस्कृत मासिक पत्र का प्रकाशन आरम्भ हुआ। यह पत्र लगातार सन् १९१४ तक प्रकाशित होता रहा। सन् १८८७ से पत्र का प्रकाशन कलकत्ता से आरम्भ हुआ था।

विद्योदय का वार्षिक मूल्य पाँच रुपये था। इसका प्रकाशन स्थान विद्योदय कार्यालय भाटपारा लाहौर था। कलकत्ता में न० २२ पटल डाङ्० यो स्ट्रीट से यह पत्र प्रकाशित किया जाता था।

विद्योदय पत्र को पंजाब विश्वविद्यालय से अनुदान मिलता था। कुछ समय पश्चात् यह अनुदान बन्द हो गया। इस कारण आर्थिक स्थिति अव्यवस्थित हो गई। कलकत्ता में पुनः पत्र की स्थिति सन्तोषप्रद हो गई[3]।

---

१. काशीविद्यासुधानि, vol. II, No. 16.
२. India—What can it teach us. p. 72.
३. विद्योदय, १८८७. संख्या १।

विद्योदय के प्रकाशन के सम्बन्ध में विद्वानों में विसंवाद हैं। इसका प्रकाशन डा० राघवन् के अनुसार सन् १८७४, प्रो० चिन्ताहरण के अनुसार सन् १८७१, श्रीधर वर्णेकर के अनुसार सन् १८६६ में हुआ।[1] उपर्युक्त मतों में केवल प्रो० चिन्ताहरण का ही मत सही है। विद्योदय का प्रकाशन जनवरी सन् १८७१ को ही हुआ था। सम्पादक के नाविक संगीतं का प्रकाशन दिसम्बर १८७५ ई० में प्रकाशित पाँचवें वर्ष के बारहवें अंक में हुआ है।

विद्योदय पत्र के प्रकाशन से एक नवीन युग का आरम्भ होता है। इस पत्र के द्वारा तत्कालीन संस्कृतज्ञों की आवश्यकताओं की पूर्ति हुई। यह संस्कृत भाषा में पहला समाचार पत्र था। इस पत्र के द्वारा ही संस्कृत गद्य की नूतन और मौलिक शैली का प्रादुर्भाव हुआ।

विद्योदय पत्र के सम्पादक हृषीकेश भट्टाचार्य (१८५०-१९१३) थे। भट्टाचार्य जी पाश्चात्य शैली से पूर्णतया प्रभावित थे। उन्होंने संस्कृत गद्य की जिस शैली को अपनाया, उसका चरम विकास विद्योदय के अंकों में परिलक्षित होता है। अर्वाचीन गद्य का विकास और परिष्कार भट्टाचार्य की तूलिका से सम्पन्न हो कर विद्योदय में प्रकट हुआ है। इस पत्र की भाषा सरल, सुनियोजित और परिमार्जित थी।

उन्नीसवीं शती में प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं में विद्योदय का प्रमुख स्थान है। इसने आने वाली पत्र-पत्रिकाओं को एक सुगम और समुचित एवं आलोकित पथ प्रदर्शित किया। इसमें प्राचीन और अर्वाचीन सभी प्रकार के ग्रन्थों का प्रकाशन होता था। इसके अनुवाद, टीका, निबन्ध आदि विषय अधिक रुचिकर होते थे। वास्तव में विद्योदय में व्यंगात्मक निबन्धों का प्राबल्य रहता था। परिचयात्मक और प्रशंसात्मक श्लोक भी प्रकाशित किए जाते थे। विद्योदय से नवीन विधाओं का उदय हुआ।

प्राचीन संस्कृत साहित्य में निबन्ध लेखन का प्रचार नहीं था। भट्टाचार्य ने सामयिक विषयों पर निबन्ध लिख कर नूतन मौलिक प्रणाली को

---

१. डा० राघवन् ब्रह्मविद्या २०।१-२, पृ० ४३, प्रो० चिन्ताहरण जर्नल आफ दि गंगानाथ झा शोध संस्थान पृ० १६३, श्रीधर वर्णेकर अर्वाचीन-संस्कृत साहित्य पृ० २८४।

विकसित किया। विद्योदय में भट्टाचार्य के सामयिक समस्याओं पर सरल और विनोदपूर्ण शैली में लेख प्रकाशित हुए। संस्कृत में व्यंग्य शैली का प्रथम प्रादुर्भाव विद्योदय में प्रकाशित निबन्धों से माना जाता है।[१] विद्योदय में अनेक उच्च स्तर की सामग्री प्रकाशित हुई। पत्र में प्रकाशित निबन्धों से मैस्क्मूलर अत्यधिक प्रभावित हुए थे और भट्टाचार्य के भाषा की मधुरता तथा मुहावरों की परिपूर्णता की प्रशंसा की थी।[२] विद्योदय के छठें वर्ष के तृतीय अंक में सम्पादक के दो अष्टक विरहिणीसंभाषणं और होल्यष्टकं तथा पाँचवें वर्ष के बारहवें अंक में नाविकसंगीतं, आठवें वर्ष के बारहवें अंक में मृत्युष्टकं आदि प्रमुख फुटकर कवितायें हैं।[३] छठें वर्ष के प्रथम अंक का राजपूजा महत्त्वपूर्ण निबन्ध है। इसमें प्रवर्तता प्रकृतिहिताय पार्थिवः पर अधिक बल प्रदान किया है।[४]

विद्योदय में प्रकाशित भट्चार्य के निबन्धों का एक संग्रह प्रबन्ध मंजरी नाम से १९३० ई० में प्रकाशित हो गया है। वास्तव में विद्योदय सकल-रसपरम्परातरङ्गितानां प्रबन्धानां सागरः पत्र था। सरल तथा प्रभावोत्पादक ही निबन्ध विद्योदय में प्रकाशित किए जाते थे।

सन् १८७१ से लेकर सन् १८८३ तक विद्योदय शुद्ध संस्कृत का पत्र था। इसके बाद हिन्दी भी प्रकाशित होने लगी। जिसका कारण भट्टाचार्य के अनुसार—

विदित हो कि विद्योदय नामक संस्कृत मासिक पत्र जो केवल संस्कृत भाषा में था और केवल संस्कृत रसिकों को यथाशक्ति आनन्द देता था, परन्तु संस्कृत भाषा अनभिज्ञों को, जिनकी संख्या आजकल बहुत हो गई है, किसी काम नहीं आता। इसलिए इस पत्र का आदर भी जैसा होना चाहिए, वैसा नहीं हो पाता। इस न्यूनता को प्रमार्जित करने के लिए मैंने अच्छे-अच्छे संस्कृत ग्रन्थों को हिन्दी में अनुवाद कर इस पत्र में प्रकाशित करने का संकल्प किया है।[५]

---

१. संस्कृत साहित्य की रूपरेखा पृ० २६४।

२. India What can it teach us p. 72.

३. विद्योदय ६.३ मार्च १८७६, ५.१२ दिसम्बर १८७५, ८.१२, दिसम्बर १८७८।

४. विद्योदय ६.१ जनवरी १८७६।

५. विद्योदय १२.५ मई १८८३।

विद्योदय में सभी प्रकार की सामग्री का प्रकाशन होता था। मनोरंजन के लिये परिहासाः स्तम्भ नियत रहता था। इस पत्र की हास्यसामग्री शिष्ट थी। भाषा-विज्ञान का तुलनात्मक अध्ययन एवं विवेचन पत्र के कुछ निबन्धों में मिलता है। समालोचना और सम्पादकीय स्तम्भों में विषय और शैलीगत गम्भीरता मिलती है।

अर्वाचीन संस्कृत साहित्य के प्रकाशन की दिशा में विद्योदय का महत्त्वपूर्ण स्थान है। विनोदविहारी का कादम्बरी नाटक (१६१५) हामलेटचरितम्, (१८८८) कोकिलदूतं (१८८७) राममयविद्याभूषण का कालविलासप्रहसन (१८६२) कलिमाहात्म्यप्रहसन (१८६२) शिवाजीचरितम्-नाटक (१८८७) शिवपुराणम् (१८८७) तथा अनेक फुटकर रचनायें प्रकाशित हुई हैं। विद्योदय वैविध्यपूर्ण एवं महनीय पत्र था। विद्योदय का निम्नांकित उद्देश्य था—

केवलं संस्कृतभाषायाः बहुलप्रचार एवास्य मुख्यप्रयोजनमस्ति। न केवलं संस्कृतभाषायाः किन्तु तद्भाषारचितानां तत्तद्दर्शनेतिहासादिविषयाणामपि प्रचारश्चास्य प्रयोजनपक्षे वर्तते।[1]

विद्योदय उच्चकोटि का पत्र था। शारदा पत्रिका में भट्टाचार्य की जीवनी और विद्योदय का परिचय प्रस्तुत किया गया।[2] तदनुसार—

प्रबन्धगौरवेणालौकिकरचनाविभवेन चायं प्राच्य-प्रतीच्यविपश्चितां मनांसि मोदयन् संस्कृत-साहित्य-क्षेत्रेष्वद्वितीयबहुमानं रविरिव भासते।[3]

हृषीकेश भट्टाचार्य के निधन के पश्चात् कुछ समय तक विद्योदय का प्रकाशन उनके पुत्रों ने किया। इस पत्र की मनोकामना अज्ञान-अन्धकार को विद्या के उदय से दूर करने की थी—

नानाशास्त्रकथारम्भो
लोकवृत्तानुशीलनम्।
विद्योदयो निराकुर्या-
दविद्या तिमिरम्भुवि॥

हृषीकेश भट्टाचार्य सफल निबन्धकार और सम्पादक थे। शारदा पत्रिका में प्रकाशित निबन्ध के अनुसार—

---

१. विद्योदय, १३.६
२. शारदा (प्रयाग) ३.३
३. शारदा (प्रयाग) २.६

निबन्धानेतानवलोक्य न केवलं जीवति खलु संस्कृतभाषेति प्रत्ययः सुदृढो भवति, सन्तीदानीमपि बाणसरणिमनुसर्त्तुं तदतिशयितुं च शक्ता लेखकधौरेयाः ये हि स्वप्रतिभाबलेन नवनवान् प्रकारानुद्घाट्य गद्यकाव्यानां ह्रेपयन्ति निर्जीवसंस्कृत-भाषेतिवादिनः, समुल्लासयन्ति साहित्यचन्द्रचकोरचेतांसि, प्रीणयन्ति विबुधजनमनांसि, प्रकाशयन्ति चात्मनोऽसाधारणं वैदग्ध्यं संस्कृतानुरागञ्चेत्यादि विचारपरम्परया विचक्षणसहृदयहृदयमधिकुर्वन्ति ।[1]

विद्यार्थी

अरसिकेषु कवित्वनिवेदनं शिरसि मा लिख मा लिख का उद्देश्य सन् १८७८ में विद्यार्थी नामक पत्र के प्रकाशन से आरम्भ हुआ । सन् १८८० तक यह पत्र मासिक रूप में पटना से प्रकाशित किया जाता था । इसके बाद इसका प्रकाशन पाक्षिक रूप में उदयपुर से प्रारम्भ हुआ । यह संस्कृतभाषा का पहला पाक्षिक पत्र था । इसका वार्षिक मूल्य छः रूपये था । विद्यार्थी कार्यालय उदयपुर इसका प्रकाशन स्थल था । कुछ समय पश्चात् यह पत्र श्रीनाथद्वारा मे प्रकाशित हुआ और आगे चल कर यह पत्र हिन्दी की हरिश्चन्द्र चन्द्रिका और मोहनचन्द्रिका पत्रिकाओं में मिल कर प्रकाशित होने लगा । सन् १९०८ ई० तक यह पत्र प्रकाशित हुआ । यह पत्रिका सत्सुधारस-सुखार्थवाहिनी थी ।

विद्यार्थी पत्र के सम्पादक पण्डित दामोदर शास्त्री (१८४८-१९०९) थे । विद्यार्थी पत्र विद्यार्थियों को ध्यान में रख कर प्रकाशित किया जाता था तथा तदनुकूल सामग्री का उसमें आकलन होता था । इसमें सरल भाषा में अनेक विषयों को समझाया जाता था । इसके कुछ अंकों में अर्वाचीन नाटक, गीति काव्य आदि उपलब्ध होते हैं ।[2] कभी कभी समस्या पूरक श्लोकों का प्रकाशन होता था । कतिपय समस्यापूरक श्लोकों में अश्लीलता झलकती है ।[3] इसमें निम्न श्लोक सतत मुखपृष्ठ पर प्रकाशित हुआ ।

विद्यार्थी विद्यया पूर्णो भवतात्कुरुतान्नरान् ।
विदुषां मित्रवर्गाणां संलापैः सहवासतः ॥

दामोदर शास्त्री की भाषा सरल और प्रभावशाली है । भावों का प्रकाशन पत्र की रमणीयता को बढ़ाता है । समालोचना आदि स्तम्भों में विचार

---

१. शारदा (प्रयाग) ३.३
२. विद्यार्थी २.१-८ ।
३. विद्यार्थी ६.३ ।

और तर्क को अधिक महत्त्व दिया जाता था। दामोदर शास्त्री का **बालखेल** पाँच अंकों का नाटक ध्रुवचरित से सम्बन्धित है, जिसका प्रकाशन विद्यार्थी में हुआ। **कमलास्तवः** (६.३) में लक्ष्मी की स्तुति रमणीय श्लोकों में हुई है। विद्योदय के अनुसार—

पत्रमिदं सुगमसंस्कृतभाषाऽभिलिखितं विविधविद्याविषयकं प्रस्तावसंयुतं च प्रकाश्यते'[१]

आर्षविद्यासुधानिधिः

कलकत्ता से सन् १८७८ में आर्षविद्यासुधानिधि पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ हुआ। यह मासिक पत्रिका थी। इसमें अनेक ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ। इसमें आलोचनाएं बंगला भाषा में प्रकाशित की जाती थीं। कुछ संस्कृत ग्रन्थों की टीकाओं का भी इसमें प्रकाशन हुआ। काशीविद्यासुधानिधि पत्रिका के समान यह पत्रिका ग्रन्थों को प्रकाशित करने के लिये प्रकाशित की गयी थी।

व्रजनाथ विद्यारत्न के सम्पादकत्व में आर्षविद्यासुधानिधि पत्रिका का प्रकाशन होता रहा। कुछ समय बाद आर्थिक दशा समुचित न होने के कारण पत्रिका का प्रकाशन स्थगित हो गया। पत्रिका केवल एक वर्ष तक प्रकाशित हुई। यह समाचारादि के प्रकाशन से रहित पत्रिका थी।

आर्य

लाहौर से सन् १८८२ में आर्य पत्र का प्रकाशन आरम्भ हुआ। यह मासिक पत्र था। आर० सी० बैरी सम्भवतः इसके सम्पादक थे। इस पत्र के सम्बन्ध में केवल इतना ही ज्ञात है कि इसमें आर्य-दर्शन, कला, साहित्य, विज्ञान, धर्म और पाश्चात्य दर्शन से सम्बन्धित विषयों का प्रकाशन होता था।[२]

ब्रह्मविद्या

चिदम्बरम् से सन् १८८६ में ब्रह्मविद्या नामक पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ हुआ। यह धार्मिक पत्रिका थी और इसमें धार्मिक ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ। सोलहवें वर्ष से पत्रिका का प्रकाशन स्थल नाडुकावेरी तंजौर था। इसका प्रकाशन सन् १९०२ तक हुआ।

ब्रह्मविद्या के सम्पादक श्रीनिवास शास्त्री शिवाद्वैतवादी थे।[३] उनके अनेक

---

१. विद्योदय ९.१ जनवरी १८७९

२. India Catalogue of Periodicals, Newspapers and Gazettes p. 36

३. संस्कृत-चन्द्रिका ९.९

शतक पत्रिका में प्रकाशित हुए।[1] संस्कृतचन्द्रिका में श्रीनिवास दीक्षित की जीवनी प्रकाशित हुई।[2] कृष्णमाचारी ने दीक्षित के बहुज्ञता का यथार्थ उल्लेख किया है।[3] अप्पाशास्त्री के अनुसार—

'नूनमेकमात्रमेवेदमासीदशेषेऽपि भारतवर्षे नवनवधार्मिक-दार्शनिकविषय-समुल्लसितं मासिकपत्रम्। मनोज्ञाऽऽसीत् भापातति आचार्यप्रवरस्य। दार्शनिकधार्मिकभावनायामोतप्रोताः सर्वे प्रबन्धाः खलु पत्रिकायां प्रकाशिताः। आन्ध्रभाषिणां कतिपयग्रन्थानां संस्कृतभाषायां संस्कृतप्रबन्धानामान्ध्रद्राविड-भाषयोस्तथैव भावभाषासंवलितमनुवादोऽपि कृतः। सुशोभिता गीर्वाणवाणी पण्डितकुलचूडामणेः तूलिकया।[4]

ब्रह्मविद्या आरम्भ में संस्कृत और द्राविड़ भाषा में प्रकाशित होती थी। उस समय लिपि भी द्राविड़ ही थी।[5] यह एक अच्छी पत्रिका थी। इसका स्तर भी ऊँचा था और दार्शनिक सिद्धान्तों को सरल शैली में प्रस्तुत किया जाता था।

श्रुतिप्रकाशिका

गौरगोविन्दराय के सम्पादकत्व में श्रुतप्रकाशिका पत्रिका का प्रकाशन सन् १८८६ से आरम्भ हुआ। यह पत्रिका 'ब्रह्मसमाज कलकत्ता' से प्रकाशित की जाती थी। इसमें वैदिक विषयक चर्चायें प्रकाशित हुईं। तत्कालीन सती प्रथा, धर्म-सुधार आदि के सम्बन्ध में इसमें अच्छी सामग्री प्रकाशित हुई। धार्मिक व्यवस्था के क्षेत्र में पत्रिका का नाम प्रमुख है। श्रुतप्रकाशः इसका दूसरा नाम था।

आर्यसिद्धान्त

आर्यसमाज प्रयाग से सन् १८९६ में आर्य सिद्धान्त नामक पत्र का प्रकाशन आरम्भ हुआ। यह मासिक पत्र था और स्वामी दयानन्द सरस्वती के सिद्धान्तों के प्रचारार्थ प्रकाशित किया जाता था। इसमें धार्मिक वाद-विवादों को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था।

यह पत्र स्वामी दयानन्द सरस्वती के शिष्य भीमसेन शर्मा के सम्पादकत्व में प्रकाशित होता था। इसके सहसम्पादक ज्वालादत्त शास्त्री थे। आर्यसिद्धान्त पत्र में धर्म और दर्शन सम्बन्धी उच्चकोटि के निबन्ध

---

१. विज्ञप्तिशतकं, महाभैरवशतकं, हेतिराजशतकं आदि
२. संस्कृतचन्द्रिका ६.६
३. History of Classical Sanskrit Literature, p. 308
४. संस्कृतचन्द्रिका ६.६ पृ० ६
५. वही, ६।६ पृ० ६।

प्रकाशित हुए। सम्पादकीय स्तम्भों की भाषा रोचकता से हीन थी, तथापि पत्रिका लोकप्रिय और सामान्यतया अच्छी थी।

विज्ञानचिन्तामणि

विज्ञानचिन्तामणि पत्र के पूर्व कई पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ, किन्तु वे घनाभाव और ग्राहकाभाव के कारण या तो अधिक समय तक प्रकाशित न हो सकीं या लोक-प्रियता को न प्राप्त कर सकीं। विज्ञानचिन्तामणि के प्रकाशन से एक नई प्रणाली का प्रचार और प्रसार हुआ।

पट्टाम्बि (मलावार) से सन् १८८८ में विज्ञानचिन्तामणि पत्र का प्रकाशन आरम्भ हुआ। इसके सम्पादक पुन्नशेरि नीलकण्ठ शर्मा थे। शर्मा जी ने एक नूतन प्रणाली से इस पत्र को जन-सामान्य के समक्ष प्रस्तुत करने की चेष्टा की और इसमें उन्हें पर्याप्त सफलता मिली। इस समय तक प्रकाशित संस्कृत पत्रों में विद्योदय और विज्ञान-चिन्तामणि का नाम सर्वप्रथम आता है। इस युग विशेष के ये दो अमर पत्र प्रकाशित हुए। इन दोनों पत्रों की भाषा संस्कृतचन्द्रिका के समान परिष्कृत और परिमार्जित तथा सुव्यवस्थित थी। यह पत्र ज्ञान-विज्ञान के लिये चिन्तामणि था।

विज्ञान-चिन्तामणि का प्रकाशन मास में तीन बार होता था। कुछ समय पश्चात् यह साप्ताहिक पत्र व्यवस्थित रूप से प्रकाशित होने लगा। मंजुभाषिणी और विज्ञानचिन्तामणि दो साप्ताहिक पत्र उन्नीसवीं शती में प्रकाशित हुए। संस्कृतचन्द्रिका के कई अंकों में विज्ञान-चिन्तामणि के सम्बन्ध में सूचनाएँ उपलब्ध होती हैं।[1] तदनुसार—

'प्रतिमासं चतुः प्रचरन्ती संस्कृतभाषामयी संवादपत्रिका खल्वेषा। हृदयहारिणी किलास्याः भाषासरणिः। सम्पादकः पुनरस्याः पण्डितप्रकाण्ड-श्रीमान् पुन्नश्शेरि श्रीनीलकण्ठशास्त्रि महाभागाः। अस्यां च नानाविधाः सामयिका विषयाः सरलमधुरया संस्कृतभाषया संग्रथिताः प्रकाश्यन्ते। प्रति-संख्यं च तत्तद्देशवास्तव्यानां तेषां तेषां पण्डितानां समस्यापूरणानि प्रकटी-क्रियन्ते। प्रादुष्क्रियन्ते च चतुरचेतसामाह्लादकाश्चित्रप्रश्नाः। अन्ततश्च संक्षिप्तो जगद्वृत्तान्तो विनिवेश्यते। विरलाः किल संस्कृतभाषामय्यः पत्रिकाः विरलतमाश्च साप्ताहिक्य इति नैष परोक्षः सर्वाङ्गमनोरमाया अपि संस्कृत-भाषाया दैवदुर्विपाकः कस्यापि।[2]

१. संस्कृत-चन्द्रिका ७.४, ७.५-७

२. संस्कृत-चन्द्रिका १२.६ पृ० १४१

प्रारम्भ में विज्ञान-चिन्तामणि का प्रकाशन ग्रन्थ लिपि में होता था।[१] कुछ समय बाद यह पत्र संस्कृत लिपि में प्रकाशित होने लगा।[२] पत्र में प्राय: सभी विषयों को विवेचनात्मक पद्धति से उपस्थापित किया जाता था। यह पत्र कुल सोलह पृष्ठों का था। इसे केरल महाराज से आर्थिक सहायता उपलब्ध थी।[3] अत: इस पत्र को विशेष धनाभाव का सामना कभी भी नहीं करना पड़ा। फलस्वरूप पत्र का प्रकाशन समय पर हो जाता था।

विज्ञान-चिन्तामणि पत्र में उच्चकोटि के साहित्य का प्रकाशन हुआ। पत्र की लोकप्रियता विशेष रूप से उल्लेखनीय है।[४] इसमें प्राय: सभी प्रकार के समाचारों का प्रकाशन होता था। समाचारों के संकलन तथा सम्पादन में सम्पादक की सूक्ष्मेक्षिका मिलती है।

उषा

कलकत्ता से सन् १८८९ में वैदिक विषय संवलित उषा पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ हुआ। यह मासिक पत्रिका थी। इसका वार्षिक मूल्य दश रुपये था। यह पत्रिका १६।१, घोष लेन, सत्यप्रेस, कलकत्ता से प्रकाशित की जाती थी। इसके प्रकाशक प्रियव्रत भट्टाचार्य थे।

उषा पत्रिका के सम्पादक सत्यव्रत सामश्रमि भट्टाचार्य थे। बंगाल प्रदेश में वेदों का प्रचार करने के लिए भट्टाचार्य ने उषा पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया। वास्तव में उषा के प्रकाशन से ही बंगाल में वेदों के प्रसार का उषा काल आरम्भ हुआ।[५] इसके पहले भी वाराणसी से प्रत्नकम्रनन्दिनी पत्रिका का प्रकाशन सत्यव्रत भट्टाचार्य ने किया था।

उषा पत्रिका में निम्नांकित विषयों का प्रकाशन होता था।[६]

१. (क) प्रत्नकालस्य धर्मः।
   (ख) प्रत्नकालस्य सामाजिकी रीतिः।
   (ग) प्रत्नकालस्य नीत्युपदेशः।
   (घ) प्रत्नकालस्य विज्ञानादयः।

---

१. Adyar Library Bulletin, Vol. XX parts 1-2, p.45.
२. संस्कृतचन्द्रिका ७.५-७
३. वही, ७.३
४. सहृदया १८.८
५. Jn. of the Ganganath Jha Research Institute. Vol. XIII, p. 156.
६. उषा १.१

२. (च) लुप्तकल्पवेदाङ्गानि ।
(छ) लुप्तकल्पवेदाः।
(ज) लुप्तकल्पदर्शनादयः ।

३. पुराणतत्त्वम्

४. पारमार्थिकम्

उषा पत्रिका के प्रकाशन के प्रयोजन तदनुसार पांच थे—

१. येषामतिप्रयोजनीयानामपि वैदिकग्रन्थानां सुदुर्ल्लभत्वाद् वहुविक्रया-सम्भवाच्च न केनापि पुस्तकव्यापारिणा प्रकटनं सम्भाव्यते, तादृश नामेव रक्षणायैष प्रवन्ध आरब्धः ।

२. येषां च वैदिकतत्त्वानामतिगूढत्वं लुप्तकल्पत्वं वा अद्यापि तादृशाना-मेवोपदेशरत्नादीनां परिरक्षणाय चैष प्रवन्ध आरब्धः ।

३. येषामहो वैदिकक्रियाकलापमन्त्राणां क्रमान्नष्टकल्पतैव वर्धतेतराम् तेषामभिरक्षणाय चैष प्रवन्ध आरब्धः ।

४. येषां तु चिकित्साविज्ञानपौराणिकोपाख्यानादीनां वीजानि सन्त्यपि वेदे वह्वालोडनमन्तरा नैवोपलस्यन्ते तेषां प्रदर्शनाय चैप प्रबन्ध आरब्धः ।

५. येषामपि वैदिकसाहित्यानुशीलने वर्वृतति चानुरागाः तेषां मोदाय चैष प्रवन्ध आरब्धः ।

उषा पत्रिका का प्रकाशन लगभग तीन वर्ष तक हुआ । पत्रिका मध्य में आर्थिक सहायता के अभाव में स्थगित हुई थी । इस पत्रिका में प्रकाशित सामग्री उच्चकोटि की रहती थी । भट्टाचार्य के सरस और प्रौढ़ तथा गम्भीर विषय-प्रधान निवन्धों ने मैक्समूलर को अत्यधिक प्रभावित किया था ।[१] इसमें पाश्चात्य विद्वानों के पत्रिका सम्बन्धी विचार प्रकाशित किये जाते थे । यथा—

Usha—A Vedic Journal devoted to the spread of the knowledge of the Vedas in India. It gives short accounts of the religion, morality, wisdom, gratitude and riddles of ancient India. But the most important article is that in which the editor gives the different methods of works."[2]

---

१. उषा १.११

२. उषा २.१

वैदिक वाङ्मय के प्रकाण्ड पण्डित होने के कारण सत्यव्रत सामश्रमी के निवन्धों में अनुसन्धान एवं तात्त्विक समीक्षा के दर्शन होते हैं। प्रत्येक निवन्ध मौलिकता से ओत-प्रोत रहता था। मैक्समूलर के अनुसार—

I have read your article on the कन्याविवाहकला। It is most excellent and has pleased me so much that I have asked my secratary to translate into English.[1]

उषा पत्रिका 'उषा' के समान थी जो सतत ज्ञान-किरणों से विद्वानों को आकर्षिक करती थी। विवेचनात्मक प्रणाली को पत्रिका में अपनाया जाता था। पत्रिका में केवल अप्राप्य और अप्रकाशित ग्रन्थों को ही प्रकाशित किया जाता था।[2]

उन्नीसवीं शती की उषा एक मात्र ऐसी पत्रिका थी, जिसका प्रचार पाश्चात्य देशों में भी पूर्णरूपेण हुआ। ब्रिटेन, जर्मनी आदि देशों में पत्रिका के वितरक कार्यालय थे।

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में मैक्समूलर वेदों पर अनुसन्धान कर रहे थे। मैक्समूलर को इस पत्रिका द्वारा अनेक सहायताएं मिलीं। यह अत्यधिक लोक-प्रिय पत्रिका थी। इसका संक्षिप्त विवरण तदनुसार इस प्रकार है—

प्रत्नधर्मरीतिनीतिविज्ञतादिकाशिनी
लुप्तकल्पसाङ्गवेददर्शनादिजीविनी ।
प्रत्नकम्रनन्दिनी च यानशर्म्मसाधिनी
सत्यभा उपेयमेतु सुप्रभातभाविनी ॥

सत्यभा: सत्यस्य परमेश्वरस्य द्युतिरूपा सततमुदीयाभा। इयं उषा देवी इवेयमुपाख्या पत्री। अत्र सुप्रभातभाविनी सती एतु। निखिलजनपरिगता किलोषा देवी यथा पुरातनं धर्मं पुरातनीं रीतिं पुरातनीं नीतिं पुरातनं विज्ञतादिकमेव प्रकाशयति। अस्या अपि पत्रिकायास्तथैव फलं भवतु। सूर्यपुत्री उषा हि सुषुप्तावस्थायां लुप्तकल्पा ये देहज्ञानेन्द्रियादय: पदार्थास्तानेव पुनरुज्जीवयति। इयमपि पत्री लुप्तकल्पान् साङ्गवेददर्शनादीनेवोज्जीवयितुं समर्था भवतु। यथा च सा प्रत्नान् पूर्वदृष्टानपि पदार्थान् प्रदर्श्य तोषयति प्रत्नकम्रान् तथैवेयमपि पुराणतत्त्वानां प्रदर्शनेन प्रत्नकम्रजनानानन्दयितुं समर्था भवतु।

उषा पत्रिका की तुलना उषा से करते हुए सम्पादक की यह धारणा थी कि यह संस्कृत के जागरण का युग है और अव प्रत्येक दिशा में सुप्रभात होने

१. उषा ५.१
२. उषा १.१

वाला है। सम्पादक का यह कार्य सदैव प्रशंसनीय रहा है। उषा पत्रिका के मुख पृष्ठ में उषा का चित्र और उसका रंग अरुण वर्ण का रहता था। सम्पादक की कामना विशाल थी। यथा—

प्रत्युष्टद्युतितारका स्फुटतटी प्राचीभवेन्निर्मला
त्वीषद्रक्तविलोहितान्तशबला दैवैः सदा वाञ्छिता।
नो वारं न तिथिं न योगकरणं लग्नञ्च नापेक्षते
हत्वा दोषसहस्त्रसञ्चयमुषा नूनं करोत्युन्नतिम्॥

संस्कृत चन्द्रिका

उन्नीसवीं शती की अपूर्व, युगान्तरकारिणी और सर्वश्रेष्ठ पत्रिका संस्कृत-चन्द्रिका का प्रकाशन सन् १८९३ में आरम्भ हुआ। यह पत्रिका आहिरी टोला बाबूरामघोषलेन ६ संख्यक भवन कलकत्ता से प्रकाशित की जाती थी। इसका वार्षिक मूल्य छात्रों के लिए एक रुपया तथा अन्य ग्राहकों के लिए डेढ़ रूपये था। यह मासिक पत्रिका थी और प्रारम्भ में संस्कृत तथा बंगला में अलग अलग मुद्रित की जाती थी।[1]

संस्कृत चन्द्रिका का प्रकाशन जयचन्द्र सिद्धान्तभूषण भट्टाचार्य के सम्पादकत्व में चार वर्ष तक कलकत्ता से हुआ। संस्कृतचन्द्रिका के तीसरे वर्ष के अंकों में मातृभक्ति विषय पर काव्य-प्रबन्ध प्रतिस्पर्धा विज्ञप्ति का प्रकाशन हुआ, जिसमें राशिवडे ग्राम निवासी अप्पाशास्त्री को प्रथम पुरस्कार मिला। जयचन्द्र ने अप्पाशास्त्री की बाल्य कालीन अद्भुत प्रतिभा देखकर उन्हें संस्कृत-चन्द्रिका का सहसम्पादक बना दिया। यद्यपि इसके पूर्व मनुजेन्द्र दत्त आदि सहसम्पादक रह चुके थे, तथापि अप्पाशास्त्री के सहसम्पादकत्व से पत्रिका का स्तर बढ़ा। पांचवें वर्ष के प्रथम अंक से अप्पाशास्त्री के सम्पादकत्व में यह पत्रिका कोल्हापुर से प्रकाशित होने लगी। अप्पाशास्त्री पत्रिका के नियमित न प्रकाशित होने पर विकल हो जाते थे। यथा —

शारदीयपूजया मुद्रायंत्रस्य विविधप्रत्यूहेन चानिच्छयापि पत्रिकाप्रकाशेन समयव्यत्ययो जातः तदर्थं ग्राहकानां पत्रेण नितरां दूये दुःखितो लज्जितञ्च। दोषोऽयं कृपया सोढव्यः'[2]

संस्कृत भाषा-भाषियों के हृदय में संस्कृत चन्द्रिका ने आशा का संचार किया। सम्पादक कर्म में अप्पाशास्त्री नितान्त अनुभवी और दक्ष थे। इसका सम्पादन बड़ी ही योग्यता के साथ किया जाता था।

---

१. संस्कृत चन्द्रिका १.२
२. संस्कृत चन्द्रिका ६.७

इस पत्रिका में शोध-प्रधान, ललित और गम्भीर लेख प्रकाशित किये जाते थे। इसमें सरस कविताएं भी प्रकाशित होती थीं, जिनमें माधुर्य तथा अलौकिक कवि-कर्म पाया जाता है।

संस्कृत चन्द्रिका पत्रिका की कतिपय अपनी प्रमुख विशेपताएं थीं। इसके प्रथम भाग में गद्य, पद्य और गीत आदि काव्य-ग्रन्थों का प्रकाशन होता था। द्वितीय भाग में समालोचना और तृतीय भाग में धार्मिक निवन्धों का आकलन किया जाता था। चतुर्थ भाग में चित्रात्मक कविताएं तथा अन्य सूचनाएं एवं पचमभाग में वार्तासंग्रह रहता था। पष्ठ भाग में पत्र प्रकाशित होते थे। इस प्रकार पत्रिका प्राय: अनेक विषयों से संवलित थी। अनुवाद, विनोदवाटिका, तथा देशवृत्तान्त भी प्रकाशित किए जाते थे।

संस्कृत चन्द्रिका में प्रकाशित लेखों के व्यापक-विपय-विस्तार और विभिन्नता से ही इसके उच्चस्तर का अनुमान लगाया जा सकता है। यह संस्कृत भापा की प्रमुख पत्रिकाओं में प्रधान है जिसमें विविध विपयों पर गवेपणात्मक तथा पाण्डित्यपूर्ण सामग्री प्रकाशित होती थी। वास्तव में 'संस्कृत-चन्द्रिका' के प्रकाशन से संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं का स्वर्ण-युग आरम्भ होता है। आरम्भ से ही इसमें साहित्य, समालोचना, इतिहास, समाज-शास्त्र आदि के सम्बन्ध में अनुसन्धान पूर्ण तथा विचारपूर्ण लेख प्रकाशित हुए। संस्कृत-चन्द्रिका के अनुसार ही—

संस्कृतभापामयी मासिकपत्रिका चन्द्रिका प्रतिमासं कोल्हापुरात्प्रकाश्यते। अस्यां च कवीनां कालनिर्णयो महात्मनां चरितानि देशेतिवृत्तविपयका धर्मादि-विपयकाश्च प्रवन्धा नव्यानि खण्डकाव्यानि रूपकाणि समालोचना विनोदकाव्यानि प्रवन्धा: प्रकाश्यन्ते।

संस्कृतचन्द्रिकाया: सर्वाङ्गीणसौष्ठवापादनाय सर्वांशत: प्रयतमानानाम-स्माक यदि क्वापि किमपि स्खलितमुपलक्ष्येत सुधीभिस्तदा तदवश्यं निवेदनीय-मिति सादरं सानुरागं चाभ्यर्थयामहे।[1]

संस्कृत चन्द्रिका चन्द्रिका के समान थी, जिसका पान चकोर-विद्वद्-वृन्द कर रहा था। पत्रिका के विषय अपनी गम्भीरता के लिए अधिक प्रसिद्ध थे। इसमें अर्वाचीन विपय सम्वन्धी सामग्री का प्रकाशन अधिक हुआ। यह पत्रिका यद्यपि व्यक्तिगत व्यय से प्रकाशित की जाती थी, तथापि ग्राहकों की संख्या प्रचुर होने के कारण इसकी आर्थिक दशा सुव्यवस्थित थी। पत्रिका का प्रकाशन वड़ी सजगता के साथ किया ज ता था। अम्विकादत्त व्यास, कृष्ण-माचारी, अन्नदाचरण तर्कचूड़ामणि, महेशचन्द्र, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी आदि उच्चकोटि के विख्यात लेखकों की रचनायें इसमें प्रकाशित हुई हैं।

---

१. संस्कृत-चन्द्रिका ६.१

संस्कृत चन्द्रिका के प्रकाशन का उद्देश्य तदनुसार निम्नांकित था।

विना क्लेशमुपदेशञ्च केवलमस्याः पाठमहिम्ना संस्कृतभाषाभ्यासः दार्शनिकविषयादिपरिज्ञानमानन्दञ्च निरतिशय इति प्रथमो संकल्पः।

सम्प्रति प्रायः सर्वस्मिन्नेव देशे संस्कृतशास्त्रं भाषाञ्च संस्कृतां अनेके समाद्रियन्ते। अपि च इंगरेजिशिक्षिता अप्यनेके परिज्ञातुं शास्त्रीयमर्मार्थमभिलषन्ति। किन्तु सम्यगुत्साहाभावात् तत्र ते विफलमनोरथा विषीदन्ति। फलतोऽपि शास्त्रीयमर्मार्थं बोद्धुं सरलसंस्कृतभाषैव सम्यगुपायः। अत एव शास्त्रीयमर्मार्थं जिज्ञासूनां संस्कृतं वक्तुमिच्छूनां च कृते पत्रिकामिमां प्रचारयितुं प्रवर्तामहे।[1]

संस्कृत चन्द्रिका में आधुनिक विषय भी प्रकाशित किये थे। मासावतरणिका में उस मास का अत्यधिक रोचक और चित्रमय वर्णन रहता था। पत्रिका के आरम्भिक अंकों में समस्याओं का भी प्रकाशन होता था। इस पत्रिका में अप्पाशास्त्री का प्रवेश समस्याओं से ही हुआ था। द्वितीय वर्ष के चतुर्थ अंक में उनका पहला समस्यापूरक निम्न श्लोक प्रकाशित हुआ—

अनारतं का मधुराभिलाषा
लयाश्रितः किं कुरुते नटश्च।
जुहीति सन्ध्यासु हविः क्व होता
पिपीलिका नृत्यति वह्निकुण्डे॥

सन् १८९७ से 'संस्कृत चन्द्रिका' अप्पाशास्त्री के सम्पादकत्व में सन् १९०० तक प्रकाशित हुई। उनके निधन के कुछ समय पूर्व पत्रिका का प्रकाशन स्थगित हुआ। पत्रिका के पाँचवे वर्ष के प्रथम अङ्क का निवेदन वास्तव में सम्पादक की दूरदर्शिता का पूर्ण परिचायक है। उनकी सदिच्छा थी—

बालेयं भवदेकतानहृदयानन्दाय संजायता-
मासन्ना प्रतिमासमेव भवतां पाण्यम्बुजं कौतुकात्।
स्वान्तं रञ्जयतु प्रभंजयतु च ध्वान्तं सदाभ्यन्तरं
देवं सेवयतु प्रवर्धयतु वः स्वस्यां मुदं शाश्वतीं॥
अदोषाकरसंसर्गा सदुल्लासप्रदायिनी।
दिवाप्यनूनभा कुर्यान्मोदं संस्कृतचन्द्रिका॥
बालेव लाल्यतामेषा पाल्यतां निजकीर्तिवत्।
कान्तेव रक्ष्यतां धीराः सततं निजसन्निधौ॥

चौबीस पृष्ठों की संस्कृत चन्द्रिका पत्रिका में कवियों का काल-निर्णय;

---

१. संस्कृत चन्द्रिका १.२

महात्माओं का जीवन चरित, देशवृत्तान्त, धर्म, दर्शन, साहित्य सम्बन्धी निबन्ध, काव्य, खण्डकाव्य, रूपक, पत्रावली आदि प्रकाशित हुए। एम्. कृष्णमाचारी के अनुसार—

It is very valuable Sanskrit Journal indeed. In fact if all our Brahmins do take the trouble to read every copy for a year or two, Sanskrit will rise from the dead language. His efforts in that direction can be too highly praised. It contains original articles in simple and beautiful Sanskrit.[1]

संस्कृतचन्द्रिका में समालोचना का उच्चस्तर दृष्टिगोचर होता है। समीक्षा में केवल प्रशंसा नहीं रहती थी अपितु ग्रंथ के गुण और दोषों पर परिपूर्ण विचार किया जाता था। श्रीमानप्पा के अनुसार—

समालोचना नाम न द्वेषो न वाऽसूया किन्तु प्रेमप्रवणेन मनसा समालोचनीयग्रन्थवर्तिनां गुणदोषादीनामाविष्कारः।[2]

सन् १८९९के कई अंकों में पतितोद्धारमीमांसायाः खण्डनं लेख प्रकाशित हुआ है। इस लेख को पढ़ने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि इसमें समीक्षा का क्या स्तर था। किसी लेखक ने पतितोद्धार-मीमांसा पुस्तक लिखकर सिद्ध किया कि पतितों का उद्धार और धर्म परिवर्तन शास्त्र सम्मत है। चन्द्रिका में इस पुस्तक को व्यामोहमयी बताकर उसका खण्डन किया गया है।

अप्पाशास्त्री के सफल सम्पादकत्व में यह पत्रिका अखण्ड रूप से प्रकाशित होती रही। यदि कभी किसी मास का कोई अंक न प्रकाशित हो पाया तो अग्रिम अंक में उसे प्रकाशित किया जाता था। यह पत्रिका मास के दूसरे सप्ताह में प्रकाशित की जाती थी। यह पत्रिका द्राक्षापाक के समान बाह्याभ्यान्तर से रमणीय थी। इसके प्रमुख पृष्ठ में निम्न-श्लोक प्रत्येक अंक में प्रकाशित किया जाता था—

प्रबन्धपीयूषप्रवर्षिणी निपेव्यतां संस्कृतचन्द्रिका बुधैः।
जगत्समग्रं सितयन्त्यपीष्यते चकोरकैरेव हि चन्द्रिरप्रभा॥

अतः संस्कृत चन्द्रिका पीयूषधारा गिरमुद्गिरन्ती सर्वश्रेष्ठ पत्रिका थी, जिसका आजीवन महनीय स्तर था।

कविः

सन् १८९५ में पूना से इस पत्र का प्रकाशन आरम्भ हुआ था। इसमें अर्वाचीन विषय प्रकाशित किए जाते थे। इसका प्रकाशन मासिक रूप में कई

१. संस्कृत चन्द्रिका ७.२
२. संस्कृत चन्द्रिका ५.४

वर्षों तक हुआ।[१] यह सामान्य कोटि का पत्र था।

सहृदया

डा० राघवन् के अनुसार दक्षिणभारत में जो पत्र-पत्रिकाएं प्रकाशित हुईं, उनमें सर्वोच्च सम्माननीय स्थान सहृदया (श्रीरंगम्) को देना चाहिए, जिसने बड़ा उच्च स्तर स्थापित किया और जिसके साथ दो महान् लेखक सम्पादन में सम्मिलित थे। वे आर० कृष्णमाचारियार और आर० वी० कृष्णमाचारियार थे।[२] आलोचना के क्षेत्र में सहृदया अवश्य संस्कृतचन्द्रिका से श्रेष्ठ पत्रिका थी, अन्य तत्त्वों में नहीं।

श्रीरंगम् से सन् १८९५ से सहृदया पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ हुआ। यह मासिक पत्रिका थी। इसका वार्षिक मूल्य तीन रूपये था। इसमें रमणीय चित्र भी प्रकाशित किए जाते थे। इसका प्रमुख पृष्ठ अत्यधिक आकर्षक प्रकाशित होता था। इसमें अधिकांश चित्र कृष्ण और सरस्वती के रहते थे।

सहृदया कुछ समय पश्चात् मद्रास से प्रकाशित होने लगी। आरम्भ में इसका सम्पादन आर० वी० कृष्णमाचारी कर रहे थे। उस समय कुम्भकोणम् से आर० कृष्णमाचारी संस्कृत-पत्रिका प्रकाशित करते थे। इस प्रकार दोनों सफल सम्पादकों के निर्देशन में पत्रिका की प्रगति सदैव होती रही। सम्पादन-कला उच्चस्तरीय थी।

सहृदया का उद्देश्य गीर्वाणी का प्रसार और प्रचार था। इसमें पाश्चात्य पद्धति से की गई समालोचना अत्यधिक उत्कृष्ट, गम्भीर और यथार्थवादी थी। अतः पाश्चात्य ढंग की आलोचना को सहृदया में विशेष महत्त्व दिया जाता था। तदनुसार—

'Sahridaya is intended to serve as a common platform, where the Sanskrit scholars of the old and new type may need and exchange their thoughts through the medium of Sanskrit—the only language which is common to the pandits throughout India and which lends itself admirably for giving the pandits ignorant of English an idea of the critical and historical method of study inaugurated by European servants.

The publication of the journal is a pure labour of love and as such we earnestly solicit the sympathy and co-operation of all lovers of Sanskrit[3].

---

१. Catalogue of Sanskrit, Pali and Prakrit Books, British Musuem 1876-1892.

२. Modern Sanskrit Literature, p. 208.

३. सहृदया १.२

सहृदया वाणी विलास प्रेस से मुद्रित की जाती थी और सहृदया कार्यालय मद्रास से प्रकाशित की जाती थी। प्रथम बारह वर्ष की प्राचीन प्रतियाँ और पश्चात् की नवीन प्रतियाँ कहलाईं। इस पत्रिका के अप्रकाशन से संस्कृत के सामयिक साहित्य की हानि हुई, क्योंकि नूतन काव्यागों का प्रकाशन और परिचय पत्रिका में सफलता पूर्वक किया जाता था ।

सहृदया में सरस कविता, गद्य, निबन्ध आदि प्रकाशित हुए। इसमें आधुनिक पद्धति पर लिखी टीकाओं का प्रकाशन हुआ। अनुवाद और रूपान्तर भी इसमें प्रकाशित किए गए। पत्रिका में कई ग्रन्थों का सारांश भी क्रमशः प्रकाशित हुआ है। यह बत्तीस पृष्ठों की अच्छी पत्रिका थी। पत्रिका के अंकों के अन्तिम पृष्ठों में देशवृत्तान्त प्रकाशित होता था। पत्रिका में गद्य अधिक प्रकाशित किया जाता था। यह पत्रिका लोक-प्रिय थी। यह शोध-पत्रिका थी और इसे इसके कारण विशेष ख्याति मिली। पत्रिका का बाह्य और अन्तः दोनों मुद्रण की दृष्टि से रमणीय तथा त्रुटि रहित था। पत्रिका के अनुसार निम्न विषय प्रकाशित किये जाते थे—

अस्यां हि नवीना आख्यायिकाः, तत्तद्ग्रन्थानां नवीनरीतिमाश्रित्य गुणदोषनिरूपणं प्राचीनगद्यकाव्यानां संग्रह आङ्गलकलाशालासु संस्कृतभाषाशिक्षणे आवश्यकं परिष्कारं भौतिकरसायनप्रकृतिदेहतत्त्वमानसिकगोलशास्त्रादिविषयविमर्शं च स्वयं प्रसिद्धपण्डितमुखेन च प्रकटयितुमभिलषामः ।[१]

सहृदया ही एक मात्र ऐसी पत्रिका थी जिसमें विज्ञान के सम्बन्ध में उत्कृष्ट निबन्ध प्रकाशित किए गए। इसमें अर्वाचीन विषयों को अधिक महत्त्व दिया जाता था। इसमें भाषा-विज्ञान और तुलनात्मक अध्ययन सम्बन्धी निबन्धों का प्राचुर्य था। सहृदया ने अपने स्तर को सदैव ऊंचा रखा। सम्पादकों की यह धारणा थी कि आधुनिक और वैज्ञानिक विषयों पर प्रकाश डालने की अपूर्व क्षमता संस्कृत भाषा में है ।[२] सम्पादकीय स्तम्भों में प्रौढ़-विचारों और अगाध-ज्ञानगरिमा की झलक मिलती है। सहृदया में निम्न श्लोक उसके अंकों के मुख पृष्ठ पर प्रकाशित होता था—

सरसचारुपदक्रमभासुरा
विपुलभावविलासमनोहरा ।
सहृदया हृदयालुभिरादृता
प्रतिकलं परिपोष्यमुपैष्यति ॥

---

१. सहृदया- १.१

२. M. Krishnamachariar : History of Classical Sanskrit Literature, p. 483.

संस्कृत पत्रिका

उन्नीसवीं शताब्दी में कुछ पत्र-पत्रिकायें महाराजाओं के अनुदान से प्रकाशित की गईं। अधिकांश पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन वैयक्तिक व्यय, प्रेम, परिश्रम आदि से आरम्भ हुआ। विद्योदय, उषा, संस्कृतचन्द्रिका, सहृदया आदि श्रेष्ठ पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन वैयक्तिक रुचि, व्यय और परिश्रम से ही किया जाता था। अतः इनका स्तर भी अच्छा था।

पदुकोटा (कुम्भकोणम्) से सन् १८९६ से संस्कृत पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ हुआ। यह मासिक पत्रिका थी। पदुकोटा महाराज से इसके प्रकाशन का व्यय मिलता था। संस्कृत चन्द्रिका की सूचना के अनुसार—

संस्कृत-पत्रिका नाम संस्कृतभाषयाऽपरापि पत्रिका पदुकोटानगरीतः प्रचरति। अहो सौभाग्यभानुरुदेति भारतस्य। तस्याः सम्पादकः श्रीमान् आर० कृष्णमाचार्यः, यः खलु वासन्तिकस्वप्नं नाम नाटकं विरच्य विख्यातिमगमत्। साहायदाता श्रीपदुकोटामहाराजः। मूलमस्या वार्षिकं रूपकत्रयम्। भाषाऽस्याः मधुरा सरलाऽप्यग्राम्या नीतिपूर्णा चेति।[१]

संस्कृत पत्रिका के सहसम्पादक वी० वी० कामेश्वर अय्यर थे। सम्पादक आर० कृष्णमाचारी (१८६९-१९२४) अनुवादक और लेखक के रूप में विख्यात मनीषी हैं।[२] इन्होंने पत्रिका का सम्पादन कुशलता के साथ किया।

काव्यकादम्बिनी

लश्कर (ग्वालियर) से सन् १८९६ से काव्यकादम्बिनी पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ हुआ। यह पत्रिका काव्यकादम्बिनी सभा नामक संस्था से प्रकाशित की जाती थी। यह मासिक पत्रिका थी। यह राजकीय अनुदान से नानूलाल के सम्पादकत्व में प्रकाशित की जाती थी। इसके निरीक्षक रघुपति शास्त्री थे। यह पत्रिका दो वर्ष तक प्रकाशित हुई।

काव्य-कादम्बिनी पत्रिका में केवल समस्या-पूर्तिओं का प्रकाशन होता था। इसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं प्रकाशित किया जाता था। तदनुसार—

'कलिकाल के सम्बन्ध में संस्कृतभाषा का विरल प्रचार देखकर संस्कृत वाणी का परिचय बना रहे, नूतन कवियों को प्रोत्साहन मिले, इस हेतु से श्रीमदुपेन्द्र स्वामी, निशापति-शास्त्री, शिवरामशास्त्री—इन तीनों

---

१. संस्कृत चन्द्रिका ४.१२

२. M. Krishnamachariyar : History of Classical Sanskrit Literature, p. 318.

से प्रोत्साहित नानू लाल सोमाणी ने काव्य-कादम्बिनी नामक सभा राजाश्रित रघुपति शास्त्री जी की अनुमति से प्रसिद्ध कर पत्रिका का प्रकाशन किया।[१] इससे नये कवियों को प्रोत्साहन मिला।

काव्य-कादम्बिनी सचित्र पत्रिका थी। इसमें एक समस्या के लिए केवल दो श्लोक निर्धारित थे। दो से अधिक श्लोकों का प्रकाशन इसमें नहीं होता था।[२] विशेपकर इसमें व्यङ्ग-श्लेप से परिपूर्ण श्लोकों का प्रकाशन होता था। किन्हीं किन्हीं समस्याओं के लिए छन्द निर्धारित कर दिए जाते थे। श्लोकों की टिप्पणी भी इसमें प्रकाशित होती थी। पचास से भी अधिक विद्वानों की समस्यापूर्तियां इसमें प्रकाशित होती थीं। श्लोंकों के कठिन शब्दों का अर्थ सरलता के लिए दे दिया जाता था। समस्यायें शृंगारात्मक अधिक रहती थीं, तथापि वे शिष्टानुमोदित थीं।

काव्य कादम्बिनी पत्रिका का सम्पादन कार्य सामान्य था। इसमें अनेक ऐसे श्लोक उपलब्ध होते हैं जिनमें अनेक दोपों का सम्भावना है। इस प्रकार के श्लोकों का प्रकाशन नहीं होना चाहिए था, या फिर दोप रहित कर प्रकाशित करना था। सम्पादक का कार्य गुण-ग्रहण और दोष-परिहार ही तो है। अतः इसमें प्रकाशित श्लोकों में यतिभंग, छन्द-भंग, पुनरुक्ति, ग्राम्यता आदि दोप मिलते हैं। इसीलिए श्रीमानप्पा ने इस पत्रिका की आलोचना करते हुए लिखा 'विरलानि खलु काव्यकादम्बिन्यां निर्दोपाणि पद्यानि[३]। यह यथार्थ और वस्तुगत समीक्षा है।

दूसरा दोष यह भी है कि इसमें प्रकाशित कविताएं उच्चकोटि की नहीं हैं। इसका प्रधान कारण छान्दिक परतंत्रता है। छन्द की स्वतन्त्रता न होने के कारण भावाभिव्यक्ति में सर्वत्र कमी दिखाई देती है।

काव्य-कादम्बिनी पत्रिका में पहले ग्वालियर के कवियों की रचनाओं का ही प्रकाशन होता था। इसके पश्चात् बाहर के विद्वानों के श्लोक भी प्रकाशित हुये। रघुपति शास्त्री के समस्यापूरक श्लोक सरस और सरल होते थे। रामशास्त्री की चित्रात्मक समस्याओं का प्रकाशन इसमें हुआ। केशवदत्त शर्मा व्यंगात्मक पूर्तिओं में अग्रणी थे। पत्रिका के कतिपय अंको में हास्यात्मक समस्या पूर्तियाँ रुचिकर हुईं। इसमें निम्न श्लोकों का सदैव प्रकाशन हुआ।

---

१. काव्य-कादम्बिनी १.१
२. काव्य-कादम्बिनी. १.१ 'एकस्याः समस्यायाः पूरकं काव्यश्लोकद्वयतोऽधिकं न ग्रहीतं भविष्यति।
३. संस्कृत चन्द्रिका ६.८

नानापुराणनिगमागमदुष्टवाद-
क्षाराम्बुधेर्जलमतीव सुधासमानम् ।
कर्तुं निपीय धरणीतलदेवरूपा
कादम्बिनी शुभजलाप्तसभाविभाति ॥
श्रीमन्माधवरावराजचरिताम्भोभिर्भृताभूषिता
व्यङ्ग्यश्लेषचमत्कृतिक्षणिकभासङ्क्रान्तिभिः प्रार्थिता ।
विद्वद्व्यूहकृषीवलैः सुकवितासस्यैकसञ्जीवनं
नानूलालनभाः सभा विजयतां सत्काव्यकादम्बिनी ॥

संस्कृत चिन्तामणिः

संस्कृत पत्र चिन्तामणिः की सूचना मिलती है।[1] किन्तु यह विज्ञान-चिन्तामणि से कहाँ तक अलग है, इस विषय में अभी तक प्रामाणिक सामग्री नही मिली। संस्कृतचन्द्रिका में भी विस्तृत विवेचन का अभाव है।

साहित्य रत्नावली

उच्चकोटि की साहित्य रत्नावली पत्रिका का प्रकाशन साप्ताहिक पत्र विज्ञानचिन्तामणि के पूर्व प्रारम्भ हुआ था। संस्कृत चन्द्रिका के अनुसार–

विज्ञानचिन्तामणिपत्राधिपैः पूर्व साहित्यरत्नावली काचन पत्रिका प्रति-मासं प्राकाशि। एषा च कुतोऽपि प्रतिवन्धकात्कियन्तमपि कालं प्रतिबद्धा। सा च सम्पन्नेषु पर्याप्तेषु पुनरचिरादेव तैः प्रकाश्येत। एषा च हि काव्यमालेव विविधानि काव्यानि प्रकाश्येत। तत्त्वर्यतां रसिकैः। अनुपमा पत्रिकेयं सरस्वत्या आगारमिवासीत्।[2]

विज्ञानचिन्तामणि पत्राधिप पुन्नश्शेरि नीलकण्ठ शास्त्री थे।

कथाकल्पद्रुमः

इस पत्र की सूचना संस्कृत-चन्द्रिका के कई अंकों में उपलब्ध होती है। तदनुसार—

We have intended to publish a monthly Sanskrit Journal, named 'Kathakalpdrum' if 300 subscribers are available. It will contain free translation of 'Arabian nights in Sanskrit, with necessary changes suitable to Hindus. Sanskrit contains no such composition to day and therefore our effort is to remedy the defect. It will contain 8 pages and the size of it will

---

१. संस्कृतचन्द्रिका १८९९ ई० सितम्बर अङ्क
२. संस्कृत चन्द्रिका ७.५-८

be the same as that of Sanskrit Chandrika is itself the proof of it.[1]

श्रेष्ठपत्रकार अप्पाशास्त्री के सम्पादकत्व में इस पत्र का प्रकाशन संभवतः सन् १८९९ में आरम्भ हुआ था और प्रकाशन स्थल करवीर (कोल्हापुर) था।

मंजुभाषिणी

कांचीवरम् से मई सन् १९०० से मंजुभाषिणी पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ हुआ। इसका वार्षिक मूल्य तीन रुपये थे। यह प्रतिवाद भयंकर मठ कांचीवरम् से प्रकाशित की जाती थी।

मंजुभाषिणी पत्रिका पी० वी० अनन्ताचार्य के सम्पादकत्व में प्रकाशित होती थी। अनन्ताचार्य रामानुज सिद्धान्त के प्रकाण्ड पण्डित थे और उस सिद्धान्त से सम्बन्धित निबन्ध मंजुभाषिणी में विशेष प्रकाशित हुए।

मंजुभाषिणी पत्रिका के प्रथम छः अंक मासिक रूप में प्रकाशित हुए। सातवें अंक के पश्चात् दो वर्ष तक पत्रिका का प्रकाशन पाक्षिक रूप में हुआ। तीसरे वर्ष से यह पत्रिका मास में तीन बार और चतुर्थ वर्ष से साप्ताहिक रूप में पत्रिका प्रकाशित होने लगी। इस समय यह उच्च कोटि की संवाद प्रधान पत्रिका हो गई। यह साप्ताहिक समाचार पत्रिका प्रति शुक्रवार को प्रकाशित की जाती थी[2]। इसमें मधुर काव्य और सरस गीतों का भी प्रकाशन हुआ। संस्कृत चन्द्रिका के अनुसार—

'हृदयग्राहिपदविन्यासविलासा सुश्लोकपरिमण्डिता निरन्तरपरिस्पन्दमानाक्षरपीयूषपरिवाहा रसिकजनहृदयाह्लादनमतीव निपुणा रसिकप्रिया च मंजुभाषिणी नाम संस्कृतसंवादपत्रिका कांचीतः प्रतिमासं प्रचरितुं प्रावर्तत। सा चेयं ततः परं पाक्षिकतां तदनु च साप्ताह्निकतामुपागता नितान्तमेव प्रमोदयत्यन्तरङ्गाणीदानीं प्रेयसं स्वीयानाम्।[3]

मंजुभाषिणी पत्रिका कुल चार भागों में विभाजित थी। प्रथम भाग में धर्म, विशेषकर वैष्णवधर्म के सम्बध में विमर्श और तद्विषयक सामग्री (अथ धर्मः प्रस्तूयते) प्रकाशित की जाती थी। द्वितीय भाग में महापुरुषों की जीवनी (अथ चरितं प्रस्तूयते) और तृतीय भाग में देशवृत्तान्त (अथ वृत्तान्तः प्रस्तूयते) तथा चतुर्थ भाग में दर्शन सम्बन्धी रचनाओं (अथ वेदान्त-

---

१. संस्कृत चन्द्रिका, ६.८

२. मंजुभाषिणी १९०४. न० १ संस्कृतसाप्ताह्निकसमाचारपत्रिका प्रतिशुक्रवासरं प्रकाश्यते।

३. संस्कृत चन्द्रिका ११.१-४

विषयः प्रस्तूयते) का प्रकाशन होता था। इनके अतिरिक्त किन्हीं किन्हीं अंकों में विज्ञान के आधुनिक आविष्कारों का भी विस्तृत, सुन्दर एवं रोचक वर्णन प्रस्तुत किया जाता था।

मंजुभाषिणी पत्रिका की अपनी एक प्रमुख विशेषता यह थी कि इसमें वर्णनात्मक रचनाओं को महत्त्व दिया जाता था। इसमें सन्धि करने पर भी पद अलग अलग लिखे जाते थे। जैसे

'कश्चि दात्मघातो योगी।[1]

इसमें भ्रमण-वृत्तान्तों का भी प्रकाशन होता था। सन् १९१० तक पत्रिका सदा प्रकाशित हुई। यह पत्रिका मठ के व्यय से प्रकाशित की जाती थी। इसमें कुल चार पृष्ठ रहा करते थे। पृष्ठों की संख्या कम होने के कारण अधूरे ही निबन्धों का प्रकाशन होता था। अतः यद्यपि अग्रिम अंक के लिए उत्सुकता बढ़ती है, तथापि सरसता घटती जाती है।

मंजुभाषिणी संस्कृतभाषा में पहली साप्ताहिक पत्रिका है।[2] साहित्यिक निबन्ध भी इसमें प्रकाशित हुए। पत्रिका में वैष्णव धर्म और दर्शन का सुन्दर विवेचन किया गया। कभी-कभी व्याकरण के सम्बन्ध में भी सामग्री प्रकाशित की गई। चरित-विभाग में महापुरुषों के सम्बन्ध में प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध होती है। निम्नांकित श्लोकों में पत्रिका का उद्देश्य निहित है—

'सद्वर्णमितिमधिधर्ममादधाना
चार्वङ्गी शुभचरितातसत्प्रवृत्तिः।
अत्यन्तप्रवणमना गम्भीरभावा
कांचीतः प्रचरति मंजुभाषिणीयम्॥
कल्याणं कृतमतिकर्णचूषणीयं
कालार्हं कलमनुराकमीषणीयम्।
कम्राङ्गी क्रममनघं प्रहर्षणीयं
कांचीतः कलयति मञ्जुभाषिणीयम्॥

अनन्ताचार्य सम्पादन कला निष्णात और धार्मिक प्रवक्ता थे। संस्कृत-चन्द्रिका में इनके सम्बन्ध में पर्याप्त प्रकाश डाला गया है।[3]

---

१. मञ्जुभाषिणी. ३.१५
२. Journal of the Ganganath Jha Research Institute, Vol. XIII, p. 163.
३. संस्कृत चन्द्रिका ८.६

विद्वत्कला

उन्नीसवीं शती के अन्तिम समय में दो संस्कृत पत्रिकाओं का प्रकाशन आरम्भ हुआ। दोनों पत्रिकाओं में एक मात्र समस्यापूर्ति श्लोकों का ही प्रकाशन होता था, अन्य विषयों का नहीं।

लश्कर (ग्वालियर) से सन् १९०० से विद्वत्कला पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ हुआ। यह पत्रिका लश्कर स्थित काव्य-कादम्बिनी सभा से प्रकाशित की जाती थी। इसके पूर्व इसी स्थान से **काव्य-कादम्बिनी** पत्रिका प्रकाशित हुई थी। इसके स्थगित हो जाने के पश्चात् विद्वत्कला पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ हुआ। पत्रिका के केवल दो-तीन अंक प्रकाशित किए गये। इसकी सूचना इस प्रकार मिलती है—

विद्वत्कला एतत्संज्ञा मासिकपत्रिका लश्करनगरात्प्रचरति सेवते च रसिकाननर्घैवेति विदितमेव सर्वेषाम्। अद्यत्वे तु हन्त हन्त ! विविधपरिपाकवशात्-सकलजनमनोविदारिदुर्धरदुःसमयविलसितमनुभवन्तो वयं यथापूर्वं कार्यमेतत्प्रचारयितुं न प्रभवामः। अतः प्रार्थयामहे महाशयान्यदेतस्या ग्राहकतामङ्गीकृत्य भवन्त्वस्मासु कृपालवः। वार्षिकमग्रिमं मूल्यं विद्यार्थिभिर्देयं द्वादशाणकाः तदितरे एका मुद्रा येषां काव्यानि प्रकाश्येरंस्तेषांकृते द्विमुद्रे। पत्रिकेयं विद्वत्कलासभाधिकारिणः लश्करतः (ग्वालियर) लभ्येति।[1]

समस्यापूर्तिः

अप्पाशास्त्री के सम्पादकत्व में एक मात्र समस्यापूर्ति प्रकाशित करने वाली समस्यापूर्तिः का प्रकाशन १९०० ई० से आरम्भ हुआ। संस्कृतचन्द्रिका में पत्रिका के प्रकाशन का कारण और इसकी सूचना उपलब्ध होती है—

सम्प्रति समङ्कुरितमिच्छन्त्योपि बहूनां कवीनां प्रतिभाः सलिलसेकविनाकृता वीरुध इव प्रतिदिनमधिकाधिकं परिम्लायन्ति। एवं विधेऽपि समये परिस्फुरत्प्रतिभाः केचन कविप्रवराः प्रणयन्तोऽपि सन्ति काव्यानि द्रविणाभावव्याकुलीकृता न पारयन्ति मुद्रयितुं प्रबन्धमात्मीयम्। अतः पल्लवयितुं कवीनां प्रतिभालता अभिलष्यामो वयमागामिनो वत्सरात्प्रभृति सहैव चन्द्रिकया प्रतिमासं षोडशपृष्ठात्मकं समस्यापूर्तिखण्डं पृथगेव प्रकाशयितुम्।[2]

इस पत्रिका का प्रकाशन स्थल संस्कृत चन्द्रिका कार्यालय कोल्हापुर था।

उन्नीसवीं शती में प्रकाशित उपर्युक्त पत्र-पत्रिकाओं में समय-समय पर

१. संस्कृत चन्द्रिका ७.८

२. संस्कृत चन्द्रिका ७.६

उच्च कोटि की सामग्री प्रकाशित हुई। इनमें कई पत्र-पत्रिकाओं में संस्कृत भाषा को जन सामान्य तक प्रसारित करने के लिए तदनुकूल सामग्री प्रकाशित हुई। उन्नीसवीं शताब्दी की उच्चतम पत्र-पत्रिकाओं में विद्योदय, उषा, संस्कृत-चन्द्रिका, सहृदया, संस्कृत-चिन्तामणि और मंजुभाषिणी प्रधान हैं।

उन्नीसवीं शती की सम्पूर्ण पत्र-पत्रिकाओं में युगोपयोगी सन्देश और प्रोत्साहन विद्यमान है। राष्ट्रीय परिस्थितिओं के घात-प्रतिघात और प्रतिकूल घटनाओं के रहने पर भी अनेक दिशाओं में उनका अक्षुण्ण महत्त्व है।

उन्नीसवीं शती की अन्य संस्कृत मिश्रित पत्र-पत्रिकायें

संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं के अतिरिक्त अनेक ऐसी पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन उन्नीसवीं शती में आरम्भ हुआ, जिनमें अन्य भाषाओं का भी प्रकाशन होता था। ऐसी पत्र-पत्रिकाओं में यद्यपि संस्कृत के सुभाषित, उपदेशात्मक श्लोकों का प्राचुर्य रहता था, तथापि ऐसी पत्र-पत्रिकाएँ अधिक थी, जो द्वैभाषिक थीं। सम्पूर्ण भारतीय भाषाएं संस्कृत से प्रभावित हैं। अतः उन उन पत्र-पत्रिकाओं में संस्कृत भाषा के लिए निश्चित स्थान प्राप्त था।

संस्कृत-हिन्दी, संस्कृत-अंग्रेजी, संस्कृत-मराठी आदि मिश्रित पत्र-पत्रिकायें प्रकाशित हुई, जिनमें प्रादेशिक भाषाओं के परिशिष्ट सम्मिलित रहते थे। इसके अतिरिक्त अगणित पत्र-पत्रिकायें विद्यालय, विश्वविद्यालयों से प्रकाशित हुई, जिनमें कई मौलिक संस्कृत रचनाओं का प्रकाशन हुआ।[1]

कतिपय महत्त्वपूर्ण संस्कृत मिश्रित पत्र-पत्रिकायें निम्न हैं।

धर्मप्रकाशः (सन् १८६७)

यह पत्र आगरा से संस्कृत-हिन्दी में प्रकाशित हुआ था। यह मासिक और धार्मिक था। इसमें ऐतिहासिक तथ्यों और धार्मिक सिद्धान्तों का विवेचन किया गया। इसके सम्पादक ज्वालाप्रसाद थे। धीरे धीरे इससे संस्कृत का प्रकाशन स्थगित हो गया और कालान्तर में एकमात्र हिन्दी का पत्र हो गया।

सद्धर्मामृतवर्षिणी (१८७५ ई०)

आगरा से इस पत्रिका का प्रकाशन ज्वालाप्रसाद भार्गव के सम्पादकत्व में आरम्भ हुआ। यह मासिक पत्रिका थी। इसमें संस्कृत-हिन्दी को समान स्थान था। धार्मिक जनता को यह पीयूषविन्दु-निवन्धों से संतृप्त करती थी।

प्रयागधर्मप्रकाशः (१८७५ ई०)

प्रयाग से मासिक पत्र प्रयागधर्मप्रकाश का प्रकाशन आरम्भ हुआ। इसके सम्पादक पण्डित शिवराखन थे। कुछ समय पश्चात् यही पत्र रुड़की

---

१. Modern Sanskrit Literature, p. 208

से (१८९० ई०) प्रकाशित होने लगा। यह संस्कृत-हिन्दी में प्रकाशित होता था तथा पूर्णतया धार्मिक पत्र था।

षड्दर्शनचिन्तनिका (सन् १८७७)

पूना से यह पत्रिका संस्कृत-मराठी में प्रकाशित की जाती थी। मैक्समूलर के अनुसार—

'There is a Monthly Serial published at Bombay by M. Moreshwar Kunte, called the 'Shad-darshana Chintanika, or 'Studies in Indian Philosophy' giving the text of the ancient systems of philosophy with commentaries and treatises, written in Sanskrit.[1]

इस पत्रिका का प्रकाशन स्थल षड्दर्शन-चिन्तनिका कार्यालय सदाशिव पेठ, म्युनिसपल हाउस ६४१, पूना था। इस पत्रिका का प्रचार पाश्चात्य देशों में अधिक था।

काव्येतिहाससंग्रहः (सन् १८७८)

खन्दल (पूना) से इस मासिक पत्र का प्रकाशन आरम्भ हुआ। यह पत्र संस्कृत-मराठी में प्रकाशित किया जाता था। इसके सम्पादक जनार्दन बालजी मोडक महाशय थे। इसमें महाराष्ट्र प्रदेश के कवियों की रचनाएं मराठी अनुवाद सहित प्रकाशित होती थीं।

संस्कृत कामधेनुः (सन् १८७९)

वाराणसी से संस्कृत कामधेनु पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ हुआ। यह मासिक पत्रिका संस्कृत-हिन्दी में प्रकाशित की जाती थी। इसके सम्पादक दुण्ढिराज शास्त्री थे। पत्रिका की भाषा सुबोध और सरस थी। इसमें कामधेनु नामक धर्मशास्त्र का प्रकाशन हुआ।

काव्यनाटकादर्शः (सन् १८८२)

इस पत्र का प्रकाशन धारवाड़ से आरम्भ किया गया था। यह मासिक पत्र था। यह संस्कृत-मराठी भाषा में प्रकाशित किया जाता था। कभी-कभी इसमें कन्नड़ भी प्रकाशित की जाती थी। इसमें कई संस्कृत ग्रन्थों का सटीक प्रकाशन हुआ। इस पत्र में केवल काव्य और नाटक ग्रन्थों का ही प्रकाशन हुआ। ये सभी ग्रन्थ प्रायः प्राचीन थे।

धर्मोपदेशः (सन् १८८३)

बरेली से इस पत्र का प्रकाशन मासिक रूप से आरम्भ हुआ। यह पत्र

१. India—What can it teach us p. 72.

संस्कृत-हिन्दी में था। इसके सम्पादक राम नारायण शास्त्री थे। पत्र सुगम और सरल संस्कृत में प्रकाशित होता था।

आयुर्वेदोद्धारकः (सन् १८८७)

मथुरा से इस पत्र का प्रकाशन आरम्भ हुआ। यह मासिक पत्र था। इसका प्रकाशन संस्कृत-हिन्दी में किया जाता था। इसके सम्पादक मथुरादत्त राम चौबे थे।

लोकानन्ददीपिका (सन् १८८७)

लोकानन्द समाज मद्रास से लोकानन्द-दीपिका पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। यह मासिक पत्रिका थी। इसका दूसरा नाम लोकानन्द भी था। यह पत्रिका संस्कृत-तमिल में प्रकाशित होती थी।

द्वैभाषिकम् (सन् १८८७)

जैसोर (बंगाल) से द्वैभाषिकम् पत्र का प्रकाशन आरम्भ हुआ। यह मासिक पत्र था और संस्कृत बंगला में प्रकाशित किया जाता था। यह साहित्यिक कोटि का पत्र था। इसमें अर्वाचीन काव्यों का प्रकाशन होता था। इसके सम्पादक कृष्णचन्द्र मजुमदार थे। यह लोक-प्रिय था। इसमें अनेक सुललित निबन्ध संस्कृत में प्रकाशित हुए।

विद्यामार्तण्डः (सन् १८८८)

प्रयाग से इस पत्र का प्रकाशन ज्वालादत्त शर्मा के सम्पादकत्व में आरम्भ हुआ था। व्याकरण सम्बन्धी इसमें लेख प्रकाशित हुए। श्रेष्ठ संस्कृत ग्रन्थों का हिन्दी अनुवाद इसका प्रमुख लक्ष्य था।

आरोग्य दर्पण (सन् १८८८)

पण्डित जगन्नाथ वैद्य के सम्पादकत्व में यह पत्र प्रयाग से प्रकाशित किया जाता था। यह भी संस्कृत-हिन्दी में था। आयुर्वेद तथा चरकसंहिता से यह पत्र सम्बन्धित था।

पीयूषवर्षिणी (१८९० ई०)

यह पत्रिका फरूखाबाद से प्रकाशित होती थी। इसके सम्पादक गौरी-शंकर वैद्य थे। पत्रिका में आयुर्वेद के सम्बन्ध में सरल निबन्ध प्रकाशित हुए। इसी समय संभवतः कलकत्ता से **अरुणोदयः** का प्रकाशन संस्कृत-हिन्दी में आरम्भ हुआ।

मानवधर्मप्रकाशः (सन् १८९१)

यह पत्र मासिक था और प्रयाग से संस्कृत-हिन्दी में प्रकाशित किया जाता था। इसके सम्पादक भीमसेन शर्मा थे।

सकलविद्याभिवर्धिनी (सन् १८९२)

विजगापट्टम् से यह पत्रिका प्रकाशित की जाती थी। यह मासिक पत्रिका थी और संस्कृत-तेलुगु में प्रकाशित होती थी। इसमें वैज्ञानिक और दार्शनिक निबन्धों का विशेष प्रकाशन हुआ।

श्रीपुष्टिमार्गप्रकाशः (सन् १८९३)

यह मासिक पत्र बम्बई से प्रकाशित किया जाता था। यह संस्कृत और गुजराती भाषा का पत्र था। इस पत्र में वल्लभ सम्प्रदाय के नियमों और सिद्धान्तों का विवेचन हुआ। यह वल्लभ सम्प्रदाय का पत्र था।

संस्कृत टीचर (१८९४ ई०)

यह पत्र गिरगांव से प्रकाशित होता था। सम्भवतः संस्कृत और अंग्रेजी मिश्रित पत्र था। इसकी इतनी ही सूचना उपलब्ध है।[1]

आर्यावर्ततत्त्ववारिधिः (सन् १८९५)

गोविन्दचन्द्र मित्र के सम्पादकत्व में इस पत्र का प्रकाशन लखनऊ से होता था। यह मासिक पत्र संस्कृत-हिन्दी में था।

प्रयाग पत्रिका (सन् १८९५)

यह मासिक पत्रिका प्रयाग से प्रकाशित की जाती थी। इस पत्रिका के सम्पादक जगन्नाथ शर्मा थे। इसमें स्वामी दयानन्द सरस्वती के सिद्धान्तों का विवेचन रहता था। इसमें धर्म सम्बन्धी प्रश्नोत्तर प्रकाशित किये जाते थे। यह संस्कृत-हिन्दी में प्रकाशित होती थी। धार्मिक कृत्यों की सूचना भी इसमें रहती थी।

श्रीवेंकटेश्वर पत्रिका (१८९५ ई०)

मद्रास वेंकटेश्वर से इस पत्रिका का प्रकाशन संस्कृत-तमिल में आरम्भ हुआ था।

काव्यकल्पद्रुमः (सन् १८९७)

बंगलौर से यह पत्र मासिक रूप में प्रकाशित होता था। यह पत्र संस्कृत-कन्नड़ में था। इसके सम्पादक कोमाण्टूर श्री निवास अय्यंगर थे। कुछ संस्कृत-ग्रन्थों की टीकाएं प्रकाशित हुईं। जिनमें कुमारसंभव, मेघदूत, नैषध उल्लेखनीय

---

१. British Museum Catalogue for Periodicals, p. 25.

हैं। इसका प्रकाशन शीघ्र ही बन्द हो गया।[१]

भारतोपदेशकः (१८९७ ई०)

यह पत्र मेरठ से संस्कृत-हिन्दी में प्रकाशित होता था। यह मासिक पत्र था। इसके सम्पादक ब्रह्मानन्द सरस्वती थे। इसमें सामाजिक और धार्मिक निबन्धों का प्रकाशन होता था।

चिकित्सा सोपान (सन् १८९८)

कलकत्ता से यह पत्र संस्कृत-हिन्दी में मासिक रूप में प्रकाशित किया जाता था। इसके सम्पादक रामशास्त्री वैद्य थे।

उपर्युक्त पत्र-पत्रिकाओं के अतिरिक्त संस्कृत-हिन्दी मिश्रित मर्यादा-परिपाटीसमाचार (१८७३ ई० आगरा) यजुर्वेदभाष्यम् (१८८२ ई०) और उपनिषद्भाष्यम् (१८९० ई०) पत्र थे। अन्तिम दोनों पत्रों में एक मात्र हिन्दी अनुवाद सहित ग्रन्थ प्रकाशित किए जाते थे। सन् १८८१ के मध्य एक संस्कृत-हिन्दी पत्रिका का प्रकाशन राजपूताना[२] तथा दूसरी का प्रकाशन सन् १८९४ ई० में औधनगर से हुआ था।[3]

पण्डित पत्रिका (सन् १८९८)

वाराणसी से पण्डित पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ हुआ। यह संस्कृत-हिन्दी मिश्रित पत्रिका थी और मासिक रूप से प्रकाशित की जाती थी। इसके सम्पादक बालकृष्ण शास्त्री थे। इसमें प्रकाशित कतिपय लेख उच्च कोटि के थे। यह समाचार प्रधान पत्रिका थी।

उन्नीसवीं शती की अन्य पत्रिकाओं में **मधुमक्षिका** वेलगांव से प्रकाशित सम्भवतः संस्कृत पत्रिका थी। मैक्समूलर ने संस्कृत मिश्रित पत्र-पत्रिकों में कामधेनु और हरिश्चन्द्र चन्द्रिका का उल्लेख करते हुए लिखा है—

There are other Journals which are chiefly written in the spoken dialects, such as Bengali, Marathi or Hindi, but they contain occasional articles in Sanskrit also, as for instance the Harishchandra Chandrika published at Benaras, the Tattvabodhini published at Calcutta and several others.[4]

---

१. A Supplementary Catalogue of the Skt, Pali Prakrit Books in the British Museum. 1906

२. The Rise and growth of Hindi Journalism P. 112.

३. वही पृ० १५४

४. India—What can it teach us p. 73.

संस्कृतमासिक पुस्तकें

कुछ मासिक पुस्तकों का प्रकाशन उन्नीसवीं शताब्दी में हुआ। इस प्रकार की पुस्तकों में एकमात्र ग्रन्थों का ही प्रकाशन होता था। इन मासिक पुस्तकों की गणना पत्र-पत्रिकाओं में की जा सकती है, तथापि इन्हें मासिक-पुस्तक कहना अधिक समीचीन और सार्थवाह है। इन पुस्तकों का उद्देश्य प्राचीन अथवा अप्रकाशित संस्कृत ग्रन्थों को प्रकाशित करना था। संस्कृत भाषा को पुनरुज्जीवित करने की महती अभिलाषा से संस्कृतमासिक पुस्तक प्रकाशित करने की इच्छा अप्पाशास्त्री ने भी व्यक्त की थी।[1]

ग्रन्थरत्नमाला (सन् १८८७)

यह पुस्तक बम्बई से प्रकाशित की जाती थी। इसमें कुछ अर्वाचीन संस्कृत ग्रन्थ भी प्रकाशित किये गए। तदनुसार—

> 'विविधालङ्कारसहिता
> शास्त्रोपेता सुशोभनासुकला।
> महतां मोदाय भवेत्
> मनीषिणां ग्रन्थरत्नमालेयम् ॥

इसमें प्रकाशित महत्त्वपूर्ण कृतियों में उदारराघव, कुवलयाश्वविलास राघवपाण्डवीयं काव्य और रतिमन्मथं नाटक तथा श्रीनिवासचम्पू प्रधान हैं।

काव्याम्बुधिः (१७९३ ई०)

पद्मराज पण्डित के सम्पादकत्व में काव्याम्बुधिः पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ हुआ। इसका प्रकाशन बेंगूल नगर से किया जाता था। इसका वार्षिक मूल्य तीन रुपये थे। इस पत्रिका के अनुसार—

'अस्मिन् हि सारतरकाव्यचम्पूनाटकालङ्कारच्छन्दोव्याकरणतर्काध्यात्म-शास्त्रादयस्तरङ्गायते'[2]।

काव्यमाला

यह बम्बई से प्रकाशित की जाती थी। ग्रन्थरत्नमाला और काव्य-माला दोनों काव्यादि प्रकाशित करने वाली मासिक पुस्तकों में विशिष्ट स्थान रखती हैं। इनमें फुटकर रचनायें नहीं प्रकाशित हुई हैं।

---

१. संस्कृत चन्द्रिका ७.६
२. काव्याम्बुधि १.१

मैक्समूलर के अनुसार ऋग्वेद को प्रकाशित करने के लिये अलग अलग दो मासिक पुस्तकों का प्रकाशन आरम्भ किया गया। यथा—

'Of the Rig-Veda, the most ancient of Sanskrit books, two editions are now coming out in monthly numbers, the one published at Bombay, by what may be called the liberal party, the other at Prayaga (Allahabad) by Dayanand Saraswati, the representative of Indian orthodoxy. The former gives a paraphrase in Sanskrit, and a Marathi and an English translation, the latter a full explanation in Sanskrit, followed by a vernacular commentary. These books are published by subscripon, andti the list of subscribers among the natives of India is very considerable.'[1]

उपर्युक्त सभी मासिक पुस्तकों में चिरस्थायी साहित्य ही प्रकाशित हुआ है। प्रतिमास पाठकों को चिरस्थायी साहित्य प्राप्त कराने का श्रेय इन मासिक पुस्तकों को ही है। इन मासिक पुस्तकों का नाम और इनका उद्देश्य ही चिरस्थायी साहित्य के प्रकाशन में महत्त्व पूर्ण भूमिका निभा रहा है।

इस प्रकार संस्कृत और संस्कृतमिश्रित पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन भारत के विभिन्न प्रदेशों से उन्नीसवीं शती में हुआ। इनमें प्रकाशित साहित्य का जहाँ एक ओर महत्त्व है, वहीं दूसरी ओर इन पत्र-पत्रिकाओं का महत्त्व नवजागरण में भी है। अनेक पत्र-पत्रिकाओं में स्वातन्त्र्य सम्बन्धित साहित्य प्रकाशित हुआ। उन्नीसवीं शती की संस्कृत पत्र-पत्रिकायें अपनी महती परम्परा रखती हुई बीसवीं शती में पदार्पण करती हैं।

---

१. India—What can it teach us p. 72.

तृतीय अध्याय

बीसवीं शताब्दी की पत्र-पत्रिकायें

बीसवीं शती में दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक, द्वैमासिक, त्रैमासिक षाण्मासिक और वार्षिक आदि विविध प्रकार की पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन विभिन्न स्थानों से आरम्भ हुआ। सर्व प्रथम संस्कृत भाषा में 'काशी विद्यासुधानिधिः' का प्रकाशन हुआ। इसमें पश्चात् निरन्तर संस्कृत पत्रकारिता की प्रगति होती रही और सन् १९०० में काञ्चीवरम् से पहली साप्ताहिक पत्रिका मंजुभाषिणी प्रकाशित हुई। इस प्रकार धीरे-धीरे विकास होता रहा और सन् १९०७ से जयन्ती दैनिक पत्र का प्रकाशन हुआ। संस्कृत की वैजयन्ती दैनिक जयन्ती से फहराने लगी। भले ही दुर्दिन के कारण शीघ्र ही वह अधिक समय न चल सकी।

दैनिक पत्र-पत्रिकायें

दैनिक पत्रों का प्रधान लक्ष्य प्रायः सभी प्रकार के नवीनतम समाचारों तथा तत्सम्बन्धी अन्य तथ्यों को प्रकाशित करना होता है। सम्पादकीय स्तम्भों में तात्कालिक राजनीति, धर्म और साहित्य तथा संस्कृति पर भी विचार किया जाता है। समाचार पत्रों में स्थायी साहित्य का प्रकाशन स्थानाभाव के कारण अधिक नहीं होता तथापि उनका महत्त्व अधिक रहता है। उनमें तात्कालिक महत्त्व की घटनाओं का वर्णन रहता है और मासिक आदि पत्र-पत्रिकाओं में तात्कालिक समाचारों की चर्चा गौण होती है तथा उनमें स्थायी साहित्य का प्रकाशन प्रमुख रहता है। समाचार की दृष्टि से जिन घटनाओं का मूल्य हो, उनकी तात्कालिक प्रतिक्रिया पर विशेष विचार दैनिक पत्रों में किया जाता है। मासिक पत्रिकाओं में मास भर के विषयों की सन्तुलित तथा यथार्थ समीक्षा की जाती है। संस्कृत भाषा का पहला दैनिक समाचार पत्र जयन्ती है।

जयन्ती

१ जनवरी १९०७ ई० को त्रिवेन्द्रम केरल से प्रथम संस्कृत दैनिक पत्र जयन्ती का प्रकाशन हुआ। इसके सम्पादक कोमल मारुताचार्य और लक्ष्मी-नन्दन स्वामी थे। ग्राहकाभाव और अर्थाभाव के कारण वह पत्र शीघ्र प्रकाशन से स्थगित हो गया। संस्कृत में दैनिक पत्र का प्रकाशन यद्यपि

अपने आप में एक अपूर्व घटना है तथापि उसके लिए पर्याप्त पाठक पाना बहुत ही कठिन है। अतः जहाँ एक ओर सम्पादकों का अमित उत्साह परिलक्षित होता है वहीं संस्कृतज्ञों का संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं के प्रति उपेक्षा का भाव भी स्पष्ट प्रतीत होता है। यही कारण है कि अधिकांश संस्कृत पत्र-पत्रिकायें प्रकाशन के बाद एक वर्ष की अल्पावधि के भीतर ही बन्द हो गयीं। जयन्ती की जय-यात्रा प्रारम्भ के साथ ही समाप्त हो गयी। अर्थाभाव के कारण अनेक पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन न तो समय पर हो पाया और न अधिक समय तक हुआ है।

संस्कृतिः

१९ नवम्बर सन् १९६१ ई० को पुण्यपत्तन (पूना) से **विजयः** पत्र का प्रकाशन हुआ। आरम्भिक पन्द्रह दिनों तक यह पत्र विजयः नाम से प्रकाशित होता रहा। इसके पश्चात् पत्र का नाम बदल कर संस्कृतिः रख दिया गया। तब से यह पत्र सुचारु रूप से सतत प्रकाशित हुआ है। यह पत्र पण्डित बालाचार्य वरखेडकर के सम्पादकत्व में प्रकाशित हुआ। इसका वार्षिक मूल्य पन्द्रह रूपये और एक अंक का छः नये पैसे था। इस पत्र का प्रकाशन २०८१ बुधवार पेठ पुना से हुआ था। कुछ समय के लिए पत्र पंढरपुर से प्रकाशित हुआ। सोमवार को इसका प्रकाशन नही होता था।

दो पृष्ठों के इस पत्र में समाचार प्रकाशित किये जाते हैं। प्रथम राजधानी-वृत्तसंग्रहः भाग में राजनैतिक समाचारों के अतिरिक्त अन्य समाचारों का भी संक्षिप्त वर्णन रहता था। विविध-वृत्त संग्रहः नामक द्वितीय भाग में प्रादेशिक-समाचार और अन्य देश-विदेशों के समाचारों के सार का आकलन किया जाता था। द्वितीय पृष्ठ में सांस्कृतिक विवेचन प्रस्तुत किया जाता था। इसी पृष्ठ के सम्पादकीय स्तम्भ में कभी-कभी गम्भीर विषयों का भी विवेचन रहता था। सम्पादकीय निबन्धों की भाषा सरल और विचारात्मक तथा उपदेशात्मक थी। भारतीय संस्कृति की महत्ता पर सम्पादक के विचारोत्तेजक निबन्ध प्रकाशित हुए हैं। यथा—

'आसहस्त्रावधिवर्षेभ्यः मानवः शक्तीः अवलम्ब्य ऐहिके पारलौकिके विषये च सुखावाप्त्यै काश्चिन्नियमानङ्गीकृत्य कृतकृत्यतां भजते। तानेव नियमान् वदन्ति केचित् विपश्चितः संस्कृतिरिति। केचित् धर्म इति। केचित् संस्कृतिधर्मयोः कंचित् भेदं कल्पयन्ति। परं न वयं तथा मन्यामहे। यतः संस्कृतिशब्दः धर्मशब्दापेक्षया नूतनः। संस्कृतिविहीनं जीवनं न मानवजीवनं, अपितु पशुभ्योऽपि हीनतरं यत् किंचित्। भारतीयां संस्कृतिं स्वीकृत्य सर्वैः मानवीयं जीवनं प्रथमं सम्पादनीयम्। तदेव सार्थजीवनं भवेत् यत् सांस्कृतिकं

भवेत् ।[1]

पत्र का मुद्रण सामान्य है । अनेक अशुद्धियाँ रहने के कारण कभी-कभी अर्थ समझ में नहीं आता । पत्र में निम्नांकित श्लोक प्रकाशित किया जाता था—

या वेदस्मृतिशास्त्रविन्मुनिवरैर्जुष्टा सुखैकास्पदा
दैवीसम्पदमाश्रिता भगवता श्रीशेन संरक्षिता ।
या वर्णाश्रमधर्मसारहृदया कामार्थमोक्षप्रदा
नित्या विश्वहितैषिणी विजयते सा वैदिकीसंस्कृतिः ॥

पण्डित बालाचार्य अपने व्यक्तिगत व्यय से इस पत्र को जिस उत्साहसे प्रकाशित करते रहे, वह नितान्त प्रशंसनीय है । संस्कृत की सच्ची सेवा आर्थिक कष्ट सहन कर भी ऐसे ही विद्वानों ने की है । संस्कृत का यह पहला दैनिक पत्र नहीं है, जैसा कि कुछ विद्वान् मानते हैं ।[2]

सुधर्मा

संस्कृत भाषा का तीसरा दैनिक पत्र सुधर्मा जुलाई १९७० ई० को प्रकाशित हुआ । इसके सम्पादक वरदराज अयंगार हैं । इसका प्रकाशन ५६१ रामचन्द्र अग्रहार मैसूर से हुआ । चौवीस रुपये वार्षिक मूल्य है । रविवार को यह नहीं प्रकाशित होता । मैसूर से अनेक उच्चकोटि की संस्कृत मासिक, त्रैमासिक पत्रिकायें प्रकाशित हुई हैं । सुधर्मा दैनिक भी मैसूर की ही अनुपम देन है । इसका आकार लघु होता है ।

सुधर्मा में सरल संस्कृत में देश विदेश के संक्षिप्त समाचारों का प्रकाशन तथा धार्मिक और वैज्ञानिक निबन्धों का भी प्रकाशन होता है । बाल साहित्य को भी महत्त्व दिया जाता है । मुद्रण त्रुटियाँ रहती हैं ।

इस प्रकार आज तक संस्कृत में केवल शिव त्रिनेत्रवत् तीन ही दैनिक पत्र प्रकाशित हुये । कुछ ऐसे भी दैनिक पत्र प्रकाशित किए गये जिनकी लिपि संस्कृत नहीं थी, यद्यपि वे संस्कृत के ही पत्र थे । ऐसे दैनिक पत्रों में मलयालम लिपि में प्रकाशित साहित्यशर्वरी प्रमुख है । जयपुर से संस्कृत-हिन्दी दैनिक अधिकारः भी उल्लेखनीय है । इसके सम्पादक नारायण-शास्त्री हैं । इसमें संस्कृत का स्थान अल्प रहता है ।

---

१. संस्कृतिः १.७२ पृ० २ ।

२. दिव्यज्योतिः [शिमला] नम्बर १९६१, संस्कृतपत्रकारितायां समस्तसंसारे दैनिकपत्रप्रकाशनस्य प्रथम एवायमवसरः ।

साप्ताहिक पत्र-पत्रिकायें

सूनृतवादिनी

उन्नीसवीं शती में मंजुभषिणी और विज्ञानचिन्तामणि दो साप्ताहिक पत्रों का प्रकाशन हुआ था। सन् १९०६ में कोल्हापुर से सूनृतवादिनी पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। इसके सम्पादक विद्यावाचस्पति अप्पाशास्त्री राशिवडेकर थे। यह पत्रिका प्रति शनिवार को संस्कृतचन्द्रिका कार्यालय कोल्हापुर से प्रकाशित की जाती थी। यह पत्रिका सन् १९०९ तक नियमित समय पर प्रकाशित होती रही।

सूनृतवादिनी समाचार प्रधान पत्रिका थी। समाचारों के अतिरिक्त धार्मिक, सामाजिक और अन्य सामयिक निबन्धों का भी प्रकाशन इसमें होता था। सनातन धर्म के विरुद्ध प्रबन्धों का प्रकाशन नहीं होता था। इस पत्रिका का वार्षिक मूल्य तीन रुपये था। चार पृष्ठों की इस पत्रिका में सरल भाषा में शिक्षात्मक निबन्ध भी प्रकाशित किए जाते थे।

अप्पाशास्त्री की भाषा सरल और प्रवाहमयी तथा प्रभावोत्पादक है। पत्रिका में कुछ सरस प्रबन्ध भी प्रकाशित किए गए। किसी भी धर्म के विरुद्ध निबन्धादि का प्रकाशन सूनृतवादिनी में नहीं किया जाता था। वैदिक मार्ग की प्रतिष्ठा करने वाले निबंधों का प्रकाशन इसमें हुआ। सामयिक प्रबन्ध केवल गद्य में स्वीकृत किये जाते थे। छपाई कलात्मक और त्रुटि रहित थी। पत्रिका का आदर्श श्लोक निम्नाङ्कित था—

'शिवपदसरसीरुहैकभृङ्गी
प्रियतमभारतधर्मजीवितेयम्।
मदयतु सुधियां मनांसि कामं
चिरमिह सूनृतवादिनी सुवृत्तैः' ॥

सूनृतवादिनी युगानुरूप उच्चकोटि की पत्रिका थी। इसके आय व्यय का प्रधान उत्तरदायित्व श्री अप्पा शास्त्री राशिवडेकर पर था। शास्त्री जी इसे प्रकाशित करने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहे। इस दिशा में उन्हें अनेक बार बाईक्षेत्र, करवीर, राशिवडे, गगनबाड़ा आदि स्थानों में रहना पड़ा। अन्त में राजनैतिक कुचक्र और धनाभाव के कारण पत्रिका का प्रकाशन स्थगित हो गया। पत्रिका अत्यधिक प्रसिद्ध और उच्च आदर्श की स्थापना में सफल हुई। डा० राघवन् के अनुसार—

'The honour of pioneering effort in this line goes to the Sanskrit-Chandrika and the Sunritavadini of Kolhapur with

which Appa Sastri Rasivadeker was actively associated.[1]

श्रीमानप्पा संस्कृत के महान् पण्डित थे। संस्कृत के प्रति उनका अनुराग पदे पदे प्रतीत होता है। उन्होंने अपना समस्त जीवन देववाणी के प्रसार और प्रचार के लिये समर्पित किया। उनका पारिवारिक जीवन सुखद न होने पर भी वे कर्मठ मनीषी थे। उनके विचार उच्चकोटि के थे। यथा—

'अपरं हि वैभवं भारतीयानां संस्कृतभाषा अथवा प्राणा एवेयमेतेषाम्। ज्ञानमयाः हि प्राणाः। यच्च भारतीयानां ज्ञानं तदेतत् संस्कृतभाषयैव संघटितम्। तेषामेव हि कृते सेयं सूनृतवादिनी प्रकाश्यते ये किल सर्वाङ्गीणमेतस्याः प्रचारमभिवाञ्छन्ति। येषां च संस्कृतमेवैका भारतीयानां भाषा भवत्वित्यभिप्रायः।[2]

संस्कृत साकेत

सन् १६२० में अखिल भारतीय विद्वत् समिति की स्थापना अयोध्या में हुई। उस समय महात्मा गान्धी द्वारा संचालित सत्याग्रह आन्दोलन का प्रचार हो रहा था। सन्१६२० में ही अयोध्या के विद्वानों ने अंग्रेजी शासन के विरोध में संस्कृत साकेत पत्र का प्रकाशन आरम्भ किया। यह पत्र अखिल भारतीय-विद्वत्परिषद् अयोध्या से प्रकाशित किया जाता है। सन् १६२० से लेकर सन् १६३० तक इस पत्र के प्रथम सम्पादक हनुमत् प्रसाद त्रिपाठी थे। इसके पश्चात् सन्१६३१ से सन् १६४० तक यह पत्र रूप नारायण मिश्र के संपादकत्व में प्रकाशित हुआ। सन् १६४० से सन् १६५८ तक ब्रह्मदेव शास्त्री इस पत्र के सम्पादक थे। इसके पश्चात् यह पत्र पुनः रूप नारायण मिश्र के सम्पादकत्व में प्रकाशित हुआ।

संस्कृत साकेत समाचार प्रधान पत्रों में से है। इसमें अधिकतर धार्मिक समाचारों का ही प्रकाशन किया गया। धार्मिक उत्सवों की सूचना और उनके सम्बन्ध में लघुनिबन्ध तथा कवितायें प्रकाशित हुई। हास्य कथाएं भी इस पत्र में प्रकाशित की गई। इसमें संस्कृत शिक्षा प्रणाली के विषय में अच्छे निबन्ध मिलते हैं। आधुनिक विद्वानों के सम्बन्ध में भी इसमें सामग्री मिलती है। इसमें रामायण और महाभारत आदि ग्रन्थों के महत्त्व पूर्ण अंश प्रकाशित किये गये। नित्य नैमित्तिक विधानों की व्याख्या किन्हीं किन्हीं अंकों में मिलती है। पत्र के सम्पादकीय निबन्धों में तात्कालिक घटनाओं का विवेचन मिलता है। संस्कृत साकेत का आदर्श श्लोक निम्नांकित है—

---

१. Modern Sanskrit Literature, p. 307-8.

२. सूनृतवादिनी १.५

जयन्तु साकेतवचः सुधाश्रियो
जयन्तु साकेतनिकेतनश्रियः ।
तमोटवीपार-विहारशालिनां
जयन्तु साकेतमुपेत्यसद्‌गुणाः ॥

संस्कृतम्

सन् १९३० में संस्कृतम् पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। यह पत्र संस्कृत कार्यालय अयोध्या से प्रकाशित किया गया। इस पत्र के प्रथम सम्पादक पण्डित कालीकुमार त्रिपाठी थे। अनेक वर्षो तक यह पण्डित काली प्रसाद शास्त्री के सम्पादकत्व में भी प्रकाशित हुआ। संस्कृतम् पत्र प्रति मंगलवार को प्रकाशित किया जाता था। इस पत्र का वार्षिक मूल्य सात रुपये था। पत्र में समाचारों का प्रकाशन होता था, तथा धार्मिक उत्सवों की सूचनाएं भी प्रकाशित की जाती थीं। इसमें सामाजिक, राजनैतिक और देश-विदेश आदि की संक्षिप्त सूचनाएं प्रकाशित की गई। कभी-कभी पत्र में लघु गीत और निबन्धों का प्रकाशन हुआ। पत्र में वर्णनात्मक गीत भी प्रकाशित किये गये।

इस पत्र में अनेक विद्वानों की फुटकर रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं। श्रीकर शास्त्री के प्रकृति वर्णनात्मक गीत प्रभावोत्पादक है। पत्र में सूक्तियों का प्रकाशन होता था। बाल-विनोद स्तम्भ में बालकों के लिए रमणीय, सरस, सरल और उचित सामग्री संकलित की जाती थी।

महामहोपाध्याय काली प्रसाद शास्त्री ने सन्१९३४ में 'अमरभारती' पत्रिका का प्रकाशन बनारस से प्रारम्भ किया था। उस समय संस्कृतं पत्र का प्रकाशन स्थगित था। बनारस रहते समय काली प्रसाद ने संस्कृत भाषा में एक दैनिक पत्र प्रकाशित करना चाहा था, परन्तु पुनः अयोध्या चले जाने पर दैनिक पत्र का प्रकाशन न हो सका। वहीं से संस्कृतम् फिर से प्रकाशित होने लगा।

संस्कृत पत्र की भाषा सरल होने पर भी संस्कृत के मध्य में अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग अनौचित्यपूर्ण था। डा० राघवन् के अनुसार—

Sanskritam of the same place (Ayodhya) which uses an uncouth style of Sanskrit when it has to deal with modern topics, public questions and political events.'[1]

इसके मुख पृष्ठ पर सभी अंकों में संस्कृत भापा का अमरत्व विधायक निम्नांकित आदर्शश्लोक प्रकाशित किया जाता था।

---

१. Adyar Library Bulletin, Vol. XX, 12, p. 45.

यावद् भारतवर्षं स्याद्
यावद् विन्ध्यहिमाचलौ ।
यावद् गंगा च गोदा च
तावदेव हि संस्कृतम् ॥

छात्रों को कमल मानकर पत्र की उपमा सूर्य से दी गई है ।

विकाशयंश्छात्रसरोजवृन्दान्
पद्यांशुभिः पूर्णसुदीप्तिदीप्तैः ।
प्रबोधकृद् द्वादशरूपधारी
विद्योततां संस्कृतसूर्य एषः ॥

देववाणी

सन् १९३४ के लगभग इस पत्रिका का प्रकाशन कलकत्ता से प्रारम्भ हुआ था । पत्रिका की सूचना पद्यवाणी पत्रिका में इस प्रकार है—

'देववाणी साप्ताहिक सन्देशवहा नवीना संस्कृतपत्रिका । अस्याः सम्पादकः श्रीकृष्णचन्द्रस्मृतितीर्थः पृष्ठपोषकः कविराजश्रीविमलानन्दतर्कतीर्थः । प्राप्ति स्थानम् ३८ नं० हरिमोहन लेन बेलेघाटा, कलिकाता ।

साम्प्रतिके काले इयमेका साप्ताहिकी संस्कृतपत्रिका नियमेन प्रतिसप्ताहं प्रचार्यमाणा दृश्यते । अस्यां सामयिकाः सन्देशाः वंगीयसंस्कृतपरीक्षासमिति-सम्बन्धिनो वृत्तान्ताः विविधाः संस्कृतविद्यालयवार्ताः स्वल्पमात्राणि कवि-काव्यादीनि पुरातनसंस्कृतपरीक्षाप्रश्नपत्रादीनि च नियमेन प्रकाश्यन्ते । अनया पत्रिकया संस्कृतज्ञानां विदुषामवसरविनोदनान्यपि सम्पद्यन्ते । अस्याः त्रैमासि-कमूल्यमेकरूप्यकम्, पाण्मासिकमूल्यं रूपकद्वयम् ।[1]

संस्कृतसाप्ताहिक पत्रिका

संस्कृत पद्यवाणी में इस पत्रिका की संक्षिप्त सूचना उपलब्ध होती है । तदनुसार—

विदितमेवेदमनेकेषां विदुषां यत् फरिदपुरप्रदेशान्तर्गत धुलजोड़ा विद्व-त्सम्मेलनस्य प्रधानकार्यालयः कलिकातानगर्यामिवाभवत् । सम्प्रति श्रूयते तस्मादेका संस्कृतभाषामयी साप्ताहिकी पत्रिका प्रकाशं गमिष्यतीति, तदिदं समाकर्ण्य सुतरामानन्दिता वयं संस्कृतविद्याया नवीनोन्नतिसम्भावेन ।[2]

इस पत्रिका का प्रकाशन कब आरम्भ हुआ ? पत्रिका के सम्पादक कौन

---

१. संस्कृत पद्यवाणी [कलकत्ता] १.४
२. संस्कृत पद्यवाणी [कलकत्ता] १.१

थे ? इसमें किस प्रकार की सामग्री का प्रकाशन होता था—आदि प्रश्नों का समाधान पत्रिका के उपलब्ध न हाने के कारण नहीं हो पाता। इतना निश्चित है कि इस पत्रिका का प्रकाशन सन् १९३४ के पूर्व हुआ था।

सूनृतवादिनी

सन् १९३४ के आसपास वाराणसी से सूनुतवादिनी पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ हुआ। इसमें सन्देह है, क्योंकि 'सूनृतवादिनी' साप्ताहिक पत्रिका का प्रकाशन कोल्हापुर से सन् १९०६ से आरम्भ हुआ था। इस पत्रिका की प्रतियाँ उपलब्ध न होने के कारण किसी भी तथ्य का निर्णय नहीं हो पाता। इस पत्रिका की सूचना संस्कृत पद्यवाणी में उपलब्ध होती है—

आसीत् वाराणस्यां वहोः कालात् पूर्वं लब्धप्रचारा सूनृतवादिनी नाम पत्रिका विद्वत्प्रिया पत्रिका साप्ताहिकी। हन्त सा कालेन कवलीकृता क्षीणां स्मृतिमपि नोत्पादयते।[1]

मंजूषा

डॉ० क्षितीशचन्द्र चटर्जी के सम्पादकत्व में सन् १९३६ के लगभग मंजूषा साप्ताहिकी पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ हुआ। चटर्जी महोदय ने इसके पूर्व मासिक पत्रिका मंजूषा (१९३५ ई०) का प्रकाशन आरम्भ किया था, उसी के साथ साप्ताहिक मंजूषा कुछ समय के लिए प्रकाशित कर नया स्तर स्थापित करने की चेष्टा की थी, परन्तु पत्रिका प्रकाशन से शीघ्र स्थगित हो गई। संस्कृत रत्नाकर में इसकी सूचना इस प्रकार उपलब्ध होती है।

मंजूषा साप्ताहिकी एतन्नाम्नी साप्ताहिकी संस्कृतपत्रिका कलकत्तानगरात् प्रतिसप्ताहं नियतसमये प्रकाश्यते। एतस्या विषयप्रकाशनं शैली च नूतनमभिनवा परमोपयुक्ता च।[2]

देववाणी, संस्कृतसाप्ताहिकपत्रिका, सूनृतवादिनी और मंजूषा पत्रिकाओं के कुछ ही अंक प्रकाशित होने के कारण वे अनुपलब्ध हैं।

सुरभारती

सन् १९४७ से सुरभारती पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ हुआ। इस पत्रिका के सम्पादक श्री गोविन्दवल्लभ शास्त्री थे। यह पत्रिका सुरभारती कार्यालय, ११६ भूलेश्वर बम्बई से प्रकाशित की जाती थी। इसका वार्षिक मूल्य चार रूपये था। यह बत्तीस पृष्ठों की अच्छी पत्रिका थी।

---

१. संस्कृत पद्यवाणी [कलकत्ता] १.१ पृ० ४८
२. संस्कृत रत्नाकर, [जयपुर] ४.२ पृ० ६१

सुरभारती पत्रिका के विषय में मालवमयूर पत्र में प्रकाशित सूचना सुव्यवस्थित रूप में उपलब्ध होती है। यथा—

'विश्वस्मिन् विश्वभारते भारत-भारती-भारतीय-भारतीयतागौरवविवर्द्धिषया प्रसरन्ती संस्कृतपत्रदोर्लभ्यमपाकुर्वती विद्वज्जनमण्डलसहयोगमुपनयन्ती मोहमयीतः सुरभारतीयं पत्रिका प्रचरति। इयं पत्रिका विद्वद्वरवृन्दलब्धसहायाऽस्ति।'[1]

भवितव्यम्

सन् १९५१ में संस्कृतभाषा प्रचारिणी सभा नागपुर से इस पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। पत्र के सम्पादक प्रा० श्रीधर भास्कर वर्णेकर ने इसे आरम्भ के चार वर्षों तक प्रकाशित किया। आज कल यह पत्र दि० वि० वराडपाण्डे के सम्पादकत्व में प्रकाशित किया जाता है। इस पत्र का वार्षिक मूल्य पांच रुपये है तथा प्रकाशन स्थल मोर हिन्दी भवन नागपुर है।

संस्कृतभवितव्यम् प्रकाशन के समय से ही उन्नति की ओर उन्मुख रहा है। इस पत्र में समाचारों का सरल भाषा में प्रकाशन हो रहा है। समाचारों के अतिरिक्त संस्कृतभाषा में दिये गये भाषण भी प्रकाशित किए जाते हैं। बालकों के लिए भी सामग्री प्रकाशित होती है। आधुनिक विज्ञानों के लिए पत्र में स्तम्भ रहता है। छोटी-छोटी रुचिकर कहानियों का प्रकाशन पत्र में होता रहता है। पत्र का आदर्श श्लोक निम्नांकित है—

यावदेव प्रतिष्ठा स्यात्
भारतस्य महीतले।
ज्ञानामृतमयी तावत्
सेव्यते सुरभारती॥

भवितव्यम् एक उच्चकोटि का पत्र है। यह सतत प्रकाशित हो रहा है। इसके विशेषांक भी प्रकाशित किये जाते हैं। इसकी भाषा सरल सन्धि रहित है। इसमें धर्म, साहित्य, समाज और राजनीति आदि विषयों में सरल निबन्ध उपलब्ध होते हैं। आधुनिक समस्याओं का वर्णन सरसता के साथ किया जाता है। सरल शैली में प्रकाशित इस पत्र को संस्कृत विद्वानों ने सम्मानित किया है। डा० राघवन् के अनुसार पत्र में प्रकाशित सामग्री और शैली दोनों अनुपम हैं—

'Special mention must be made of the Weekly Sanskrit Bhavitavyam of the Sanskrit Pracharini Sabha, Nagpur,

---

१. मालवमयूर १.५.

which is good in the material presented and the style employed.[1]

श्रीधर वर्णेकर ने इसका विस्तृत परिचय तथा प्रकाशित साहित्य का भी परिचय दिया है।[२] परन्तु प्रकाशित साहित्य का परिचय केवल अपने सम्पादन काल का ही दिया है, बाद का नहीं।

वैजयन्ती

अगस्त सन् १९५३ में वैजयन्ती साप्ताहिक पत्रिका का प्रकाशन बागलकोट से आरम्भ हुआ। इस पत्रिका का प्राप्तिस्थान वैजयन्ती कार्यालय, योगमन्दिर बागलकोट था। वैजयन्ती का वार्षिक मूल्य पांच रुपया था। इस पत्रिका के संचालक गलगली रामाचार्य और सम्पादक पण्ढरीनाथाचार्य थे। यह पत्रिका प्रति मंगलवार को प्रकाशित की जाती थी। इस पत्रिका का मुद्रण त्रुटिरहित था। इसकी भाषा सरल थी। इसमें महाभारत की कथाओं का गद्य रूप प्रस्तुत किया जाता था। इसके विमर्शवेदिका स्तम्भ में अर्वाचीन संस्कृत पुस्तकों की समालोचना प्रकाशित की जाती थी। इस पत्रिका में बालोद्यानं बालकों के लिए महनीय स्तम्भ था। इस स्तम्भ में श्रीहरि की लीलाओं का संक्षिप्त एवं सरस वर्णन प्रस्तुत किया जाता था। अन्त में साररूप में समाचारों का भी विवेचन किया जाता था।

यह पत्रिका कुछ समय के पश्चात् बन्द हो गई। बन्द होने का कारण सम्पादक के अनुसार मुद्रण और धन का अभाव है। यथा—

'साप्ताहिकपत्रेण विशेषसंस्कृतप्रसारो भवेदिति भावनया प्रारब्धाऽसीत् वैजयन्ती परन्तु स्वतन्त्रमुद्रणालयाभावात् पर्याप्तधनाभावाच्च तस्याः नियतप्रकाशनं अशक्यप्रायमेतत् सञ्जातम्। मदीया प्रार्थना मुद्रणालयाधिपैरपि अर्थाभावात् नैव कर्णे कृता। ततश्चान्ते पत्रिकायाः प्रकाशनं सम्पूर्णमेव प्रतिबद्धम्।[3]

इसमें कुल छः पृष्ठ रहते थे। सम्पादक की निर्भीक भावना उल्लेखनीय है। यथा—

यद्यपेक्ष्यते यदि वा रोचते वैजयन्ती तर्हि मूल्यं प्रेष्यताम्। नो चेत् तथैव निवेद्यताम्।[४]

---

१. Modern Sanskrit Literature, p. 209.

२. अर्वाचीन संस्कृत साहित्य पृ० २९१-३०५

३. मधुरवाणी १.१

४. वैजयन्ती १.८ पृ० ३

पण्डित-पत्रिका

सन् १९५३ में पण्डित-पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ हुआ। यह पत्रिका अखिल भारतीय पण्डित महापरिषद् धर्मसंघ दुर्गाकुण्ड काशी से प्रकाशित की जाती थी। इसका वार्षिक मूल्य चार रुपये तथा त्रैमासिक मूल्य एक रुपया था। यह पत्रिका प्रति सोमवार को प्रकाशित की जाती थी। इस पत्रिका के के संरक्षक श्रीपण्डित रामयश त्रिपाठी थे। सम्पादक मण्डल में श्री महादेव शास्त्री, दीनानाथ शास्त्री, रामगोविन्द शुक्ल, सीताराम शास्त्री और बालचन्द दीक्षित थे। पण्डित पत्रिका का प्रकाशन धर्म के प्रचार के लिए किया गया था। अतः इसमें धार्मिक निबन्धों का प्रकाशन विशेष रूप से हुआ। इस पत्रिका में कुल चार पृष्ठ रहते थे। इन चार पृष्ठों में सैद्धान्तिक, वैज्ञानिक, आध्यात्मिक, राजनीतिक, सामाजिक आदि विषयों से सम्बन्धित रचनाएँ प्रकाशित की जाती थीं। यह पत्रिका सन् १९६० तक प्रकाशित हुई। पत्रिका बन्द होने का कारण आर्थिक समस्या थी। इस पत्रिका के लगभग दो सौ ग्राहक थे।

वादे वादे जायते तत्त्वबोधः के अनुसार इस पत्रिका में वाद-विवाद भी प्रकाशित किये जाते थे। वाराणसेय संस्कृत विद्यालय के परीक्षा-फलों का प्रकाशन इसमें होता था। पत्रिका का आदर्शश्लोक निम्नांकित था—

न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्
धर्मं जह्याज्जीवितस्यापि हेतोः।
धर्मो नित्यः सुखदुःखे त्वनित्ये
जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः॥

भाषा

जुलाई सन् १९५५ से पुस्तकाकार भाषा नामक पत्रिका का प्रकाशन हुआ। इस पत्रिका का वार्षिक मूल्य पाँच रुपये था। सम्पादक गौ० स० श्रीकाशी कृष्णाचार्य और० सं० कौ० कृष्णसोमयाजी थे। यह पत्रिका ६ अरण्डेलपेट गुण्टूर-२ से प्रकाशित की जाती थी। पत्रिका का प्रकाशन सोमवार को होता था। इसमें संस्कृत पाठशालाओं का इतिवृत्त तथा अन्य समाचारों का भी प्रकाशन होता था। पत्रिका की भाषा सरल थी।

गाण्डीवम्

१९६४ ई० में वाराणसी से गाण्डीवं पत्र का प्रकाशन हुआ। इसके सम्पादक रामबालक शास्त्री थे। प्रायः इसमें सभी प्रकार के समाचारों का

प्रकाशन होता था। इसका प्रकाशन स्थल नयी बस्ती रामापुरा वाराणसी था। पत्र सदैव आर्थिक संकट से ग्रस्त था। मुद्रण शुद्धिरहित तथा अस्पष्ट होने के कारण अर्थावगति में बहुत ही बाधा पड़ती है। विशेषाङ्कों में समाचारों के अतिरिक्त निबन्धादि भी प्रकाशित मिलते हैं।

कुछ वर्ष पूर्व शास्त्री जी के निधन के पश्चात् इसका प्रकाशन बन्द हो गया था, परन्तु सौभाग्य का विषय है कि यह पत्र पुनः गोपाल शास्त्री के सम्पादकत्व में संस्कृत विश्वविद्यालय से प्रकाशित होने लगा है।

साप्ताहिक पत्रों में सूनृतवादिनी और भवितव्यं का प्रमुख स्थान है। दोनों की शैली, भाषा और विषयों का प्रकाशन उच्च कोटि का मिलता है। सभी साप्ताहिक पत्र-पत्रिकाओं में संस्कृत भाषा को सरल और जन सामान्य तक पहुँचाने का सफल प्रयास किया गया। सम्पादकों का महान् त्याग और उच्च आदर्श इन पत्र-पत्रिकाओं में मिलता है।

पाक्षिक पत्र पत्रिकायें

बीसवी शताब्दी में अनेक पाक्षिक पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। उन्नीसवीं शती में विज्ञान-चिन्तामणि, मंजुभाषिणी आदि पाक्षिक पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हो चुका था। इन्हीं पाक्षिक पत्रों की सरणि में बीसवीं शती में भी यह परम्परा सतत परिर्वाधित होती रही।

विद्वन्मनोरञ्जिनी

इस पाक्षिक पत्रिका का प्रकाशन अक्टूबर १९०७ ई० को कांची से हुआ था। कांची प्राचीन काल से संस्कृत का केन्द्र कहा है। यहाँ से अनेक पत्र-पत्रिकायें प्रकाशित हुई हैं। इसका प्रकाशन वैजयन्ती पाठशाला के प्राचार्य के सम्पादकत्व में होता था। इसमें धार्मिक विषयों की बहुलता रहती थी।

मनोरञ्जिनी

मनोरञ्जिनी भी पाक्षिक पत्रिका थी। इसका प्रकाशन ट्रिप्लीकेन मद्रास से होता था। परन्तु संस्कृत लिपि में यह नहीं प्रकाशित होती थी। इसका प्रकाशन १९०७ ई० में हुआ था। अप्पाशास्त्री के अनुसार विषयगत विशृंखलता इसमें रहती थी।[1]

अमरभारती

इस पाक्षिक पत्रिका का प्रकाशन सन् १९१० में त्रिवेन्द्रम् केरल से हुआ

---

१. सूनृतवादिनी १.३७

था। इसके सम्पादक कुट्टचेटि आर्यशर्मा थे। यह प्रसिद्ध पाक्षिक पत्रिका अर्थाभाव के कारण अधिक समय तक न प्रकाशित हो सकी।

मित्रम्

सन् १९१८ ई० में मित्रं का प्रकाशन पटना से हुआ था। इसका प्रकाशन संस्कृत संजीवन सभा से होता था।[1]

मथुरा से **संस्कृतभास्करः** के प्रकाशन की योजना बनायी गई थी, परन्तु पर्याप्त ग्राहक और अर्थाभाव के कारण पत्र प्रकाशित न हो सका।[2]

सहस्रांशुः

सन् १९२९ में वाराणसी शारदा भवन से सहस्रांशुः नामक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। इस पत्र के सम्पादक और प्रकाशक गौरीनाथ पाठक थे। इसका वार्षिक मूल्य डेढ़ रुपया तथा एक अंक का मूल्य दो पैसा था।

सहस्रांशु पत्र की भाषा सरल और सुगम थी। सुप्रभातम् पत्र के अनुसार—

एतादृशं सरलं सुगमं सचित्रं पाक्षिकं पत्रं संस्कृतजगति न भूतं न भविष्यतीति साभिमानं वक्तुं शक्यम्।[3]

सहस्रांशु पत्र में विज्ञान, साहित्य, धर्म, जीवनचरित तथा समाज सम्बन्धी निबन्धों का प्रकाशन हुआ। पत्र में बालकों के लिए पर्याप्त मनोरंजन सामग्री रहती थी। इसमें आधुनिक ज्ञान-विज्ञान का सचित्र बाल-स्तम्भ में निर्देशन किया जाता था।

उस समय हिन्दी भाषा में वहीं से **बालक** पत्र प्रकाशित हो रहा था। इसमें अधिकांश सामग्री बालक पत्र से ही ली जाती थी। इस पत्र का विशेष महत्त्व यही है कि इसमें सरलतम संस्कृत भाषा में सभी साधारण विषयों के सम्बन्ध में निबन्ध उपलब्ध होते हैं।

इस पत्र के प्रमुख लेखकों में महावीर प्रसाद त्रिपाठी, रामावतार शर्मा, विधुशेखर भट्टाचार्य आदि प्रधान थे। गौरीनाथ पाठक के अधिकांश निबन्धों का प्रकाशन पत्र में हुआ है। वायुयान, जलयान आदि विषयों पर सम्पादक के निबन्ध पत्र में मिलते हैं, जो बहुत ही सरल और महत्त्व पूर्ण हैं। पत्र का स्तर सामान्यतया उच्चकोटि का था।

---

१. वर्णेकर अर्वाचीन संस्कृत साहित्य. पृष्ठ २८७
२. संस्कृत चन्द्रिका १२.१२ पृ. २९३
३. सुप्रभातम् ३.१०

सहस्रांशु पत्र दूसरे वर्ष के तृतीय अंक तक ही प्रकाशित हुआ। इसके पश्चात् ग्राहक और अर्थाभाव के कारण पत्र का प्रकाशन स्थगित हो गया।

वाङ्मयम्

सन् १६४० के लगभग इस पत्र का प्रकाशन वाराणसी से प्रारम्भ हुआ था। परन्तु यह पत्र शीघ्र ही बन्द हो गया। श्रीः पत्रिका के अनुसार—

'वाराणसेयं पाक्षिकं वाङ्मयम् गर्भे आगतमपि गर्भस्रावंवशाद् व्यभिचरितसत्तात्मकमभवत्'।[1]

उच्छृंखलम्

सन् १६४० में वाराणसी से उच्छृंखलम् पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। इसका प्रकाशन और प्राप्तिस्थल उच्छृंखलम् कार्यालय वाराणसी सिटी था। पत्र का वार्षिक मूल्य एक रुपया तथा एक अंक के दो आने थे। यह पत्र पूर्णिमा और अमावस्या को प्रकाशित किया जाता था। इस पत्र के सम्पादक कल्पित नामधारी श्री सिद्धलिंगस्तैलंग थे। परन्तु तैलंग का यथार्थ नाम माधव प्रसाद मिश्र गौड़ था।

माधव प्रसाद, इस पत्र के पहले ज्योतिष्मती पत्रिका प्रकाशित करते थे। उन्होंने उसके प्रकाशन काल में अनुभव किया कि हास्यरसानुकूल पत्र प्रकाशित करना चाहिए। इसी धारणा को लेकर उन्होंने एक मात्र हास्यरस-प्रधान पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया। हास्यरस प्रधान यह पहला संस्कृत-पत्र था। इसमें अश्लील हास्यों का प्रकाशन अशोभनीय था।

यह पत्र सचित्र प्रकाशित होता था और लगभग दो वर्ष तक प्रकाशित हुआ। इसमें वैयक्तिक राग और दोष के कारण उचित सामग्री का संकलन नहीं हो पाता था। सभी लेखक कल्पित नामधारी थे। ज्योतिष्मती पत्रिका में इसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

'पत्रमिदं सचित्रम्। व्यङ्गचित्रमत्राद्भुतमेव। लगुडप्रहारः, चपेटाघातः कण्डूतिशमनमित्यादिस्तम्भविभाजनमपि विचित्रम्। सम्पादकीयलेखः, चपेटाघाते वक्रटिप्पण्यः कविता समालोचनप्रकारं सर्वमेव सुरुचिसम्पन्नं संस्कृत-साहित्यपरमहास्यकरं च। एवं विधं पत्रं संस्कृतसमाजे प्रथममेव। सम्पादन-कौशलं च हिन्दीपत्राणां कौशलं स्मारयति।[2]

पत्र में चित्रों और लेखों के द्वारा हास्य रस की सामग्री मिलती है। हास्य

---

१. श्रीः ८.१-२ पृ. २१

२. ज्योतिष्मती १.३

ही इसका एकमात्र उद्देश्य था।[1] पत्र के प्रत्येक अंक के मुख पृष्ठ में निम्नांकित श्लोक प्रकाशित किया जाता था—

शिष्टान् सम्मानयन् धूर्तान्
पातयन् वर्धयन् मुदम्।
भूष्णून् प्रोत्तेजयन् मुक्तो
जयत्युच्छृङ्खलश्चिरम्॥

भारतवाणी

सन् १९५८ में भारतवाणी पत्रिका का प्रकाशन पूना से प्रारम्भ हुआ। पत्रिका का प्रकाशन स्थल ६७५ सदाशिव पेठ पूना-२ था। इस पत्रिका का वार्षिक मूल्य पाँच रुपये था। आरम्भ में इसके प्रधान सम्पादक डा० ग० वा० पलसुले और सम्पादक वसन्त अनन्त गाडगिल थे। अधिक समय तक यह पत्रिका डा० वी० जी० राहूरकर के सम्पादकत्व में प्रकाशित हुई।

यह सचित्र पत्रिका थी। इसमें उच्चकोटि के निबन्धों का प्रकाशन हुआ। पत्रिका की भाषा सरल थी। समाचारों का भी प्रकाशन पत्रिका के किन्हीं किन्हीं अंकों में हुआ है। कविताएँ, कहानियाँ, निबन्ध तथा अनूदित साहित्य भी इसमें प्रकाशित किए जाते थे। यह उच्च कोटि की पत्रिका थी। का वार्ता-विश्वमण्डले शीर्षक में विश्व का संक्षिप्त समाचार पत्रिका में प्रकाशित किया जाता था। हास्य सामग्री भी पत्रिका में मिलती है। विशेषांकों का भी प्रकाशन हुआ है।

संस्कृतवाणी

सन् १९५८ में संस्कृतवाणी पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। यह पत्रिका राजमुद्री से प्रकाशित की जाती थी। पत्रिका का वार्षिक मूल्य दस रुपये तथा इसकी सम्पादिका श्रीमती एन्० सी० जगन्नाथन् थीं।

शारदा

सन् १९५९ में पूना से शारदा पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। यह पत्रिका ४२५ सदाशिव पेठ पुणें से प्रकाशित की जाती है। इस पत्रिका का वार्षिक मूल्य पाँच रुपये है। इसके सम्पादक वसन्त अनन्त गाडगिल हैं।

इस पत्रिका में बालभारती, आन्तरभारती, शिशुभारती आदि स्तम्भों में बालकों के लिए सामग्री प्रकाशित की जाती है। इस पत्रिका की भाषा सरल और उपदेशात्मक है। यथा—

---

१. उच्छृंखलम् १.१

प्रसारय संस्कृतध्वजम्। प्रताडय संस्कृतदुन्दुभिम्। प्रपूरय संस्कृतशङ्खम्। पठ संस्कृतम्। वद संस्कृतम्। लिख संस्कृतम्।[१]

इसमें संस्कृत भाषा में आकाशवाणी समाचार, नाटकों के चित्र, उत्सवों का विवरण, जीवन-चरित, संस्कृत-विश्ववार्ता तथा समालोचना आदि का प्रकाशन होता है।

अनेक ऐसी पत्र-पत्रिकाओं की सूचनाएँ मिलती हैं, जिनका समय अज्ञात है। **कृतान्तः** पाक्षिक पत्र बनारस ते प्रकाशित हुआ था। मुजफ्फरपुर से **मित्रः** पत्र प्रकाशित किया गया था।[२] कलकत्ता से **सूक्तिसुधा** प्रकाशित की गयी थी। तिरुपति से **भवन्स्जर्नल** नामक पत्र प्रकाशित किया गया था।

पाक्षिक पत्र-पत्रिकाओं में सर्वप्रिया शारदा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह आज भी अखण्ड रीति से प्रकाशित हो रही है। इनमें कविता, नाटक, निबन्ध, लघुकथा, अनुवाद, समाचार आदि विविध प्रकार की रचनाओं का प्रकाशन होता है। यह साहित्यिक और उच्च कोटि की पत्रिका है। अर्वाचीन उच्चकोटि के लेखकों की रचनाओं का प्रकाशन इसमें यदा कदा होता है। इस पत्रिका के अनेक विशेषाङ्क महत्त्वपूर्ण हैं। श्रीमानप्पाशास्त्री से सम्बन्धित दो विशेषाङ्क अब तक प्रकाशित हो चुके हैं। इसमें शिवराज्योदय महाकाव्य प्रकाशित हुआ है। गाडगिल संस्कृत के प्रचार और प्रसार के लिये तत्पर हैं।

मासिक पत्र-पत्रिकायें

बीसवीं शती में प्रकाशित संस्कृत-मासिक पत्र-पत्रिकाओं की संख्या विपुल है। अनेक ऐसी पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ, जिनकी सूचना अन्य पत्र-पत्रिकाओं में मिलती हैं, परन्तु उनके अङ्क दुर्लभ हैं। इन पत्र-पत्रिकाओं में राष्ट्रीय एकता और तदनुकूल भावनोन्मेष मिलता है।

ग्रन्थप्रदर्शिनी

इस पत्रिका का प्रकाशन सन् १९०१ में विशाखापट्टम् से प्रारम्भ हुआ था। संस्कृत चन्द्रिका में इसके सम्बन्ध में निम्नाङ्कित कथन मिलता है—

संस्कृतभाषामयी मासिकपत्रिका। सेयं मद्रराजविभागीयाद्विशाखपत्तनामाभिधेयान्नगरतः प्रकाशितापूर्वाऽपि गीर्वाणवाण्या दैवदुर्विपाकात्सम्प्रति प्रतिहतचारेत्याकर्णयन्तः के हि नाम रसिका नोद्वहेयुर्विषादम्। प्रचरन्त्या किलानया

---

१. शारदा १.१

२. Journal of the Ganganath Jha Research Institute, Vol. XIII, p. 163.

भूयांस एवातिमात्रमुपकारिण: प्राचीनाश्च नव्याश्च हृदयङ्गमा: प्रबन्धाः प्राकाशयन्त । अत्र च प्रकाशितं लघुशब्दानुशासनं नाम संस्कृतभाषायाः संक्षिप्तं व्याकरणमाकर्षतितमां नश्चेत: । अहो पाटवमेतत्प्रणेतृमहाभागस्य । तदस्ति न: प्रत्याशा विरच्य्य प्रकाशनेऽस्या साहाय्यं समुपजीव्यासु: शरणार्थिनीं तपस्विनीं गैर्वाणीं वाणीं भारतवर्षीया इति । सम्पन्नेषु च पर्याप्तेषु ग्राहक-महाभागेषु पुनरपि प्रकाश्येतासौ पत्रिकाऽस्याः सम्पादकमहानुभावेन[1] ।

ग्रन्थप्रदर्शिनी पत्रिका के सम्पादक पण्डित एस्० पी० व्ही० रङ्गनाथ स्वामी थे । इस पत्रिका का प्रकाशन १९०३ ई० तक हुआ ।

धर्मचन्द्रिका और सुदर्शनधर्मपताका

सन् १९०१ के लगभग धर्मचन्द्रिका और सुदर्शनधर्मपताका पत्रिकाओं का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ । संस्कृतचन्द्रिका के अनुसार वैष्णव धर्म के प्रचारार्थ सुदर्शनधर्मपताका पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ था ।[2] 'धर्म-चन्द्रिका' में सनातन धर्म की चर्चा रहती थी ।[3]
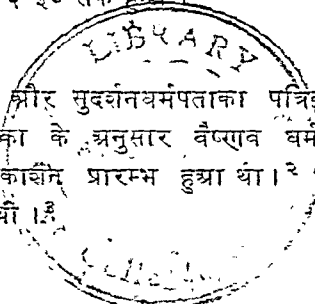
भारतधर्मः और पुराणादर्शः

संस्कृत चन्द्रिका की सूचना के अनुसार भारतधर्मः और पुराणादर्शः पत्रों का प्रकाशन सन् १९०१ में हुआ—

'मनीषिमार्गसम्पादितस्य भारतधर्माख्यमासिकपत्रस्य द्वितीया तृतीया चतुर्थी चेति संख्यात्रयं, पण्डितविष्णुशास्त्रिसम्पादितस्य पुराणादर्शस्य प्रथम-द्वितीयावङ्कौ स्वीक्रियन्ते ।[4]

भारतधर्म का प्रकाशन चिदम्बरम् से हुआ था । सम्भवत: दोनों पत्र अधिक समय न प्रकाशित हो सके । उपर्युक्त धर्मचन्द्रिका, सुदर्शनधर्मपताका भारतधर्मः और पुराणादर्शः चारों पत्र धर्म से सम्बन्धित थे ।

अधिमासनिर्णयः और प्रकटनपत्रिका

प्रकटन पत्रिका का प्रकाशन सन् १९०१ में त्रिचनापल्ली से प्रारम्भ हुआ था । इसके सम्पादक चन्द्रशेखर शास्त्री थे । संस्कृतचन्द्रिका में अधिमास-निर्णयपत्रिका की सूचना मिलती है । तदनुसार—

---

१. संस्कृत चन्द्रिका १०.३-७ पृ० ५
२. संस्कृत चन्द्रिका ८.१२
३. संस्कृत चन्द्रिका ८.४
४. संस्कृत चन्द्रिका ८.११

श्रृङ्गेरीश्रीजगद्गुरुसंस्थानसर्वाधिकारिभिः अधिमासनिर्णयपत्रिका सर्वाङ्गहृदयङ्गमेवेति सानुरागं च निर्माय ब्रूमः[1] ।

उपर्युक्त सभी पत्र-पत्रिकायें लगभग एक वर्ष तक प्रकाशित होकर स्थगित हो गईं । सभी पत्र-पत्रिकाओं का लक्ष्य मुख्यतया धार्मिक प्रचार था ।

ब्रह्मविद्या

नादुकावेरी (तंजोर) से सन् १९०२ में ब्रह्मविद्या श्रेष्ठ पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ हुआ तथा यह पत्रिका सन् १९०३ तक प्रकाशित हुई।

ब्रह्मविद्या पत्रिका के सम्पादक परमब्रह्मश्री विद्वान् श्रीनिवास दीक्षित थे। दीक्षित जी के सम्पादकत्व में सन् १८८६ में चिदम्बर से ब्रह्मविद्या नामक पत्रिका संस्कृत और द्रविड़ भाषा में प्रकाशित की गई थी। संस्कृत चन्द्रिका में प्रकाशित सूचना के अनुसार—

'ब्रह्मविद्या मासिकपत्रिका प्रकाशयितुमारब्धा: । अस्याः पुनः प्रथमोऽपि वत्सरो न सम्पूर्ण इत्यहो नैर्घृण्यं कालस्य । केषां वा बलादेव नावहरेयुःरन्तःकरणं सहृदयानां नानाविधोपपत्तिसमुद्भाषिता आर्याचाररहस्यादयः प्रबन्धाः ब्रह्मविद्यास्थाः । नूनमेकमात्रमेवेदमासीदशेषेऽपि भारतवर्षे नवनवधार्मिकविषयसमुल्लसितं मासिकपत्रम् । एतन्मुद्रणाय च ब्रह्मविद्याख्यो मुद्रायन्त्रालयोऽप्यवस्थापित एतेन ।[2]

ब्रह्मविद्या पत्रिका ब्रह्मविद्या कार्यालय पो० आ० नादुकावेरी तंजोर से प्रकाशित की जाती थी। पत्रिका की भाषा सरल थी। इसमें धार्मिक निबन्धों के अतिरिक्त कतिपय उपनिषदों की टीकाओं, सामाजिक निबन्धों तथा शतकों का भी प्रकाशन हुआ। अप्पाशास्त्री ने दीक्षित के व्यक्तित्व और सफलता के विषय में संस्कृतचन्द्रिका में पर्याप्त प्रकाश डाला है।[3]

विद्याविनोद और रसिकरञ्जिनी

सन् १९०२ में विद्याविनोद पत्र के प्रकाशन की केवल सूचना संस्कृतचन्द्रिका में मिलती है।[4] यह पत्र भरतपुर से प्रकाशित हुआ था। रसिकरञ्जिनी पत्रिका के केवल दो ही अंक प्रकाशित हुये । विज्ञानचिन्तामणि में

---

१. संस्कृत चद्रिका ८.१२
२. संस्कृत चन्द्रिका ९.९
३. संस्कृत चद्रिका ९.१० पृ० १४
४. संस्कृत चन्द्रिका ९.१० पृ० २३२

इसकी संक्षिप्त सूचना मिलती है। इसका प्रकाशन गोष्ठी केरल से हुआ था।[1]

सूक्तिसुधा

वाराणसी से सन् १९०३ में सूक्तिसुधा पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। यह पत्रिका घासी टोला वाराणसी से पूर्णिमा को प्रकाशित की जाती थी। पत्रिका का वार्षिक मूल्य तीन रुपये था। इसका प्रकाशन दो वर्ष तक हुआ। सूक्तिसुधा भवानी प्रसाद शर्मा के सम्पादकत्व में प्रकाशित हुई थी। पत्रिका के संरक्षक महामहोपाध्याय गंगाधर शास्त्री थे।

सूक्तिसुधा मासिक पुस्तक के रूप में थी, जिसमें अर्वाचीन काव्य, नाटक, चम्पू, अष्टक, दशक, शतक, गीति तथा दार्शनिक निबन्ध एवं समस्यापूर्ति आदि का प्रकाशन होता था। सम्पादक की धारणा थी कि—

'संस्कृतलेखनप्रथाप्रचाराभावरूपां न्यूनतां प्रमार्जयितुं दूरीकर्तुं वा सूकरेषूपायेषु संस्कृतपत्रिकायाः प्रकाशनं प्रथमम्[2]।

सूक्तिसुधा में काव्यादि के अतिरिक्त अन्य किसी भी प्रकार की सामग्री का प्रकाशन नहीं होता था। पत्रिका के अंकों का ज्ञान नहीं हो पाता, क्योंकि उन पर अंकों का निर्देश नहीं मिलता। पत्रिका के प्रत्येक अंक के प्रमुख पृष्ठ पर निम्नांकित श्लोक प्रकाशित किया जाता था—

साहित्याखिलभागपारगतया सम्राड्बुधाप्तप्रथैः
प्राच्यप्रांजलकाव्यसिन्धुमथनायासौर्चितैर्भूसुरैः।
एषा मासिकपत्रिका शशिकला नव्या विभायोद्धृता
सूते सूक्तिसुधामतः सुमनसां ह्यपात आशास्यते॥

संस्कृतरत्नाकरः

जयपुर से संस्कृत साहित्य सम्मेलन से संस्कृत रत्नाकर पत्र का प्रकाशन सन् १९०४ में आरम्भ हुआ।

प्रारम्भ में यह पत्र जयपुर के विद्वन्मण्डल द्वारा प्रकाशित हुआ। दो वर्ष के पश्चात् भट्ट मथुरानाथ शास्त्री के सम्पादकत्व में यह पत्र सतत नौ वर्ष तक प्रकाशित होता रहा। इसके पश्चात् पत्र का प्रकाशन माधव प्रसाद ने किया। दस वर्ष के पश्चात् पत्र का प्रकाशन अवरुद्ध हो गया। यह पत्र पुनः सन् १९३२ में पुरुषोत्तम शर्मा चतुर्वेदी और महामहोपाध्याय गिरिधर शर्मा के सम्पादकत्व में जयपुर से ही प्रकाशित हुआ। इस समय पत्र की अधिक प्रगति हुई और

---

१. विज्ञानचिन्तामणिः अक्टूबर. १९०२.

२. सूक्तिसुधा १.१

अनेक उच्चकोटि के विषयों से परिपूर्ण विशेषांक प्रकाशित किये गये। कुछ समय पश्चात् पत्र का प्रकाशन पुनः स्थगित हो गया।

संस्कृत रत्नाकर कुछ समय के लिए महादेव शास्त्री के सम्पादकत्व में वाराणसी से प्रकाशित हुआ। इसके बाद केदारनाथ शर्मा सारस्वत के सम्पादकत्व में पत्र का प्रकाशन कानपुर से हुआ। पुनः पत्र महामहोपाध्याय परमेश्वरानन्द शास्त्री के सम्पादकत्व में १७३ डी० कमलानेहरू नगर दिल्ली से प्रकाशित हुआ। सम्प्रति यह पत्र गोस्वामी गिरधारीलाल के सम्पादकत्व में दिल्ली से ही प्रकाशित हो रहा है। इसमें बहु विषयक कवितायें तथा निबन्धादि का प्रकाशन हुआ है। संस्कृत शिक्षा के सम्बन्ध में कई अंकों में निबन्ध उपलब्ध होते हैं।

संस्कृतरत्नाकर में अनेक सरस कहानियाँ प्रकाशित हुई हैं। इस पत्र के प्रत्येक अंक के मुख पृष्ठ पर निम्नांकित श्लोक प्रकाशित होता है—

चित्रं द्विजपतिमण्डल-कलासमृद्ध्यासमेधमानोऽपि
वेलामतिक्रामन् 'संस्कृत-रत्नाकरो' जयति।

मित्रगोष्ठी

वाराणसी से सन् १९०४ में मित्रगोष्ठी समिति मदनपुरा से मित्रगोष्ठी पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ हुआ। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में इस प्रकार की बहुत कम संस्थाएँ थी, जहाँ से पत्र-पत्रिकाओं को प्रकाशित किया जाता था। यह पत्रिका पाँच वर्ष तक प्रकाशित हुई। इसका वार्षिक मूल्य डेढ़ रुपये था। प्रत्येक अंक में लगभग पचीस पृष्ठ होते थे।

'मित्रगोष्ठी' पत्रिका का प्रकाशन महामहोपाध्याय रामावतार शर्मा और विधुशेखर भट्टाचार्य के सम्पादकत्व में आरम्भ हुआ। यह पत्रिका लगभग साढ़े तीन वर्ष तक दोनों सम्पादकों के सहयोग से प्रकाशित होती रही। विधुशेखर भट्टाचार्य वाराणसी से शान्ति निकेतन चले गये और शर्मा जी भी कलकत्ता चले गये। इसके पश्चात् यह पत्रिका नीलकमल भट्टाचार्य और ताराचरण-भट्टाचार्य के सम्पादकत्व में डेढ़ वर्ष तक प्रकाशित हुई।

'मित्रगोष्ठी' उच्च कोटि की पत्रिका थी। रामावतार शर्मा और विधुशेखर भट्टाचार्य जैसे अद्वितीय मनाषियों से सम्पादित पत्रिका का विद्वन्मण्डली में सम्मान था। पत्रिका में सरल से सरल और गम्भीर से गम्भीर विषयों का तथा ललित निबन्धों का प्रकाशन होता था।[1]

---

१. संस्कृत चन्द्रिका, १०.११-१२

मित्रगोष्ठी में 'संहतिः कार्यसाधिका' की भावना पायी जाती है। पत्रिका में ज्योतिष, धर्म, इतिहास, दर्शन, साहित्य, कृषि, विज्ञान, भूगोल आदि विषयों की रचनाओं का प्रकाशन हुआ। सम्पादकीय स्तम्भ अधिक गम्भीर और विवेचनात्मक मिलते हैं। अप्पाशास्त्री के अनुसार मित्रगोष्ठी विविध विषयों से संवलित श्रेष्ठ पत्रिका है।[1] पत्रिका के प्रत्येक अंक के द्वितीय पृष्ठ पर निरन्तर एकता की कामना की जाती थी—

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सहचित्तमेषाम्।

विद्वद्गोष्ठी

मित्रगोष्ठी पत्रिका के समान 'विद्वद्गोष्ठी' पत्रिका भी वाराणसी से प्रकाशित हुई। इस विषय में संस्कृत चन्द्रिका के अनुसार केवल इतनी सूचना मिलती है कि वाराणसी से सन् १९०४ में 'विद्वद्गोष्ठी' पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ हुआ। संभवतः यह मित्रगोष्ठी ही पत्रिका थी तथापि तदनुसार—

'अथेदानीं वत्सरेऽस्मिन् श्रीकाशीनगराद्विद्वद्गोष्ठीपत्रिका चेति संस्कृत-भाषामयी मासिकपत्रिका'।

विचक्षणा

सन् १९०५ में पेरुदुम्बूर (भूतपुरी मद्रास) से विचक्षणा पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ हुआ।[2] पत्रिका के केवल दो-तीन अंक ही प्रकाशित हुए। संस्कृत-रत्नाकर के अनुसार—

विलक्षणा एतदभिधाना सुलक्षणा काचन संस्कृतमासिकपत्रिकास्मत्करत-लमापतिता। सेयं विशिष्टाद्वैतबोधिनीसभामुखपत्रिकारूपेण भूतपुर्याः प्रकट-यत्यात्मानम्। अस्याश्च सम्पादकः श्री के० के० शुद्धसत्त्वं दोड्याचार्यः। द्वादशपृष्ठात्मिकाऽपि सरसवाग्विलासा सेयमर्हति संस्कृतभावारसिकैर्विधीयमा-नमादरातिरेकम्। सपादमुद्रा मूल्यं चासौ विचक्षणा सम्पादकः श्रीपेरुदुम्बूर चेंगलपटतः लभ्या।[3]

विशिष्टाद्वैतिनि

श्रीरंगम् से सन् १९०५ से विशिष्टाद्वैतिनि पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ हुआ। यह पत्रिका ए० गोविन्दाचार्य के सम्पादकत्व में प्रकाशित हुई थी।

---

१. संस्कृत चन्द्रिका ११.१-४, १३.१
२. संस्कृत चन्द्रिका १०.११-१२
३. संस्कृत रत्नाकर २.६

पत्रिका का प्रकाशन शीघ्र स्थगित हो गया। यह विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त की और साम्प्रदायिक पत्रिका थी।

सद्धर्मः

मथुरा से सन् १९०६ में सद्धर्मः नामक पत्र का प्रकाशन आरम्भ हुआ। यह पत्र सद्धर्म कार्यालय वेणीमाधव मन्दिर प्रयाग घाट मथुरा से प्रकाशित किया जाता था। इसका वार्षिक मूल्य एक रुपया था।

सद्धर्म पत्र श्री वामनाचार्य के सम्पादकत्व में प्रकाशित हुआ था। पत्र अर्थाभाव के कारण शीघ्र प्रकाशन से अलग हो गया। इसमें अनेक विषय प्रकाशित किये जाते थे। संस्कृत चन्द्रिका की सूचना के अनुसार—

विंशतिपृष्ठात्मकं संस्कृतभाषासंग्रथितमिदं मासिकपत्रम्। पत्रमिदं वृन्दावने संमुद्र्य मथुरायां प्रकाश्यते। अस्मिन् पत्रे प्रस्तावना मासावतरणिका वेदो वेदषडङ्गानि स्मृतिः पुराणेतिहासतन्त्राणि साहित्यं शङ्कासमाधिर्हिन्दीभाषया तत्परामर्शश्चेत्यमी दशविषयाः प्रकाशिताः। प्रशंसनीया चात्रत्या भाषासरणिः। अवश्यं किल समाह्लादयेदियं हृदयं सहृदयानाम्। रसिकजनहृदयावर्जनपटीयसोऽप्यस्य प्रकाशनं सर्वथा ग्राहकजनानुग्रहमात्रायत्तमिति[1]।

सहृदया

संस्कृत चन्द्रिका की सूचना के अनुसार सहृदया पत्रिका त्रिचिनापल्ली ने सम्भवतः सन् १९०६ में प्रकाशित हुई थी। यथा—

'अचिरादेव त्रिचिनापल्लीतः सहृदयाख्या कापि संस्कृतमासिकपत्रिका कैश्चिद्विद्वत्तमैः संपाद्यमाना प्रादुर्भविष्यतीत्यवुध्यमाना एकान्ततः प्रणन्दामः'।[2]

षड्दर्शिनी

वासुदेव दीक्षित के सम्पादकत्व में श्रीरंगम् से इसका प्रकाशन हुआ था। श्रीरंगम् विद्या का प्रमुख केन्द्र रहा है।

आर्यप्रभा

कलकत्ता से सन् १९०९ में आर्य प्रभा पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ हुआ। यह पत्रिका दस वर्ष तक प्रकाशित होती रही। इसका वार्षिक मूल्य सवा रुपया था। पत्रिका का प्राप्ति स्थान आर्यप्रभा कार्यालय पो० महामुनि चटग्राम था। यह पत्रिका गोवर्धनमुद्रणालय ८०।१ मुक्तलरामवन्धु स्ट्रीट कलकत्ता से मुद्रित और प्रकाशित की जाती थी।

---

१. संस्कृत चन्द्रिका १३.२ पृ. ४७
२. संस्कृत चन्द्रिका १३.४

आर्यप्रभा श्रीकुंज विहारी तर्क सिद्धान्त के सम्पादकत्व में प्रकाशित होती रही। सहसम्पादक श्री नगेन्द्र नाथ सिद्धान्त रत्न थे।

आर्यप्रभा पत्रिका में आर्य संस्कृति का सुन्दर विवेचन प्रस्तुत किया जाता था। इसमें राजनीति-विषयक निवन्ध नहीं प्रकाशित किये जाते थे। पत्रिका में तात्कालिक धार्मिक परिस्थितियों का भी वर्णन मिलता है। इसमें सती प्रथा पर कई निवन्ध उपलब्ध होते हैं। यह साहित्यिक पत्रिका थी। इसका मुद्रण सुन्दर और आकर्षक था। संस्कृत चन्द्रिका के समान इसमें मासावतरणिका और वर्षावतरणिका भी प्रकाशित होती थी। पत्रिका के प्रत्येक अंक के मुखपृष्ठ पर आर्य संस्कृति की अमरता वतलाने वाला निम्न श्लोक प्रकाशित किया जाता था—

या सर्वेषु समाऽसमापि भुवने कान्त्वात्यसीमाः समाः
यच्छायाश्रयणैर्मनुष्यपदवीं लब्धुं जनाः सक्षमाः।
आर्यख्यातिरितो न यन्महिमतः कालेऽपि संलुप्यतां
आर्याणां दयया तया प्रतिभयाप्यार्यप्रभा दीप्यताम्॥

साहित्यसरोवरः और पुरुषार्थः

बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक के अन्तिम वर्ष में अनेक पत्र-पत्रिकायें प्रकाशित हुई, परन्तु उनका महत्त्व नगण्य होने के कारण उनका स्थायित्व न रह सका। सम्पादक पर पत्रिका निर्भर रहती है। आर्थिक आदि समस्यायें न होने पर भी यदि सम्पादक सम्पादन कला और वैदुष्य से भरपूर नहीं होता, तो पत्रिका अधिक समय तक कथमपि नहीं प्रकाशित हो सकती है। यही कारण है कि संस्कृत की कुछ पत्र-पत्रिकायें सम्पादकीय कला से अनभिज्ञ संस्कृतज्ञों के हाथ में पड़ने के कारण शीघ्र ही प्रकाशन से अलग हो गयीं। **साहित्यसरोवरः** का प्रकाशन सन् १९१० में हुआ, पर सहृदय-हृदयकमल न खिल सका। इसी समय धारवाड़ से **पुरुषार्थः** पत्र प्रकाशित हुआ, जो अपने पुरुपार्थ से शीघ्र रहित हो गया। इसके सम्पादक चिन्तामणि सहस्र वुद्धे थे। इसका श्लोक निम्न था—

पुरुपार्थ प्रकृत्यैव विद्वनाद्रियन्ते ननु।
अप्रार्थितोऽपि प्रीतिं मकरन्दे करोत्यलिः॥

उषा

गुरुकुल महाविद्यालय कांगड़ी (हरिद्वार) से सन् १९१२ में उषा पत्रिका का प्रकाशन हुआ। पत्रिका गुरुकुल मुद्रणालय से छपती थी।

उषा पत्रिका सन् १९१३ से लेकर सन् १९१६ तक पण्डित हरिश्चन्द्र विद्यालंकार के सम्पादकत्व में प्रकाशित होती रही। इसके पश्चात् दो वर्ष तक

पत्रिका का प्रकाशन स्थगित रहा। सन् १९१८ में पण्डित शशिभूषण विद्यालंकार के सम्पादकत्व में यह पत्रिका सन् १९२० तक प्रकाशित हुई।

उषा में काव्य, गीत, समीक्षा, शास्त्र-चर्चा, विचारचर्चा, ऐतिहासिक लेख, धार्मिक व सांस्कृतिक निबन्ध और समाचार-पूर्तियाँ आदि प्रकाशित होती थीं। गुरुकुल के प्राध्यापक और विद्यार्थियों की रचनाओं को अधिक महत्त्व दिया जाता था। पत्रिका की भाषा सरल और सरस थी। शारदा के अनुसार—

'इमामुषामवलोक्य संजातः कोऽपि मधुरो हृदि मनोरथाङ्कुरः'[1]

शारदा

शारदा निकेतन दारागंज प्रयाग से सन् १९१३ में शारदा पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ हुआ। पत्रिका का मूल्य विद्यार्थियों के लिये तीन रुपये और अन्य के लिए चार रुपये थे।

शारदा पत्रिका श्री चन्द्रशेखर शास्त्री के सम्पादकत्व में प्रकाशित हुई थी। पत्रिका का सम्पादन बड़ी योग्यता से किया जाता था। शास्त्री जी ने पूर्ण मनोयोग के साथ इसका संचालन किया। प्रति वर्ष एक हजार नौ सौ रूपयों का घाटा सहा। अन्त में तीन वर्ष के अनन्तर लाचार होकर पत्रिका बन्द कर देनी पड़ी। यह पत्रिका अपने ढंग की एक ही पत्रिका थी। इसमें सभी उपयोगी विषयों पर लेख निकलते थे।[2]

शारदा के प्रत्येक अंक में लगभग पचास पृष्ठ होते थे। इन पृष्ठों में विज्ञान, शिल्प, इतिहास, दर्शन, साहित्य आदि विषयों के निबन्धों का प्रकाशन होता था। पत्रिका बाह्य और आभ्यन्तर दोनों प्रकार से अच्छी थी। इसमें सुन्दर चित्रों का प्रकाशन होता था। मुद्रण-त्रुटियाँ अधिक नहीं थीं।

शारदा पत्रिका के समान सुन्दर आज तक कोई पत्रिका संस्कृत भाषा में नहीं प्रकाशित हुई। आज भी इस प्रकार की पत्रिकाओं की आवश्यकता है, जो चित्रों से अलंकृत और सरस तथा सरल विषयों से विभूषित हों। पत्रिका के सम्पादक यद्यपि अप्पा शास्त्री, रामावतार शर्मा आदि विद्वानों की कोटि में नहीं थे, तथापि जिस कला-कौशल से पत्रिका का सम्पादन चन्द्रशेखर शास्त्री ने किया, वह चिरस्मरणीय है।

शारदा पत्रिका में संस्कृत के उस समय के मूर्धन्य विद्वानों की रचनाएँ प्रकाशित होती थीं।

---

१. शारदा (प्रयाग) १.२

२. सरस्वती २८.२ पृ० १२८५।

वास्तव में शारदा पत्रिका कामदुघा थी। इसके मुख पृष्ठ के प्रत्येक अंक में निम्नाङ्कित श्लोक प्रकाशित किया जाता था—

निषेव्यतां शिल्पकला पयस्विनी
मनस्विभिः कामदुघेव शारदा।
प्रमादवुर्वाशिनवद्धलालसा
रसात्पुनन्ती निलयान् कुटुम्बिनाम् ॥
सा शारदा शारदचन्द्रशुभ्रा
मनोहराभा स्थिरसम्प्रसादा।
विनाशयन्ती जगदन्धकारम्
मनः प्रमोदाय मनीषिणां स्यात् ॥

विद्या, चित्रवाणी, कवित्वं, मञ्जरी तथा अन्य

शारदा अनेक विषयों से संवलित शारदी की तरह हृदयाकर्षक पत्रिका थी। इसके प्रत्येक अंक का महत्त्व अमित है। इस पत्रिका के बाद बनारस से सन् १९१३ में **विद्या** और **चित्रवाणी** पत्रिकायें कुछ समय के लिए प्रकाशित हुईं। जयपुर का **कवित्वम्** कवित्व रहित था। तिरुचि से **धर्मचक्रम्** प्रवर्तित होकर भी आगे न बढ़ पाया। कांचीवरम् से प्रकाशित **प्राचीनवैष्णवसुधा** निश्चय ही कुछ समय तक वैष्णवों को तृप्त करती रही, परन्तु एक धर्मारूढ़ होने के कारण अधिक समय तक न चल पायी। तिरुवायूर से प्रकाशित **मंजरी** आम्रमंजरी की तरह वर्ष में एकबार दर्शन देकर विलीन हो गयी। इसी प्रकार कोचीन की **अमृतवाणी** एवं बम्बई की **सुरभारती** का स्वर अधिक समय तक न सुनाई पड़ सका। इस प्रकार सन्१९१० और सन्१९१३ के मध्य प्रकाशित उपर्युक्त सभी पत्र-पत्रिकायें अल्पकालिक रहीं और इनमें विशेष उल्लेखनीय साहित्य भी प्रकाशित नहीं हुआ। इन सबमें प्रयाग की शारदा अवश्य अन्तः सलिला सरस्वती की तरह श्रेष्ठ पत्रिका थी।

व्याकरणग्रन्थावली

तंजौर से सन् १९१४ में व्याकरण ग्रन्थावली पुस्तिका का प्रकाशन आरम्भ हुआ। प्रकाशन स्थल श्री मुनित्रय मन्दिर ६६, वेल्लाल स्ट्रीट वेलूर (मद्रास) था। इसका वार्षिक मूल्य पाँच रुपये था।

यह पत्रिका श्री वत्स चक्रवर्ती रायपेट्टै कृष्णमाचार्य के सम्पादकत्व में प्रकाशित की जाती थी। तदनुसार—

प्रतिमासं प्राचार्यमाणा संचिकेयम्। अस्यामत्युत्तमा व्याकरणग्रन्थाः

प्रकाश्येरन् ।[1]

श्रीशिवकर्माणि दीपिका

सन् १९१५ में इस पत्रिका का प्रकाशन हुआ था। यह कुम्भकोणम् से प्रकाशित हुई थी। इसके सम्पादक चन्द्रशेखर शास्त्री थे। इस पत्रिका में नामानुकूल साहित्य का ही प्रकाशन हुआ।

संस्कृतसाहित्यपरिषत्पत्रिका

संस्कृत साहित्य परिषत् कलकत्ता से सन् १९१८ में संस्कृतसाहित्यपरिषत्पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ हुआ। आज भी अखण्ड प्रकाशन परम्परा के साथ यह प्रकाशित हो रही है। यह पत्रिका संस्कृत साहित्यपरिषत् १६८।१ राजा दीनेन्द्र स्ट्रीट कलकत्ता-४ से प्रकाशित होती है।

इस दीर्घ काल में पत्रिका अनेक सम्पादकों द्वारा प्रकाशित होती रही। आरम्भ में यह पत्रिका वेदान्त विशारद श्री अनन्त कृष्णशास्त्री के सम्पादकत्व में और श्री पशुपति नाथ शास्त्री तथा महामहोपाध्याय कालीपदतर्काचार्य के सह सम्पादकत्व में प्रकाशित हुई। सन् १९३० से लेकर सन् १९३६ तक यह पत्रिका क्षितीशचन्द्र चट्टोपाध्याय के सम्पादकत्व में प्रकाशित हुई। इस समय पत्रिका में व्याकरण सम्बन्धी निबन्धों का अधिक प्रकाशन हुआ। इसके पश्चात् यह पत्रिका महामहोपाध्याय कालीपदतर्काचार्य के सम्पादक में प्रकाशित होती रही।

संस्कृतसाहित्यपरिषत्पत्रिकाकी भाषा नितान्त सरल है। अखण्ड प्रकाशन परम्परा में पत्रिका प्रथम गणनीय है। भारती के अनुसार—

"अस्मिन् विशेषतः शास्त्रीयाश्चर्चाः संस्कृतसाहित्यपरिषदो विवरणं प्राचीनाः ग्रन्थाः नवीनाः कृतयः वैदुष्यपूर्णा निबन्धाश्च प्रकाश्यन्ते। यदि पत्रमिदं समयगतिं पर्यालोच्य सामयिकीमावश्यकतां चानुभूय प्रचलितेषु आधुनिकविषयेषु लिखितान् निबन्धानपि स्थानं दद्यात्तर्हि शोभनं स्यात्।[2]

संस्कृतमहामण्डलम्

सरस्वती श्रुति महती महीयताम् के उद्देश्य से प्रेरित होकर सन् १९१९ में कलकत्ता से संस्कृतमहामण्डलम् नामक पत्र का प्रकाशन आरम्भ हुआ। यह पत्र लगभग एक वर्ष तक प्रकाशित हुआ। इस पत्र का वार्षिक मूल्य सार्ध तीन

---

१. व्याकरण ग्रन्थावली १.१

२. भारती [जयपुर] १.६

रुपये थे। यह पत्र १।३ ग्रे स्ट्रीट, संस्कृत महामण्डल कार्यालय, कलकत्ता से प्रकाशित हुआ था।

संस्कृतमहामण्डल पत्र के सम्पादक महामहोपाध्याय श्री लक्ष्मण शास्त्री द्राविड़ थे। तदनुसार—

'अत्र संस्कृतमहामण्डलस्य मुखपत्रे धर्मज्ञानविज्ञानोपकारिणो दर्शनेतिहासपुराणसाहित्यादिनानाशास्त्रविषयकाः सरलाः सारगर्भाश्च प्रबन्धाः नवनवाः समाचाराः रसभावमनोहराः श्लोका अन्ये चोपयोगिनो ग्रन्थसमालोचनप्रभृतयः विषयाः प्रकाश्येरन्। परमत्र राजनीतिर्लेशतोऽपि नालोचनीया।'[1]

सहकारी सम्पादकों में भुवन मोहन सांख्य तीर्थ भी थे। संस्कृतमहामण्डल बहुविध विषयों से सम्बन्धित पत्र था।

सरस्वतीभवनानुशीलनम् और सरस्वती ग्रन्थमाला

सरस्वती भवन वाराणसी से अनेक पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ। यहाँ की काशीविद्यासुधानिधिः, सरस्वतीभवनानुशीलनम्, सरस्वतीग्रन्थमाला, सारस्वतीसुषमा आदि प्रधान पत्रिकायें हैं। सन् १९२० में यहाँ से अनुसन्धानात्मक निबन्धों को प्रकाशित करने के लिए यह पत्रिका प्रकाशित हुई थी।

डा० गंगानाथ झा की संरक्षकता में अनुशीलन पत्रिका प्रकाशित की जाती थी। वाराणसेय और संस्कृत विद्यालय के विद्वानों के उच्चकोटि के निबन्ध इसमें उपलब्ध होते हैं।

सन् १९२० में सरस्वती पुस्तकालय भवन में विद्यमान अप्रकाशित ग्रन्थों को प्रकाशित करने के लिए सरस्वती ग्रन्थमाला का प्रकाशन हुआ था। सारस्वती सुषमा के अनुसार—

अमुद्रितानां प्राचीनसंस्कृतग्रन्थानां प्रकाशनार्थं सरस्वती ग्रन्थमालायाः अनुसन्धानमूलकनिबन्धानां च प्रकाशनार्थं सरस्वतीभवनानुशीलनपत्रिकायाः साक्षाद् विद्यालयादेव प्रकाशनमुपक्रान्तम्। महाविद्यालयाध्यापकानां सरस्वतीभवन स्टडीज् इति नामके पत्रे गवेषणात्मकगीर्वाणवाणीनिबन्धलेखनमिदम्प्रथमेव'।[2]

सुप्रभातम्

वाराणसी से सन् १९२३ में सुप्रभातम् पत्र का प्रकाशन आरम्भ हुआ। यह अखिल भारतवर्षीय साहित्य सम्मेलन का मुख पत्र था। यह पत्र

---

१. संस्कृत महामण्डलम् १.१

२. सारस्वती सुषमा १.१

सन् १९२४ से पाक्षिक रूप में प्रकाशित होने लगा। परन्तु कुछ समय पश्चात् पुनः मासिक हो गया और लगभग दस वर्ष तक प्रकाशित होता रहा।

सुप्रभातम् का वार्षिक मूल्य दो रुपये था। यह पत्र सुप्रभात कार्यालय टेढ़ीनीम काशी से प्रकाशित किया जाता था।

सर्वप्रथम यह पत्र कविचक्रवर्ती श्री देवी प्रसाद शुक्ल के सम्पादकत्व में प्रकाशित हुआ। पत्र के प्रकाशक विन्ध्येश्वरी प्रसाद थे। श्री देवी प्रसाद शुक्ल का निधन हो गया। उन्होंने मरते समय अपने सुयोग्य पुत्र गिरीश शर्मा शुक्ल से कहा था कि सुप्रभातम् का प्रकाशन न रुके। मैंने तो सुप्रभात देखा परन्तु दिन न देख सका। दूसरे वर्ष से यह पत्र गिरीश शर्मा शुक्ल के सम्पादकत्व में तथा केदार नाथ शर्मा सारस्वत के सहसम्पादत्व में प्रकाशित होने लगा। चतुर्थ वर्ष से सम्पादक केदारनाथ शर्मा सारस्वत हो गये। इस समय पत्र की महती प्रगति हुई और विद्वानों ने इसे पर्याप्त सम्मान दिया। इसमें उच्च कोटि के विद्वानों की रचनाएँ प्रकाशित की जाती थीं।

सुप्रभात पत्र का सर्वत्र प्रचार था। इसके कई बहुमूल्य विशेषांकों का प्रकाशन हुआ है। इसकी भाषा साहित्यिक थी। समाचारों का भी प्रकाशन संक्षेप में होता था। सम्पादकीय स्तम्भों से बहुज्ञता प्रतीत होती है। पत्र-पत्रिकाओं में सुप्रभात का श्रेष्ठ स्थान है। इसके अंकों के प्रमुख पृष्ठ पर अज्ञान विनाशक सुप्रभात की कामना थी——

तिमिरततिमुदस्यद् भेदतारा विलुम्पन्
नयदधिसुरभाषा-भावि जार्गति भावम्।
विबुध-विहग-वादैराह्वयद् भाग्य-भानुं
विलसतु भुवनेऽस्मिन् सर्वतः सुप्रभातम्॥

द्वैतदुन्दुभिः, आनन्दचन्द्रिका और सरस्वती

सन् १९२३ पत्र-पत्रिकाओं की दृष्टि से महत्त्व पूर्ण संवत्सर रहा है। एक ओर जहाँ सुप्रभात हुआ वहीं दूसरी ओर दुन्दुभी का ध्वान सर्वत्र व्याप्त होने लगा। द्वैतदुन्दुभिः का प्रकाशन बीजापुर से हुआ था। इसके सम्पादक अनन्ताचार्य थे। परन्तु यह द्वितीयाद्वै भयं भवति की तरह अभय न रह पायी और निर्भय प्रकाशन न हो सका तथा द्वैत समाप्त हो गया। बंगलौर से **आनन्दचन्द्रिका** अपनी धवल चन्द्रिका से सहृदय-चकोर को अवश्य कुछ समय के लिए आनन्द प्रदान की। इसके सम्पादक कारुपल्लि शिवराम थे, परन्तु चन्द्रिका सर्वदा एक सी नहीं रहती और वह शीघ्र समाप्त हो गयी। इसी समय मद्रास से **सरस्वती** राजावासि रेड्डी के सम्पादकत्व में प्रकाशित हुई।

शारदा, गीर्वाण और समस्याकुसुमाकरः

१९२४ ई० में मद्रास से गीर्वाण और शृंगेरी मठ मैसूर से शारदा पत्रिकायें प्रकाशित हुईं। काशी से समस्याकुसुमारः भी इन्ही दिनों प्रकाश में आया। गीर्वाण और शारदा सामान्य पत्रिकायें थी। समस्याकुसुमाकर में केवल समस्यायें प्रकाशित की जाती थीं।

सूर्योदयः

भारतधर्म महामण्डल वाराणसी से सन् १९२६ में सूर्योदय धार्मिक पत्र का प्रकाशन हुआ। यह पत्र कुछ समय के लिए पाक्षिक भी हो गया था। कुछ समय यह पत्र उसी स्थान से गोविन्द नरहरि वैजापुरकर के सम्पादकत्व प्रकाशित हुआ है। इसका वार्षिक मूल्य पाँच रुपये है। काशी महाराज के साहाय्य से पत्र का प्रकाशन हुआ था।

आरम्भ में यह पत्र विन्ध्येश्वरी प्रसाद शास्त्री के सम्पादकत्व में प्रकाशित हुआ। सप्तम वर्ष के अन्नदाचरण तर्कचूडामणि और चतुर्दश वर्ष से पंचानन तर्करत्न भट्टाचार्य सम्पादक हुए। इस समय पत्र के अंक विशेष उल्लेखनीय हैं। उनमें अनेक विषयों में गम्भीर निबन्ध मिलते हैं। पाँचवे वर्ष में कुछ समय के लिए शशिभूषण भट्टाचार्य तथा अवधेश प्रसाद शर्मा भी सम्पादक रहे हैं।

सूर्योदय पहले संस्कृत में प्रकाशित किया जाता था। विन्ध्येश्वरी प्रसाद के असफल सम्पादकत्व में पत्र त्रैमासिक हो गया। इस समय यह साधारण पत्र था। इस पत्र में अनेक विषय प्रकाशित होते रहे। धार्मिक सूर्योदय पत्र के विशिष्टांक भी प्रकाशित हुए हैं। इसमें उद्बोधन, सदुपदेश, सूक्तिओं का प्रकाशन हुआ। 'सूर्योदय' के अंकों के मुख पृष्ठ पर यह श्लोक मुद्रित होता रहा—

रागद्वेषनिशाटनं विधुरयन् मोहं तमो नाशयन्
तामिस्रजडवादकैरवकुलं ज्ञानत्विषा ग्लापयन्।
विद्वल्लोकमशोकयन् नयसुधीरोलम्बमुन्मीलयन्
संजातः सुमनो मनो मधुरयन् सर्वत्र सूर्योदयः॥

सुरभारती

राजस्थान संस्कृत पाठशाला मीरघाट वाराणसी से सन् १९२६ में सुरभारती पत्रिका के प्रकाशन का आयोजन धूम-धाम से किया गया। यथा—

'लोग कहेंगे कि संस्कृत-भाषा में पत्र-पत्रिकाओं की क्या आवश्यकता है?

एतदर्थ निवेदन है कि संस्कृत साहित्य की बड़े-बड़े अंग्रेज, फ्रेंच, जर्मन, अमेरिकन, चीनी, जापानी विद्वान् खोज रहे हैं। इसके सम्बन्ध में नवीन नवीन बातें सोचते-विचारते रहते हैं। ऐसी दशा में क्या इस देश के संस्कृत प्रेमियों और विद्वानों का यह कर्तव्य नहीं है कि वे भी एक ऐसी पत्रिका का प्रकाशन करें, जो गम्भीर एवं समयानुकूल हो। जो प्रतिपक्षियों के आक्रमण को परास्त कर सके और नवीन खोज करे तथा विदेशियों द्वारा दी गई संस्कृत-साहित्य सम्बन्धी खोज की बातों से भारतीय विद्वानों से परिचित करा सके।

इसी सदिच्छा से प्रेरित होकर काशी से 'सुरभारती' नामक एक सर्वांगपूर्ण और शक्तिशाली पत्रिका के प्रकाशन का आयोजन हो रहा है। वह संस्कृत साहित्य की श्री-वृद्धि करने में तथा उसे विरोधियों के आक्षेपों से बचाने में अपनी शक्ति का उपयोग करेगी। इसे तिरंगे एकरंगे चित्रों से तथा कार्टूनों से सजाने का प्रयत्न किया गया है। यह 'सरस्वती' (डबल क्राउन) साइज के सौ पृष्ठों में निकलेगी परन्तु इसके अस्तित्व के लिए कम से कम दो हजार ग्राहकों की आवश्यकता है। संस्कृत भाषा मरणासन्न है। उसकी उन्नति के साधन एक एक विफल होते गये। इस दिशा में साधारण प्रयत्न से काम नहीं चलेगा। सभी संस्कृत-प्रेमियों को अपनी सुरभारती के अस्तित्व की रक्षा के लिए अग्रसर होना चाहिए। संस्कृत की उन्नति में ही हमारा गौरव है। संस्कृत की उन्नति ही हिन्दी की, हिन्दुस्तान की वास्तविक उन्नति है।'[1]

सत्वरमेव वाराणसीतः सुरभारती नाम्नी सुप्रभाताकारा शतपृष्ठात्मिका पुरातत्त्वविषयिणी मासिकी संस्कृत-पत्रिका प्रकाशिता भविष्यति। तस्याश्च सम्पादनं महामहोपाध्यायाः श्री गंगानाथ झा उपकुलपतिः (प्रयागविश्वविद्यालय) महोदयाः करिष्यन्ति। श्री गोपीनाथकविराजमहोदया अपि तत्रावधानं दास्यन्ति'[2]

यह प्रयास गुरुप्रसाद शास्त्री ने किया था। परन्तु उसी वर्ष दैव दुर्विपाक से उनके अग्रज स्वर्ग सिधार गये। अतः पत्रिका का प्रकाशन न हो सका और सुरभारती न निकली।

उद्यानपत्रिका

तिरुपति (आन्ध्रप्रदेश) से सन् १९२६ में उद्यान पत्रिका का प्रकाशन

१. सरस्वती (हिन्दी) २८.२
२. सुप्रभातम् ४.२-३

आरम्भ हुआ। इसका प्रकाशन स्थल ११३ जी० साउथ मड स्ट्रीट तिरुपति था। पत्रिका का वार्षिक मूल्य दो रुपये तथा विद्यार्थियों के लिए केवल एक रुपया था। सानुवन्ध संचिका का मूल्य तीन रुपया था। इसका परिचय पत्रिकानुसार इस प्रकार है।

'कन्यामासे साधारणसंचिका अनन्तरमासे शास्त्रानुवन्धसंचिका इत्येवं क्रमेण पत्रिकायाः षण्मासेषु साधारणसंचिका षट्सु मासेषु अनुवन्धसंचिकाश्च प्रकाश्यन्ते ।'[1]

शास्त्रानुवन्ध संचिका में केवल दस पन्द्रह पृष्ठ रहते थे और किसी एक ग्रन्थ का अंश प्रकाशित किया जाता था, जैसे न्यायप्रभा, सटीक कुवलयानन्द, गीतार्थदीप आदि। साधारण संचिका के प्रत्येक अंक में लगभग बीस पृष्ठ रहते थे। इसके भी दो भागों में केवल गद्यमयी रचनाएँ प्रकाशित की जाती रहीं। इस प्रकार साधारण संचिकाओं में अनेक लघु काव्य, नाटक, कथा आदि का प्रकाशन हुआ। पत्रिका में पुस्तक समालोचना, हास-परिहास आदि अन्य विषय भी प्रकाशित किये गये।

उद्यान पत्रिका मीमांसा शिरोमणि डी० टी० ताताचार्य के सम्पादकत्व में प्रारम्भ से ही प्रकाशित हुई। परिश्रमपूर्वक धनार्जन करके ताताचार्य सदा पत्रिका का प्रकाशन करते रहे। यद्यपि पत्रिका की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी तथापि यह समय पर प्रकाशित हो जाती थी।

पत्रिका की साधारण संचिकाओं का अवलोकन करने के पश्चात् निष्कर्ष निकलता है कि पत्रिका में गद्य को अधिक महत्त्व दिया जाता था। यद्यपि 'सहृदया' के स्थान पर यह प्रकाशित हुई थी तथापि 'सहृदया' अपने ढंग की मान प्रकर्षवती उच्चकोटि की पत्रिका थी। उसमें और उद्यान पत्रिका में प्रत्येक दृष्टि से अन्तर है तथापि इस पत्रिका में भी सभी प्रकार की सामग्री उपलब्ध होती है। इसकी इच्छा निम्न थी।

ये संस्कृतप्रियाः सन्तस्तेषां सद्मनि सद्मनि ।
उद्यानपत्रिका नित्यं विहर्तुमियमिच्छति ॥

ब्राह्मणमहासम्मेलनम्

ब्राह्मणमहासम्मेलन पत्र का प्रकाशन वाराणसी से सन् १९२८ में प्रारम्भ किया गया था। यह धार्मिक पत्र था। इसका प्रकाशन ब्राह्हमणसम्मेलन कार्यालय १७७ दशाश्वमेध घाट वाराणसी से होता था। इसका वार्षिक मूल्य

१. उद्यान पत्रिका १.१

तीन रुपये और एक अंक का मूल्य चार आने था। यह पत्र लगभग साढ़े चार वर्ष तक प्रकाशित हुआ।

सम्पादक मण्डल में अनेक प्रख्यात विद्वान् थे। महामहोपाध्याय अनन्त कृष्ण शास्त्री, राजेश्वर शास्त्री द्राविड़, ताराचरण भट्टाचार्य और जीवन्यायतीर्थ प्रमुख थे। इसके परिदर्शक हाराणचन्द्र शास्त्री और गोपीचन्द्र सांख्यतीर्थ थे।

बनारस में ब्राह्मणमहासम्मेलन नाम की एक सभा थी। उसका यह मुख पत्र था। इसमें सभा का विवरण, भाषण, आय-व्यय विवरण आदि विषय भी प्रकाशित किये जाते थे। प्रतिवर्ष सभा का अधिवेशन होता था। अधिवेशन में धर्म विषयक प्रश्नों का उत्तर और उनका प्रकाशन पत्र में होता था। वर्ण और आश्रम की प्रतिष्ठा करने के लिए पत्र का प्रकाशन आरम्भ हुआ था। पत्र का उद्देश्य वर्णाश्रमानुसार कार्य करते हुए चरम सिद्धि और स्वराज्य की प्राप्ति हो सकती है। तदनुसार—

धर्मैकलक्ष्यतैव द्वारं स्वराज्यसिद्धेः, तद्विनाशद्वारमेव धर्मपराङ्मुखतेति। धर्मपराङ्मुखता हि केवलमात्महानाय एव नात्मरक्षणाय।[1]

ब्राह्मणमहासम्मेलन पत्र के विशेषांक भी प्रकाशित किये गये थे, जो धर्म-प्रधान ही थे। अमरभारती पत्रिका के अनुसार—

काशीस्थब्राह्मणमहासम्मेलनं तु प्रायो धार्मिकसाहित्यमात्रप्रकाशकं धर्म-रक्षणक्षेत्रे रविरिव प्रकाशते।[2]

ब्राह्मणमहासम्मेलन पत्र की भाषा सरल और प्रभावोत्पादक थी। इसके मुख पृष्ठ पर महाभारत का निम्न श्लोक अंकित किया जाता था—

न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्
धर्मं जह्याज्जीवितस्यापि हेतोः।

उद्योतः

लाहौर सन् १६२८ में उद्योत पत्र का प्रकाशन आरम्भ हुआ। पंजाब संस्कृत साहित्य का यह प्रमुख पत्र था। इस पत्र का प्रकाशन स्थल उद्योत कार्यालय जोड़े मोरी लाहौर था। इसका वार्षिक मूल्य डेढ़ रुपये था।

उद्योत पत्र नृसिंहदेव शास्त्री के सम्पादकत्व में तथा परमेश्वरानन्द शास्त्री के सहसम्पादकत्व में आरम्भ हुआ था। इसके प्रकाशक परिपन्मत्री पण्डित जगदीश शास्त्री थे।

---

१. ब्राह्मणमहासम्मेलनम् १:१ पृ० ६
२. अमरभारती १.१ पृ० ५

उद्योत प्रति संक्रान्ति को प्रकाशित किया जाता था। इसमें राजनीति विषयक निबन्धों को छोड़कर अन्य सभी प्रकार के निबन्धों का प्रकाशन होता था। यह समाचार रहित पत्र था। सुप्रभातं पत्र के अनुसार—

'श्रीमतां महामहोपाध्याय श्री गिरिधरशर्मचतुर्वेदमहोदयानां शुभया प्रेरणया संस्थापिता पंचनदीया संस्कृत-साहित्य-परिषत्साम्प्रतं कार्यक्षेत्रे 'उद्योत' नामकं संस्कृतमासिकपत्रं निःसारितवती। अन्तर्बहिश्चायं मनोहरः।'[1]

पत्र की भाषा साधारण थी। पत्र के अंकों के मुख पृष्ठ पर निम्नांकित श्लोक प्रकाशित होता था—

> विद्वन्मानसकंजकोपकलिकामुन्मीलयन्नादराद्
> अज्ञानान्धतमोविनाशपटुता-विख्यात-विश्वप्रभः।
> नानाशास्त्रविमर्शमौक्तिकगणद्योतं समुद्योतयन्
> उद्योतो दशदिक्षु भां समधिकां विस्तारयन्राजते॥

श्रीपीयूषपत्रिका

नडियाद् (गुजरात) से सन् १९३१ में पीयूष पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ हुआ। पत्रिका का प्रकाशन स्थल श्रीपीयूषपत्रिका कार्यालय नडियाद् था। इसका वार्षिक मूल्य तीन रुपये था।

श्रीपीयूष पत्रिका हीरालाल शास्त्री पंचौली और हरिशंकर शास्त्री के सम्पादकत्व में प्रकाशित हुई थी। इसके प्रकाशक हरिशंकर शास्त्री ही थे। द्वितीय वर्ष से सम्पादक और प्रकाशक हरिशंकर शास्त्री हो गये। गोस्वामी अनिरुद्धाचार्य इसके संरक्षक थे।

श्रीपीयूष पत्रिका दर्शन-प्रधान पत्रिका थी। इसमें मीमांसा, न्याय, सांख्य, वेदान्त आदि दर्शनों के कतिपय प्रमुख ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ है। पत्रिका के अन्तिम कुछ पृष्ठों में हिन्दी की रचनाएँ भी रहती थीं। पारमार्थिक तत्त्व के जिज्ञासुओं के लिए यह पत्रिका उच्च कोटि की थी।

वसन्तराम शास्त्री के श्रीकृष्ण की लीलाओं के रंगीन चित्र इसमें अंकित किये जाते थे। चित्र प्रकाशन की दृष्टि से यह निराली पत्रिका थी। अनेक मनोरम चित्रों का प्रकाशन पत्रिका में हुआ है। लगभग तीन वर्ष के पश्चात् इस रमणीय पत्रिका का प्रकाशन स्थगित हो गया।

श्रीपीयूष पत्रिका की भाषा मधुर और अलंकार विभूषित थी। पत्रिका के

---

१. सुप्रभातम् ४.१२

कुछ अंकों में शोध निबन्ध भी मिलते हैं । इसका मुद्रण त्रुटि रहित था। बत्तीस पृष्ठों की यह पत्रिका थी। यो वै भूमा तदमृतं उपनिषद् वाक्य के प्रकाशन के पश्चात् प्रति अंक में निम्नांकित श्लोक प्रकाशित होता था—

कालदावानलज्वालावलीढान् सज्जनान् सदा।
शिशिरीकुरुतात् सर्वान् सैषा पीयूषपत्रिका ॥

अमरभारती

शासकीय संस्कृत कालेज बनारस की मुख पत्रिका के रूप में सन् १९३४ में अमरभारती पत्रिका का प्रकाशन हुआ। अमरभारती पत्रिका का वार्षिक मूल्य तीन रुपये था।

अमरभारती पत्रिका महामहोपाध्याय नारायणशास्त्री खिस्ते के सम्पादकत्व में किसी प्रकार तीन वर्ष तक प्रकाशित हुई। पत्रिका में गम्भीर और प्रौढ़ निबन्ध अनेक विद्वानों के मिलते है। पद्यवाणी पत्रिका में इसकी सूचना इस प्रकार है—

'एषा मासिकी विचित्रा चित्रकाव्यादिमयी संस्कृतपत्रिका वाराणस्या राजकीयसंस्कृतमहाविद्यालयात् 'क्वीन्स कालेज इत्याख्यात्प्रकाश्यते। अस्याः परिचालकसमिती परमहंसपरिव्राजकाचार्याः सत्यध्यानतीर्थस्वामिचरणाः संरक्षकाः महामहोपाध्याय श्रीगोपीनाथकविराज एम० ए० महाशयाः साहित्याचार्य-साहित्यवारिधिखिस्ते श्रीनारायणशास्त्रिणः सम्पादकाः।

अस्याः प्राप्तिस्थानं अमरभारती कार्यालय ३०।११ घासीटोला बनारस। अस्यां पत्रिकायां साहित्यदर्शनादिविषयका प्रौढनिबन्धाः विचित्राणि चित्रकाव्यानि समस्यापूर्तयः प्रहेलिकादयश्च 'पद्यवाणी' रीत्या प्रकाश्यन्ते। ईदृशी पत्रिका नैवापरा समुपलभ्यते विशिष्टानां विपश्चितां लेखसम्भारेणोपस्कृता खल्वियं पत्रिका संस्कृतप्रियपण्डितसमाजे स्वल्पेनैवकालेन महतीं प्रतिष्ठां गतवतीति'।[1]

वाङ्मयैकात्मके हंसे समासीना सिताम्बरा।
कच्छपीवादनरता जयत्यमरभारती ॥

मधुरवाणी

बेलगांव महाराष्ट्र से सन् १९३५ में मधुर वाणी पत्रिका का प्रकाशन हुआ। यह पत्रिका लगभग लगभग तेरह वर्ष तक बेलगांव से, इसके पश्चात्

---

१. संस्कृत पद्यवाणी १.४

बागलकोट से प्रकाशित होने लगी। सन् १९५५ से पत्रिका का प्रकाशन गदग (धारवाड़) से आरम्भ हुआ। इसका वार्षिक मूल्य पाँच रुपये था।

प्रारम्भ में यह पत्रिका गलगली रामाचार्य के सम्पादकत्व तथा बुर्ली श्रीनिवासाचार्य के सहसम्पादकत्व में प्रकाशित हुई थी। बेलगांव में सम्पादक गलगलपण्ढरी नाथाचार्य थे। गदग से जिस समय यह पत्रिका प्रकाशित हो रही थी, उस समय इसके प्रधान सम्पादक गलगली रामाचार्य और सम्पादक पण्ढरीनाथाचार्य थे।

मधुरवाणी पत्रिका के स्थगित होने का कारण द्रव्याभाव था। तदनुसार—

मधुरवाणी कुतो नाविष्क्रियते ?
अनानुकूल्यात्।
किं तदनानुकूल्यम् ?
मुद्रणासौकर्यम्।
कुतस्तत् ?
द्रव्याभावात्।

यह पत्रिका गीर्वाणवाणीं व्यवहारोपयोगिनी कर्तव्या उद्देश्य को लेकर प्रकाशित हुई थी। इसमें सरल निबन्ध और कविताओं का प्रकाशन होता था।

पत्रिका के बारहवें वर्ष में ऐसी सूचना मिलती है कि 'मधुरवाणी' पत्रिका अगले वर्ष से साप्ताहिक रूप में प्रकाशित होगी। इसके पहले ही बुर्ली श्रीनिवासाचार्य के निधन के कारण पत्रिका का प्रकाशन स्थगित हो गया। मंजूषा पत्रिका के अनुसार—

'यास्तावद्देवाभापामय्यः पत्रिकास्तूर्णीकृतस्वार्थाः प्रचरन्ति भारतभूम्यां तेष्वेयमन्यतमा प्रधानतमा च मधुरवाणीत्यन्वर्थनाम्नी। अस्याश्च सम्पादकवर्यैर्महतीमपि हानिमुररीकृत्य प्राकाश्यतैषा। प्रियवाचकमहाभागाः! आसीदस्माकं बलवती प्रत्याशा यद् भारतवर्षस्य स्वाधीनतासमधिगमानन्तरं पुनरपि प्रोड्डीना स्याद्देवभाषावैजयन्ती सर्वत्रैवाप्रतिहतं तथापि किं पश्यामः। मधुरवाणीयं आत्मनामानुसारं मधुरया वाण्या सततं हितमुपदिशन्ती सर्वेषां जनानां सुखशान्तिप्रदा तथा सर्वादरभाजनभूता उदारधनिकानां साहाय्यमवाप्य महान्तमुत्कर्षमधिगच्छन्ती सुरसरस्वतीसेवां कुर्वन्ती चिरं जीयात्'।[1]

मधुरवाणी श्रेष्ठ पत्रिका थी। इसके सभी अंको के द्वितीय पृष्ठ पर निम्नांकित श्लोक प्रकाशित किया जाता था—

---

१. मधुरवाणी १७.६

सुधानिस्यन्दिन्या मधुरमधुरालापकलया
खलावज्ञामूर्च्छाभमरपहरन्ती सुरगिरः ।
मनोज्ञालङ्कारा रसिकजनचेतांसि सहसा
वशीकुर्वाणेयं भुवि मधुरवाणी विजयते ।

मंजूषा

कलकत्ता से सन् १९३५ में मंजूषा पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ हुआ। यह पत्रिका सन् १९३५ से लेकर सन् १९३७ तक प्रकाशित हुई। इसके पश्चात् पत्रिका का प्रकाशन स्थगित हो गया। पुनः सन् १९४९ से सन् १९६१ तक इसका प्रकाशन हुआ। यह पत्रिका मंजूषा कार्यालय ८, भूपेन्द्र बोस एवेन्यू, कलकत्ता-४ से प्रकाशित की जाती थी। इसका वार्षिक मूल्य छः रुपये था।

डा० क्षितीशचन्द्र चट्टोपाध्याय ने अपने सम्पादकत्व में हानि उठाकर भी आजीवन इसका प्रकाशन किया।

प्रारम्भ में मंजूषा पत्रिका व्याकरण विषय प्रधान थी। पत्रिका के स्थगित होने के कई वर्ष पूर्व पत्रिका में अनुवाद और नाटक आदि भी प्रकाशित किये जाने लगे थे। यह एक उच्चतम स्तर वाली पत्रिका थी। पत्रिका में कई विभाग थे। जैसे आभाणकमाला, नामरहस्यं, बहुलीभूता-प्रमादाः, रसमंजरी, पाठविमर्शः आदि। उपर्युक्त सभी विभागों में अधिकांश सामग्री सम्पादक की ही प्रकाशित होती थी। डा० सुनीति कुमार चटर्जी के अनुसार—

We have still about half-a-dozen Sanskrit Journal in India, apart from fairly frequent addresses and dissensions which are published independently. Among these Journals, the Manjusha which is probably the only one of its kind, appearing regularly month after month, has made unique place of its own. Chatterji had been the soul of the Journal and had been publishing the Manjusha at an enormous financial loss and personal sacrifice.

A journal like this deserves a much wider appreciation which is its due. I think our high school students reading Sanskrit will find much of interest, pleasure and profit in it. Among all his serious work in this connexion, we have to give to Manjusha a very high place.[1]

१. मंजूषा १२.१

पत्रिकेयं सर्वत्रसमादृतप्रचारा बहुविधप्रत्नविषयैस्समलङ्कृता पाश्चात्यानां मनांस्यपि समाहरति सुन्दरविषयैरतिसुषमामयी चकास्ति ।

मंजूषा अत्यधिक उपयोगी पत्रिका थी । इसमें सभी विषय सरलतम शैली में प्रकाशित किये जाते थे । महाराजकालेजपत्रिका के अनुसार —

'इयमपि मंजूषा निखिलविषयमंजूषेव समधिकमंजूषा पण्डितपुंजानाह्लादयति'

मंजूषा के प्रत्येक अंक में यह श्लोक प्रकाशित किया जाता था—

शरणं तरुणेन्दशेखरः शरणं मे गिरिराजकन्यका ।
शरणं पुनरेतु तावुभौ शरणं नान्यदुपैम दैवतम् ॥

वल्लरी

वाराणसी से सन् १९३५ में वल्लरी पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ हुआ । यह पत्रिका वल्लरी कार्यालय ६०।३५ सिद्धमाता की गली, बनारस सिटी से प्रकाशित की जाती थी । पत्रिका का वार्षिक मूल्य दो रुपये था ।

वल्लरी केशवदत्त पाण्डे और तारादत्त पन्त के सम्पादकत्व में केवल एक वर्ष तक प्रकाशित हुई । केशवदत्त का उसी वर्ष निधन हो गया और तारादत्त पन्त वाराणसी छोड़ कर अल्मोड़ा चले गये ।

'वल्लरी' सचित्र पत्रिका थी । इसमें सभी प्रकार के विषयों का प्रकाशन हो रहा था । 'वल्लरी' में अनेक काव्य प्रकाशित किये गये । कुछ अंकों में गवेषणात्मक निबन्धों का प्रकाशन हुआ । अनन्त शास्त्री फडके, रामावतार शर्मा और दीनानाथ शर्मा सारस्वत प्रधान निबन्धकार थे । समस्या, व्यंग्य, समाचार, वैज्ञानिक निबन्ध आदि विषय प्रकाशित किये जाते थे । पत्रिका के मुखपृष्ठ पर निम्नाङ्कित श्लोक प्रकाशित किया जाता था—

संश्लाघ्याऽऽगमराजिते बहुसुपर्वोच्चैर्लसन्मन्दिरे
गङ्गोत्तुङ्गतरङ्गभङ्गिभिरहोरात्रं पवित्रीकृते ।
एषाऽऽनन्दवने बुधाः सुरगवी हृद्या नवा वल्लरी
माधुर्योल्लसिता विकासमयते श्रीमाधवानुग्रहात् ॥

ज्योतिष्मती

वाराणसी से सन् १९३९ में ज्योतिष्मती पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ हुआ । यह पत्रिका ज्योतिष्मती कार्यालय मानमन्दिर वाराणसी तथा ११, रानीभवानी गली, बनारस से प्रकाशित तथा प्राप्त की जाती थी । कुछ समय के लिए पत्रिका का प्रकाशन स्थल १५ सकरकन्द गली काशी हो गया था । पत्रिका का वार्षिक मूल्य डेढ़ रुपये और एक प्रति का दो आना था । यह पत्रिका मास

की पाँच तारीख को प्रकाशित की जाती थी।

ज्योतिष्मती पत्रिका महादेव शास्त्री के प्रधान सम्पादकत्व में तथा बलदेव प्रसाद मिश्र के सम्पादकत्व में प्रकाशित की जाती थी। बलदेव मिश्र के निधन के पश्चात् उनके भाई माधव प्रसाद के सम्पादकत्व में पत्रिका प्रकाशित होने लगी। कुछ समय तक श्री ईशदत्त श्रीश सम्पादक रहे। यह पत्रिका लगभग ढ़ाई वर्ष तक प्रकाशित हुई।

ज्योतिष्मती हास्यरस प्रधान पत्रिका थी। होलिकाङ्क में विनोदों और व्यंग्यों की चरमसीमा है, तथापि कुछ अंकों में अश्लील रचनाएँ भी मिलती हैं। यह सचित्र पत्रिका थी। इसकी भाषा साधारण थी। इस पत्रिका में गीत, कथा, संस्मरण आदि का भी प्रकाशन होता था।

ज्योतिष्मती पत्रिका में राजनीतिविषयक निबन्धादि का भी प्रकाशन होता था। अतः अंग्रेज सरकार ने इस पत्रिका के प्रकाशन पर प्रतिबन्ध लगा दिया।

संस्कृतसंजीवनम्

बिहार संस्कृत-संजीवन समाज के प्रधान पत्र के रूप में सन् १९४० में संस्कृत-संजीवन पत्र का प्रकाशन आरम्भ हुआ। यह पत्र विहार संजीवन समाज वारीपथ, पटना-४ से प्रकाशित होता था। इसका वार्षिक मूल्य छः रुपये था।

सम्पादक मण्डल में केदारनाथ ओझा, भवानीदत्त शर्मा, चन्द्रकान्त पाण्डे त्रिगुणानन्द शुक्ल, रामपदार्थ शर्मा आदि विद्वान् थे।

संस्कृत शिक्षा प्रणाली का परिष्कार करने के लिए अम्बिकादत्त व्यास के द्वारा विहार संस्कृत संजीवन समाज की स्थापना सन् १८८७ में हुई थी। संस्कृत संजीवन पत्र के प्राचीन अंक नहीं मिलते। अतः दिव्यज्योतिः के अनुसार—

यद्यपि पत्रमिदं त्रयोविंशवर्षपुरातनं यथा किलावरणपृष्ठात् ज्ञायते तथाप्यस्माभिस्त्वस्य दर्शनं प्रथमवारमेव कृतम्। अस्य पत्रस्यायं जुलाई ६२ अङ्कोऽस्माकं समक्षे वर्तते। विषयाः गम्भीराः सामयिकाश्चापि केचन। पत्रस्यास्य सम्पादकीयं अस्मन्मतसम्मतम्।[1]

पत्र के मुखपृष्ठ पर भारतस्य प्रतिष्ठे द्वे संस्कृतं खलु संस्कृतिः के पश्चात् प्रधान मंत्री नेहरू का निम्नांकित वाक्य संस्कृत में प्रकाशित किया जाता था—

संस्कृते न केवलमुच्चतमविचारस्याभिव्यक्तिः साहित्यसौन्दर्यं च परं राज-

---

१. दिव्यज्योतिः ६.१०-११

नैतिकविभाजनेष्वपीदं भारतस्य सङ्घटनकारकं तत्त्वं बभार।

संस्कृत-सन्देशः

वाराणसी से सन् १९४० में 'संस्कृत संदेशः' पत्र का प्रकाशन आरम्भ हुआ। यह पत्र सन्देशकार्यालय रामापुरा, काशी से प्रकाशित होता था। पत्र का वार्षिक मूल्य दो रुपये और छात्रों के लिए एक रुपया था। यह साधारण पत्र था। इसका प्रकाशन तीसरे वर्ष स्थगित हो गया।

संस्कृत-सन्देश के सम्पादक रामबालक शास्त्री रामापुरा उच्चतर माध्यमिक शाला में अध्यापक थे। यह पत्र विद्यार्थियों के लिए प्रकाशित किया गया था। पत्र की भाषा सरल थी। तदनुसार—

It is a monthly Sanskrit Periodical. The language is simple and the style is lucid. The subject with which it deals is of common interest. Even a high school student with Sanskrit can very easily understand and appreciate the article.

पत्र के प्रति अंक में सरस्वती का चित्र और उसके नीचे यह श्लोक प्रकाशित किया जाता था—

> छिन्मानुल्लुकयन् निर्मूलयन्दुलयन् धूनः समासादयन्
> प्रौढानुन्नमयन् विदः प्रबलयन् वर्षीयसो हर्षयन्।
> विद्वेषं तिरयन् दिशो मुखरयन् हर्षं परं हर्षयन्
> वाग्देवीं मदयन् सुधानवरयन् सन्देश उज्जृम्भते॥

भारतश्रीः

मार्च सन् १९४० को महादेव शास्त्री के सम्पादकत्व में भारतश्रीः पत्रिका का प्रकाशन हुआ। यह पत्रिका शितिकण्ठलघ अस्सी काशी से प्रकाशित हुई थी। इसका वार्षिक मूल्य मात्र एक रुपये था। इसके सम्पादक उच्चकोटि के विविध शास्त्र ज्ञाता होने के कारण प्रायः सभी विषयों का उन्नत-स्तर इसमें मिलता है। पत्रिका के अनुसार यह संस्कृतज्ञों के जागरण का युग है। यथा—

अर्जुनस्य प्रतिज्ञे द्वे न दैन्यं न पलायनमिति भारतीयरणारणकं पुनरपि भारतश्रीप्रवर्धकं मत्वा संस्कृतवाङ्मयस्य अचिरात्रापि विचित्रा परमरमणीया मासिकपत्रिका तदसौ भारतश्रीः करणेहत्य प्रकाशयितुमुपक्रान्ता तत्तया सहयोगः प्रदीयतां यदाऽसौ महाराष्ट्रं मोदयन्ती गुर्जरञ्जागरयन्ती पञ्चाम्बुप्रान्तं प्रह्लादयन्ती वङ्गम् अयन्ती विहारं हारयन्ती किम्नाम निखिलमपि भारतं भा-रतं सम्पादयेत्कृपवर्दाया भारतश्रीः। इतः परं किम्नाम निगदनीयं तद्धि—

रात्रिर्गता मतिमतां वर मुञ्चशय्याम्[1] ।

अमरभारती

वाराणसी से सन् १९४४ में अमरभारती पत्रिका का प्रकाशन लगभग एक वर्ष के लिए हुआ। पत्रिका का प्रकाशन अमर भारती कार्यालय, ११।३ वांस फाटक, काशी से होता था। यह पत्रिका संस्कृत विद्यामन्दिर वांसफाटक काशी से प्राप्त की जाती थी। पत्रिका का वार्षिक मूल्य तीन रुपये था।

अमरभारती पत्रिका पण्डित कालीप्रसाद शास्त्री के सम्पादकत्व में प्रकाशित हुई थी। इसमें संस्कृत को राष्ट्रभाषा वनाने का प्रयास किया गया था। पत्रिका की भाषा सरल और मुद्रण सुन्दर था। अनेक प्रख्यात विद्वानों की रचनाएँ इसमें प्रकाशित हुईं। अमरभारती के चिरजीवन की कामना युक्त निम्नांकित श्लोक पत्रिका के मुखपृष्ठ पर प्रकाशित किया जाता था—

यावद्वर्णाश्रमाचारा यावद्वेदाश्च भारते ।
यावदात्मरतिस्तावज्जीयादमरभारती ॥

कौमुदी

श्री सरस्वती परिषद् हैदरावाद (सिन्ध) से सन् १९४४ में कौमुदी पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ हुआ। यह पत्रिका एस० वी० पाठशाला चन्दिरामणि लेन हैदरावाद (सिन्ध) से प्रकाशित की जाती थी। इसका वार्षिक मूल्य डेढ़ रुपया था। प्रति पूर्णिमा को यह पत्रिका प्रकाशित होती थी।

'कौमुदी' पत्रिका पण्डित कालूराम व्यास के सम्पादकत्व में प्रकाशित हुई थी। पत्रिका की भाषा सरल और मुद्रण आकर्षक था। मधुरवाणी पत्रिका के अनुसार—

एवं सर्वेष्वेषु सत्स्वपि विरोधिजनविरोधातपतापशमनाय कालराहुणा ग्रस्तायां प्राक्तन चन्द्रिकायां वहोः कालात् कौमुदी एव नासीत्संस्कृतसाम्राज्ये। तदेतन्नूनतामात्मन प्रशंसनीयतमेन साहसेन यशोधवलोऽपि कालूरामव्यासमहाभागो महतीमेव सेवां विधत्ते सुधाशनसरस्वत्याः। कुमुदनाथप्रभावात् सिन्धोः कौमुदी प्रादुर्भावो नात्याश्चर्यकरः। विरलसंस्कृतप्रचारेऽपि संपादिता कौमुदी सुधोर्मयः सरसप्रवन्धकिरणैर्वन्धुरा नितान्तमानन्दयन्त्यपि गायति गुणानगण्यानमुष्या मधुरया गिरा गीर्वाणभारत्याः। विपुलरसिकवाचकचकोरनिचयसमास्वाद्यमारुचिरैषा रुचिरवेषा अचिरादेव प्रतिमासमुदीयमाना कौमुदी

---

१. भारतश्री १.१

प्रमोदयतु संस्कृतप्रणयिनम् ।[1]

आरम्भ में यह पत्रिका त्रैमासिक रूप में प्रकाशित हुई थी ।

मालवमयूरः

मन्दसौर (म० प्र०) से सन् १९४६ में मालवमयूर पत्र का प्रकाशन आरम्भ हुआ । यह पत्र मालवमयूर कार्यालय मन्दसौर से प्रकाशित किया जाता था । इसका वार्षिक मूल्य पाँच रुपये था । मालवमयूर पत्र रुद्रदेव त्रिपाठी के सम्पादकत्व में प्रकाशित हुआ था ।

यह पत्र गेहे गेहे लसतु निरतं देववाणी उद्देश्य को लेकर प्रकाशित हुआ था । पत्र में अनेक लघु काव्यों का प्रकाशन हुआ है । समस्या, हास्य-व्यंग, आधुनिक वैज्ञानिक विषयों पर भी निबन्ध प्रकाशित किये जाते थे । सम्पादकीय स्तम्भों में विचारों की प्रौढता थी । पत्र विनोदात्मक अधिक था । चल-चित्र के गीतों का उसी लय और ध्वनि में संस्कृत में अनुवाद प्रकाशित होता था । कभी-कभी कोई ग्रन्थ ही प्रकाशित कर दिया जाता था । पत्र के अनेक विशेषांक भी प्रकाशित किये गये हैं जैसे—मालवांक, होलिकांक, विनोदिनी अंक इत्यादि ।

मालवमयूर पत्र का प्रकाशन पाँच वर्ष के पश्चात् स्थगित था । कुछ समय पश्चात् पत्र का पुनः प्रकाशन हुआ । पत्र में मुद्रण सम्बन्धी कुछ त्रुटियों के रहने पर भी पत्र अपने उद्देश्यों में सफल रहा । रुद्रदेव त्रिपाठी हास्य रस के श्रेष्ठ कवि हैं । वे इसे अपने वैयक्तिक अनुराग और धन से निकालते थे । उन का यह कार्य सतत प्रशंसनीय है ।

ब्रह्मविद्या

कुम्भकोणम् से सन् १९४८ में ब्रह्मविद्या पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ हुआ । यह पत्रिका 'अद्वैत सभा कांची कामकोटि पीठ, कुम्भकोणम्' की मुख-पत्रिका है, तथा वहीं से प्रकाशित भी की जाती है । पत्रिका का वार्षिक मूल्य पाँच रुपये है ।

ब्रह्मविद्या के सम्पादक पण्डितराज एस० सुब्रह्मण्य शास्त्री हैं । यह पत्रिका टी० आर० श्रीनिवासाचार्य के प्रकाशकत्व में प्रकाशित की जाती है ।

यह अद्वैत दर्शन प्रधान पत्रिका है । इसमें अद्वैत दर्शन सम्बन्धी अनेक उच्चकोटि के निबन्ध प्रकाशित होते रहते हैं ।

---

१. मधुरवाणी ६. ११-१२

वालसंस्कृतम्

बम्बई से सन् १९४९ में बालसंस्कृतम् पत्र का प्रकाशन आरम्भ हुआ। यह पत्र बालसंस्कृत कार्यालय, आगरा रोड, घाटकोपर, बम्बई ७७' से प्रकाशित किया जाता है। इसका वार्षिक मूल्य पाँच रुपये हैं।

कविराज वैद्य रामस्वरूप शास्त्री आयुर्वेदाचार्य के सम्पादकत्व में पत्र प्रकाशित हो रहा है। वैद्य जी की धारणा है कि संस्कृत का प्रचार बालकों में होने से संस्कृत जनसाधारण की भाषा हो सकती है। यह पत्र एकमात्र बालोपयोगी है।

'बालसंस्कृत' की भाषा नितान्त सरल, विषय सरल और बालोपयोगी है। पत्र के द्वारा बालकों को संस्कृत का प्राथमिक ज्ञान कराया जाता है। इस दिशा में यह अकेला पत्र है। सरल पुस्तकों का भी प्रकाशन पत्र में हुआ है। सम्पादक का यह प्रयास प्रशंसनीय और उपादेय है। मुद्रण आदि सारा कार्य सम्पादक अपने ही करते हैं। इसके प्राचारार्थ वे धार्मिक कृत्यों में जाकर इसे वितरित करते हैं। पत्र की सफलता का यही रहस्य है। इसके अनुसार—

पुरे पुरे गृहे कुट्यां बाले बृद्धे युवस्वपि।
संस्कृतस्य प्रचाराय प्रभूयाद् बालसंस्कृतम् ॥

मनोरमा

वेहरामपुर (गंजाम) से सन् १९४९ में मनोरमा पत्रिका का प्रकाशन हुआ। यह पत्रिका शिरोमणि मुद्रण, वेहरामपुर, गंजाम से प्रकाशित की जाती थी। इसका वार्षिक मूल्य छः रुपये था।

मनोरमा श्री अनन्त त्रिपाठी शर्मा के सम्पादकत्व में प्रकाशित हुई थी। पत्रिका में दो भाग रहते हैं। प्रथम भाग में किसी ग्रंथ के अंश का प्रकाशन होता है तथा द्वितीय भाग में दार्शनिक, ऐतिहासिक और वैज्ञानिक निवन्धों का प्रकाशन हुआ। पत्रिका में ताम्रपत्रों पर अंकित श्लोक भी प्रकाशित किए गये। पत्रिका के अन्तिम पृष्ठों में हिन्दी, उत्कल, बंगभाषा भी कभी-कभी रहती है।

पत्रिका साधारण है। मुद्रण त्रुटिरहित है। प्रथम अंक में ही यह निश्चित हो जाता है कि अग्रिम अंक में क्या प्रकाशित किया जायगा? कभी कभी पत्रिका का प्रकाशन भी स्थगित हो जाता था। पत्रिका के मुख पृष्ठ पर निम्नांकित श्लोक प्रकाशित किया जाता रहा—

'ललितैः पदविन्यासैश्चित्रैर्भावबन्धनैः।
भावुकानामन्तरङ्गे प्रतिभातु मनोरमा' ॥

भारती

जयपुर से सन् १९५० में भारती पत्रिका का प्रकाशन हुआ। यह पत्रिका भारती भवन गोपाल जी का रास्ता जयपुर से प्रकाशित हो रही है। इसका वार्षिक मूल्य तीन रुपये है।

आरम्भ के चार वर्षों तक यह पत्रिका सुरजनदास स्वामी के सम्पादकत्व में प्रकाशित होती रही। इसमें पश्चात् भट्ट मथुरानाथ शास्त्री के सम्पादकत्व में अनेक वर्षों तक यह प्रकाशित हुई।

यह सचित्र पत्रिका है। इसमें भारतीय वीर पुरुषों के चित्र प्रकाशित किए जाते हैं। इसके विशेषांक कभी कभी प्रकाशित किए जाते हैं। पत्रिका में काव्य नाटक, गीत, कथा आदि का प्रकाशन हो रहा है। विनोद सामग्री भी प्रकाशित होती है। यह प्रति पूर्णिमा को अनवरत रूप से प्रकाशित हो रही है। अनुसन्धान निवन्ध भी किन्हीं-किन्हीं अंकों में प्रकाशित हुए हैं। संस्कृत-सम्मेलनों का विवरण, भारतीय उत्सवों की सूचना तथा अन्य संक्षिप्त समाचारों का भी प्रकाशन होता है। इसका सम्पादकीय स्तम्भ महत्त्वशाली रहता है। इसमें हास्य पूर्ण अनेक रचनाओं का प्रकाशन हुआ है।

वैदिकमनोहरा

कांची से सन् १९५० में वैदिकमनोहरा पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ हुआ। यह पत्रिका पी० बी० अण्णङ्गराचार्य, लिटले, कांची से प्रकाशित की जाती है। इसका वार्षिक मूल्य एक रुपया है।

'वैदिक मनोहरा' जगदाचार्य सिंहासनाधीश पी० बी० अण्णङ्गराचार्य के सम्पादकत्व में प्रकाशित हो रही है।

'वैदिकमनोहरा' पत्रिका वैष्णवों की पत्रिका है। इसमें रामानुजीय दर्शन सम्बन्धी निवन्ध उपलब्ध होते हैं। इसमें कभी कभी हिन्दी और द्रविड़ भाषा में तत्सम्बन्धी रचनाओं का प्रकाशन होता है।

संस्कृतप्रतिभा

अपारनाथमठ वाराणसी से सन् १९५१ में संस्कृतप्रतिभा पत्रिका का प्रकाशन हुआ। पत्रिका का वार्षिक मूल्य दो रुपये था। यह पत्रिका लगभग डेढ़ वर्ष तक प्रकाशित हुई।

संस्कृतप्रतिभा रामगोविन्द शुक्ल के सम्पादकत्व में प्रकाशित हुई थी। पत्रिका में दस पृष्ठ रहते थे। यह साधारण पत्रिका थी। स्थायी साहित्य के प्रकाशन से पत्रिका वंचित थी।

संस्कृतसन्देशः

काठमाण्डू से सन् १९५३ में संस्कृतसन्देश नामक पत्र का प्रकाशन आरम्भ हुआ। यह पत्र संस्कृत सन्देश कार्यालय काठमाण्डू (नेपाल) से प्रकाशित किया जाता था। इसका वार्षिक मूल्य चार रुपये था। यह पत्र लगभग ढाई वर्ष तक प्रकाशित हुआ।

संस्कृत सन्देश श्री योगी नरहरिनाथ और बुद्धिसागर पराजुली के सम्पादकत्व में प्रकाशित किया जाता था।

संस्कृत सन्देश इतिहास प्रधान पत्र था। इसमें प्राचीन शिलालेखों का अधिक प्रकाशन हुआ। कतिपय अंकों में एकमात्र शिलालेख प्रकाशित हुए।

दिव्यज्योतिः

शिमला से सन् १९५६ में दिव्यज्योतिः पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ हुआ। यह पत्रिका दिव्यज्योति कार्यालय आनन्द लाज जाखू शिमला-१ से प्रकाशित हो रही है। इसका वार्षिक मूल्य छः रुपये है।

दिव्यज्योतिः पत्रिका विद्यावाचस्पति आचार्य दिवाकर दत्त शर्मा के सम्पादकत्व में प्रकाशित हो रही है। प्रबन्ध सम्पादक केशव शर्मा शास्त्री हैं।

दिव्यज्योतिः सचित्र और उच्चकोटि की गणनीय पत्रिका है। इसमें प्राचीन और अर्वाचीन सभी विषयों पर कविताओं और निबन्धों का प्रकाशन होता रहता है। पत्रिका की भाषा सरल है। मुद्रण त्रुटिरहित है। पत्रिका के कई विशेषांक प्रकाशित हो चुके हैं[1], जो बहुत ही उपादेय हैं। इसमें अर्वाचीन विषयों का बाहुल्य रहता है। काव्य, नाटक, दूतकाव्य, गीत, कथा, विनोद, आयुर्वेद, इतिहास, समीक्षा तथा अन्य अनेक उपयोगी विषयों से सम्बन्धित रचनाएँ प्रकाशित होती हैं।

संस्कृत के प्रचार, प्रसार और संवर्धन के लिए सम्पादक समन्वयात्मक भावना अपनाकर भारतीय संस्कृति के ज्ञान वृद्धि के लिए तदनुकूल सामग्री प्रकाशित कर रहे हैं। भाषा सरल, सुबोध और परिष्कृत रहती है। संस्कृत के प्रचार में इस पत्रिका का अच्छा स्थान है। पत्रिका से नवीन लेखकों को पर्याप्त प्रोत्साहन मिलता है। प्रत्येक विषय का सम्पादन अतीव सुन्दर ढंग से किया जाता है।

विद्या

बेलगांव से सन् १९५६ में 'विद्या' पत्रिका का प्रकाशन हुआ। यह पत्रिका

---

१. अर्वाचीनसंस्कृतकविपरिचयांक, अभिनवशब्दनिर्माणांक, संस्कृतपत्रलेखनांक, कथानिका विशेषांक।

विद्या कार्यालय, देशपाडे गल्लि १५५८ बेलगांव से प्रकाशित की जाती थी। पत्रिका का वार्षिक मूल्य तीन रुपये था।

श्री पण्डित वरखेडी नरसिंहाचार्य तथा पण्डितशिरोमणि गलगलीरामाचार्य, दोनों प्रकाण्ड विद्वानों के सम्पादकत्व में पत्रिका का प्रकाशन हुआ था।

'विद्या' पत्रिका सत्यध्यान विद्यापीठ की मुखपत्रिका के रूप में प्रकाशित की गई थी। इसमें स्तुतियाँ, अष्टक, मासावतरणिका, विमर्श, तथा माध्वतत्त्व-विषयक निबन्धों का प्रकाशन होता था। उद्बोधन, महात्माओं का चरित्र, पौराणिक कथायें, ऐतिहासिक घटनाएँ आदि भी प्रकाशित किए गए। यह 'कल्याण' हिन्दी पत्र के समान दार्शनिक और धार्मिक पत्रिका थी। पत्रिका में प्रौढ़ निबन्धों का अभाव मिलता है। इसका मुद्रण उच्चकोटि का था। लगभग तीन वर्ष तक पत्रिका प्रकाशित हुई। इसके प्रत्येक अंक के मुख्य पृष्ठ पर परा विद्या का प्रशंसात्मक श्लोक सदा प्रकाशित किया जाता था—

विमुक्तेर्या पद्यां सुमतिजनबोध्यां विदधती
मनोज्ञार्थान् दद्यात्सततममरोद्यानतरुवत्।
अवश्यं संवेद्याखिलविषयहृद्या च नितरां
परा सेयं विद्या जगति निरवद्या विजयते॥

प्रणवपारिजातः

कलकत्ता से सन् १९५८ में प्रणवपारिजातः पत्र का प्रकाशन आरम्भ हुआ। यह पत्र सीताराम वैदिक महाविद्यालय, ७।३ पी० डब्लू० डी० रोड, कलकत्ता-३५ से प्रकाशित किया जाता है। इस पत्र का वार्षिक मूल्य चार रुपये है।

यह पत्र सीतारामदास ओंकार प्रवर्तित तथा केदारनाथ सांख्यतीर्थ और श्रीजीवन्यायतीर्थ तथा महामहोपाध्याय श्री कालीपदतर्काचार्य आदि के सम्पादकत्व में प्रकाशित हो रहा है। श्री रामरंजन इसके प्रकाशक हैं। वास्तव में पत्र का पूरा कार्य-भार रामरंजन पर है। यथार्थ में वही सम्पादक और प्रकाशक दोनों है।

प्रणवपारिजात में गद्य-पद्यात्मक काव्य, अनुवाद, निबन्ध, स्तुतियाँ, समालोचना, वन्दना तथा संस्कृत शिक्षा सम्बधी निबन्धादि प्रकाशित किये जाते हैं। अभिनव साहित्य के प्रकाशन में पत्र का श्रेष्ठ स्थान है। पत्र का मुद्रण शुद्ध और आकर्षक है। इसके द्वितीय पृष्ठ में प्रणव का सदैव रंगीन चित्र रहता है।

दिव्यवाणी

दिव्यवाणी पत्रिका की सूचना मात्र संस्कृत साकेत पत्र में उपलब्ध होती है। तदनुसार—

हमीरपुरमण्डलान्तर्गत मोहदारागोलस्थानात् 'दिव्यवाणी' नाम्नी एका पत्रिका प्रकाश्यते। तद् द्वारा ईश्वरभक्तिविषयकं सतां विदुषां लेखाः प्रकाश्यन्ते। पाठका आस्तिकाः जना अनया पत्रिकया लाभान्विता भवन्तु। प्रकाशकः श्री सूर्यनारायण मिश्रः[1]

गीता

उडिपी से सन् १९६० में गीता पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ हुआ। इसका वार्षिक मूल्य तीन रुपये था। पत्रिका के सम्पादक के० वेंकटराव थे। यह संस्कृत की पत्रिका कन्नड़ लिपि में प्रकाशित हुई थी।

सरस्वतीसौरभम्

बड़ौदा से सन् १९६० में सरस्वतीसौरभम् नामक पत्र का प्रकाशन आरम्भ हुआ। इसका प्रकाशन स्थल द्वारकाधीशमन्दिर नृसिंहवीथी वटपत्तनम् (बड़ौदा) है।

बड़ौदा स्थिति विद्वत्सभा का यह प्रमुख पत्र है। प्रधान सम्पादक जयनारायण रामकृष्ण पाठक और सहकारिसम्पादक श्रीभाई लाल जे० ब्रह्मभट्ट हैं। पत्र में सभा का विवरण और फुटकर रचनाएँ प्रकाशित होती हैं।

देववाणी

मुंगेर (बिहार) से सन् १९६० में देववाणी पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ हुआ। यह पत्रिका देववाणी कार्यालय अवस्थी निवास मुंगेर से प्रकाशित की जाती है। इसका वार्षिक मूल्य पाँच रुपये है।

श्री रूपकान्त शास्त्री और कृपाशंकर अवस्थी सम्पादक मण्डल में हैं। इसमें कविता नाटक और आधुनिक प्रभावों से प्रभावित रचनाओं का प्रकाशन हो रहा है।

गुरुकुलपत्रिका

गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार से अनेक पत्र-पत्रिकायें प्रकाशित हुई। सन् १९६० से गुरुकुलपत्रिका का प्रकाशन हो रहा है। यद्यपि यह पत्रिका सन् १९४८ से हिन्दी भाषा में प्रकाशित हो रही थी परन्तु सन् १९६० से एकमात्र संस्कृत में प्रकाशित होने लगी। यह पत्रिका गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार से प्रकाशित होती है। इसका वार्षिक मूल्य चार रुपये है।

---

१. संस्कृत साकेत, ३९.१२ (१९५९ ई०)

यह पत्रिका धर्मदेव विद्यामार्तण्ड के सम्पादकत्व में प्रकाशित हो रही है। व्यवस्थापक सत्यव्रत विद्यामार्तण्ड हैं। इसमें निबन्धों का प्रकाशन अधिक होता है। दार्शनिक, ऐतिहासिक, वैज्ञानिक और सामाजिक निबन्धों की प्रचुरता पत्रिका में है। इसमें गंभीर और रोचक तथा ज्ञानवर्धक लेख निकलते रहते हैं। पत्रिका गुरुकुलीय है।

जयतु संस्कृतम्

काठमाण्डू नेपाल से सन् १९६० में जयतु संस्कृतम् पत्र का प्रकाशन आरम्भ हुआ। यह पत्र जयतु संस्कृतम् कार्यालय रानी पोखरी, १०।५५८ भोटाहिटी काठमाण्डू नेपाल से प्रकाशित किया जाता है। इसका वार्षिक मूल्य छः रुपये है।

श्री प्रसाद गौतम के प्रधान सम्पादकत्व तथा ठाकुर प्रसाद पराजुली, ईश्वर प्रसाद देवकोटा, वासुदेव त्रिपाठी आदि के सहसम्पादकत्व में पत्र का प्रकाशन हुआ। इसके प्रकाशक केशव दीपक थे। तीसरे अंक से द्वितीय वर्ष तक केशव दीपक सम्पादक हुए। आजकल यह पत्र वासुदेव त्रिपाठी के सम्पादकत्व में प्रकाशित हो रहा है।

जयतु संस्कृतम् यद्यपि मासिक पत्र था तथापि प्रथम वर्ष केवल सात अंक और दूसरे वर्ष केवल पाँच अंक तथा तीसरे वर्ष केवल दो अंक प्रकाशित हुए। नेपाल में संस्कृत का प्रचार और नेपालीय संस्कृत साहित्य का मूल्यांकन करने के लिए पत्र प्रकाशित किया गया था। पत्र में कविता निबन्ध, कथा, अनुवाद तथा नेपालीय संस्कृत विद्वानों का परिचय आदि का प्रकाशन होता है।

पत्र की भाषा सरल है। मुद्रण साधारण है। पत्र के द्वितीय पृष्ठ में निम्नांकित वेदवाक्य प्रकाशित होता है—

मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।
मित्रस्याऽहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे॥
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे॥

साहित्यवाटिका

सन् १९६० में दिल्ली से साहित्यवाटिका पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ हुआ। यह पत्र दिल्ली राज्यसंस्कृत विश्वपरिषत् २३, एफ० कमलानगर, कोल्हापुर रोड, दिल्ली-६ से प्रकाशित की गई थी।

इसके सम्पादक श्री यशोदानन्द भरद्वाज थे। यह समस्या प्रधान पत्रिका है।

प्रतिभा के अनुसार—

'भारतीयलोकसभाधुरीणस्यश्रीमतः अनन्त शयनमय्यङ्गारमहाशयस्य शुभेनसन्देशेनालङ्कृतैषा दिल्लीकविसम्मेलनद्वाराप्रकाशिता (साहित्यवाटिका मासपत्रिका) समस्यापूरणानि पत्रिकायामस्यां प्रधानतया मुद्रितानि दृश्यन्ते तथाहि—

१. कालोऽस्ति नायं शयनस्य मान्याः ।

२. भारतं भारतं नः ।

३. साधवोऽपि समागताः ।

एतास्तिस्त्रः समस्याः कविभिः पूरिताः पत्रिकायामस्यां प्रकटिताः आगामिन्यां पत्रिकायां प्रकाशनार्थम् ।

१. मनीषिणः सन्ति न ते हितैषिणः ।

२. युगरूपानुसारतः ।

३. यायात्कामुपयोतिा सुरगवी ।

एतास्तिस्यः समस्याः प्रदत्ताः ।

अद्यापि सहृदयमनोरंजकाः समस्यापूरणक्षमाः संस्कृतकवयो भारतवर्षेऽस्मिन्नुन्मिषन्तीति यत्सत्यमुल्लसति हृदयम् । मार्कण्डेयपुराणोक्तं कूर्मचक्रं च पत्रिकायामस्यां प्रकाशितम् । अत्र केचन दोषाः समुपलभ्यन्ते । केचिल्लेखाः संयुक्तवर्णपरस्यपूर्ववर्णस्य गुरुत्वं न गणयन्ति । क्वचित्समस्याभागे पूरणभागे च वृत्तान्यत्वं दृश्यते । तथाहि 'कालोऽस्ति नायं शयनस्य मान्याः' एषा समस्या—

'विप्रस्य सर्वमिह किंचिदस्ति
मान्यैरमानि जगतीतलेऽस्मिन् ।
विप्रोऽधुना यात तु दासभावम्
इति पूरिता दृश्यते ।

केचिदपशब्दाश्चोपलभ्यन्ते । सैषा साहित्यवाटिका सचेतसां सहृदयं यथावर्जयेस्तथा चिरमेधताम् ।[1]

इस प्रकार मासिक पत्र-पत्रिकाओं की संख्या विपुल तथा विपय विस्तार भी वैविध्य पूर्ण है। अनेक पत्र-पत्रिकायें वहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं। जिनकी अर्वाचीन संस्कृत साहित्य के संवर्धन में महत्त्वपूर्ण भूमिका है ।

द्वैमासिक पत्र-पत्रिकायें

श्री काशीपत्रिका

यह प्रथम द्वैमासिक पत्रिका है। इसका प्रकाशन १९०१ ई० में वाराणसी

---

१. संस्कृतप्रतिभा [दिल्ली] २.१

से हुआ। उत्तर में अधिकांश पत्र-पत्रिकायें बनारस से ही प्रकाशित हुई हैं।

बहुश्रुतः

सन् १९१४ में वर्धा से बहुश्रुतः नामक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। इसके सम्पादक पण्डित बालचन्द्र शास्त्री विद्यावाचस्पति थे। यह पत्र प्रति ऋतु के प्रारम्भ में किया जाता था। इस पत्र की निरन्तर प्रगति होती रही और यह पत्र दूसरे वर्ष से प्रतिमास की पूर्णिमा को प्रकाशित होने लगा। लगभग दो वर्ष तक पत्र प्रकाशित हुआ।

पत्र का वार्षिक मूल्य डेढ़ रुपया था। मासिक होने पर पत्र का मूल्य तीन रुपये हो गया था। यह पत्र रघुवीर छापाखाना वर्धा से प्रकाशित किया जाता था। इसका प्राप्तिस्थल रामगढ़ शीकर था।

इस पत्र की भाषा सरल और प्रभावोत्पादक थी। इसमें राजनीति सम्बन्धी निबन्ध नहीं प्रकाशित किये जाते थे। इसमें वेद, धर्म, संस्कृति आदि के विषय में निबन्ध तथा स्फुट गीत मिलते है। पत्र में कवियों की जीवनी भी प्रकाशित हुई। पत्र में एकमात्र वाचस्पति के निबन्ध, कविता, समालोचना आदि प्रकाशित होते थे। अन्य लेखकों की रचनाएँ पत्र में नहीं प्रकाशित की जाती थीं। पत्र के अन्तिम पृष्ठ में समाचार प्रकाशित किए जाते थे। पत्र के प्रमुख पृष्ठ पर निम्नांकित श्लोक सदा प्रकाशित किया जाता था।

श्रुतिश्रुतं पुरस्कृत्य बहुश्रुतमथाश्रयन्।
संस्कृतं मानयन्नेष संचकास्ति बहुश्रुतः॥

भारतसुधा

सन् १९३२ ई० में पूना से भारतसुधा नामक पत्रिका प्रकाशन आरम्भ हुआ था। यह पत्रिका भारतसुधा पाठशाला के अधिकारियों द्वारा प्रकाशित की गई थी। भारतसुधा संस्कृतपाठशाला, कसबा १४११ पूना पत्रिका का प्राप्ति स्थान था। इसका वार्षिक मूल्य ढाई रुपये था। महामहोपाध्याय वासुदेव शास्त्री अभ्यंकर, वेदान्तवागीश श्रीधरशास्त्री पाठक, डा० वासुदेव गोपाल परांजपे, प्रो० शंकर वामन दांडेकर, श्री शैलाद्रि गोविन्द कानडे और पुरुषोत्तम गणेश शास्त्री आदि विद्वान् सम्पादक-मण्डल में थे। पहला अंक आदर्श रूप में प्रकाशित किया गया। पत्रिका आर्य संस्कृत मुद्रणालय से मुद्रित होकर सदाशिवपेठ पूना से प्रकाशित की जाती थी।

इस प्रकार द्वैमासिक दो ही पत्र-पत्रिकायें प्रकाशित हुईं। बहुश्रुतः धार्मिक पत्र था और भारतसुधा सामान्य कोटि की पत्रिका थी।

त्रैमासिक पत्र-पत्रिकायें

संस्कृतभारती

वाराणसी से सन् १९१८ में 'संस्कृत-भारती' नामक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। इसका वार्षिक मूल्य पाँच रुपये था।

महामहोपाध्याय कालीप्रसन्न भट्टाचार्य, महामहोपाध्याय लक्ष्मण शास्त्री द्राविड़, रमेशचन्द्र विद्याभूषण और उमाचरण वन्द्योपाध्याय 'संस्कृतभारती' पत्रिका के सम्पादक-मण्डल में थे। पत्रिका के सह सम्पादक रायबहादुर कुमुदिनी कान्त वनर्जी, महामहोपाध्याय डा० सतीशचन्द्र विद्याभूषण और उमाचरण बनर्जी थे।

इस पत्रिका में साहित्य, विज्ञान, दर्शन, आदि विषयों से सम्बन्धित उच्चकोटि के निबन्धों का प्रकाशन होता था। पत्रिका में समालोचनाएँ भी प्रकाशित होती थीं। राजनीति-विषयों से पत्रिका अछूती थी। इसमें संस्कृत के कुछ ग्रन्थों की सरल टीकाएँ भी प्रकाशित हुई। अर्वाचीन संस्कृत साहित्य ग्रन्थ में इसे मासिक माना गया है।[1]

श्रीमन्महाराजसंस्कृतकालेजपत्रिका

महाराज संस्कृत विद्यालय मैसूर से १९२५ ई० में श्रीमन्महाराजसंस्कृत-कालेजपत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। पत्रिका का वार्षिक मूल्य ढ़ाई रुपये था।

यह पत्रिका पण्डितरत्न लक्ष्मीपुर श्रीनिवासाचार्य के सम्पादकत्व में दस वर्ष तक प्रकाशित हुई। इसके पश्चात् विद्यालय के प्राचार्य एस० बी० कृष्ण-मूर्ति के सम्पादकत्व में यह पत्रिका बीस लगभग वर्ष तक प्रकाशित होती रही।

मैसूर के महाराज के आर्थिक अनुदान से पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ था। प्रकाशित साहित्य से प्रतीत होता है कि यह एक उच्चकोटि की पत्रिका थी। इसमें सभी प्रकार के काव्य, नाटक, चम्पू आदि का प्रकाशन हुआ। इसमें अर्वाचीन साहित्य को अधिक महत्त्व दिया जाता था।

महाराज संस्कृत कालेज पत्रिका साहित्यिक थी। इसमें समाचार आदि का प्रकाशन नहीं होता था। पत्रिका की भाषा सरल और काव्यात्मक थी। पत्रिका में अनेक चित्रकाव्यों का भी प्रकाशन हुआ है। सामाजिक और धार्मिक निबन्ध पत्रिका के कुछ अंकों में उपलब्ध होते हैं।

इस पत्रिका के दूसरे और चौथे अंक प्रायः चित्रार्ह पत्र में छपते थे। मुद्रण निर्दोष और नेत्रोत्सवानन्दकारी था।

---

१. अर्वाचीन संस्कृत साहित्य पृ० २८७

संस्कृतपद्यगोष्ठी

कलकत्ता से सन् १६२६ में संस्कृत पद्यगोष्ठी पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। यह पत्रिका फाल्गुन और ज्येष्ठ मास में श्याम बाजार, चौधुरी लेन, कलकत्ता ६।११ से प्रकाशित की गई थी। इस पत्रिका में पद्य गोष्ठी नामक संस्था में आयोजित कवि सम्मेलनों में पठित रचनाओं का प्रकाशन किया जाता था। इस पत्रिका के नियम, आवेदन आदि सभी पद्य में प्रकाशित किए जाते थे। गद्य के लिए पत्रिका में स्थान नहीं था।

इस प्रत्रिका के सम्पादक कालीपदतर्काचार्य और भुवनमोहन सांख्यतीर्थ थे। पत्रिका की नियमावली इस प्रकार थी—

त्रैमासिकी संस्कृतपद्यपत्री मुखोपमा संस्कृतपद्यगोष्ठ्याः।
पद्येन बद्धा निखिला निबन्धा भवेयुरस्या न हि गद्यनद्धाः॥
काव्येषु वृत्तान्यधिकृत्य कृत्यं यद् यद् विचित्रं विदितं कवीनाम्।
तत् सर्वमादृत्य कवित्वपूर्णा कृतिः किलास्याः सुतरामुपास्या॥
पद्यं नवं संस्कृतपद्यगोष्ठ्यां यद्वाचितं स्यात्सकृपैः सुधीरैः।
क्रमेण तत्पत्रमिदं प्रकाशं नेता कवीनां सुखसाधनार्थम्॥
तथा समस्यापरिपूर्तिपद्यं प्रहेलिकानामपि वासमाधिः।
पद्मादिबन्धा बहुचित्रचित्रा यास्यन्ति मोदाय विदां प्रकाशम्॥
ये पद्यगोष्ठ्याः नियता सदस्यास्तेषां प्रदेयं नहि शुल्कमन्यत्।
विशेष एषोऽत्र सदस्यातायाः सार्द्धैकरूप्यं विहितं परेषाम्॥
सदस्यतालाभफलं च शुल्कं सार्द्धैकरूप्यं प्रतिवत्सरार्थम्।
विद्यार्थिनां द्वादशकं पणानां सम्प्रेषणं स्याच्चतुराणकंच॥
प्रेष्यं व्यवस्थालय एव पत्रं यत् पद्यगोष्ठीविषयेण युक्तम्।
निबन्धरूप्यादि समग्रमेव सम्पादकानामभिधानपूर्वम्॥
अतः परं ये नियमे विशेषस्तेषां प्रकाशः समये विधेयः।
पद्यैकसारा खलु पद्यगोष्ठी पद्यप्रियाणां चतते प्रसादम्॥
हा हन्त देवीसुहृदां समाजे पद्यप्रभावः सुतरां विलुप्तः।
ततोऽद्यपद्योन्नतिसाधनार्थ प्रतिष्ठिता संस्कृतपद्यगोष्ठी॥
सम्मेलने संस्कृतपद्यगोष्ठ्याः पद्यावलीनां भवति प्रचारः।
तथा समस्यापरिपूरणानां प्रहेलिकानामपि सुप्रकाशः॥
अन्योन्ससंवादविधेः प्रवृत्तिः पद्येन सिद्धा किल पद्यगोष्ठ्याः।
पद्यादिबन्धे निपुणा स्थितिर्या प्राधान्यतः साप्यनुशीलितास्ते॥

श्रीः

सन् १९३२ में श्रीनगर काश्मीर से श्रीः पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ हुआ। यह पत्रिका लगभग बारह वर्ष तक प्रकाशित हुई। पत्रिका का वार्षिक मूल्य एक रुपया था। पत्रिका के प्रत्येक अंक में कुल बत्तीस पृष्ठ होते थे।

१९३२ ई० में श्री नगर में संस्कृत परिषद् की स्थापना हुई। यह परिषत् की पत्रिका थी। इसमें परिषद् का विवरण तथा अन्य विषय भी प्रकाशित होते थे। यह पत्रिका चैत्र, आषाढ़, आश्विन और पौष मास में प्रकाशित होती थी।

इस पत्रिका के सम्पादक पण्डित नित्यानन्द शास्त्री और उपसम्पादक पण्डित कुलभूषण थे। श्री संस्कृत परिषद् के संस्थापक नित्यानन्द शास्त्री थे। परिषद् का उद्देश्य संस्कृत विद्या की वृद्धि करना और आर्य संस्कृति की रक्षा करना था। दोनों का परिपाक श्रीः पत्रिका में सफलता पूर्वक सम्पन्न हुआ। सम्पादक के अनुसार—

यद्यपि गूढपाण्डित्याभावात् श्रियः पृष्ठेषु नानाविधाः साहित्यादर्शनेतिहासविषयकाः लेखाः बाहुल्येन प्रकाशनेऽक्षमा .वयं तथापि यथाशक्तिं यथासम्भवं वेदस्मृतिपुराणेतिहासरूपा लेखाः प्रकाशयिष्यन्ते।[1]

संस्कृतपद्यवाणी

सन् १९३४ में २।१ रामकृष्णलेन कलकत्ता से संस्कृतपद्यवाणी पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। यह पत्रिका तीन वर्ष तक प्रकाशित हुई। पत्रिका का वार्षिक मूल्य डेढ़ रुपये तथा परिपोषकों के लिए पाँच रुपये था।

यह पत्रिका महामहोपाध्याय कालीपदतर्काचार्य के सम्पादकत्व में प्रकाशित हुई थी। सहसम्पादक गांगेय नरोत्तमशास्त्री और रामकृष्ण चक्रवर्ती थे।

इस पत्रिका में पद्यात्मक प्रबन्धों का अधिक प्रकाशन हुआ। कलकत्ता से कुछ समय पूर्व 'संस्कृत पद्यगोष्ठी' पत्रिका प्रकाशित हुई थी। इस पत्रिका का पहले वर्ष ही प्रकाशन स्थगित हो गया था। पुनः कालीपदतर्काचार्य ने संस्कृतपद्यवाणी का प्रकाशन प्रारम्भ किया।

'संस्कृतपद्यवाणी' पत्रिका में अर्वाचीन साहित्य प्रकाशित किया जाता था। चित्रबन्ध, प्रहेलिका, बिन्दुमती आदि विविध प्रकार के काव्य-श्लोकों की संख्या पत्रिका में प्रचुर है। पत्रिका में समस्याओं तथा समस्या-पूरक श्लोकों का भी प्रकाशन होता था। यह साहित्यिक पत्रिका थी। किसी भी प्रकार के समाचारों का प्रकाशन इसमें नहीं होता था।

कालिन्दी

सन् १९३६ ई० में आगरा से कालिन्दी पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ

---

१. श्रीः १.१

हुआ। यह पत्रिका केवल एक वर्ष तक प्रकाशित हुई। पत्रिका के स्थगित होने का कारण अर्थाभाव था। इस पत्रिका का वार्षिक मूल्य तीन रुपया तथा एक प्रति का पाँच आना था। पत्रिका आर्यसमाजभवन, सुघ्नपत्तनम् (आगरा) से प्रकाशित की गई थी।

यह पत्रिका हरिदत्त शास्त्री के सम्पादकत्व में प्रकाशित हुई थी। सहसम्पादक ज्वालाप्रसाद शास्त्री और घनश्याम गोस्वामी थे।

यह आर्य समाज-संस्कृतविद्यालय आगरा की पत्रिका थी। पत्रिका में आर्यसमाज सम्बन्धी निबन्धादि मिलते हैं। पत्रिका में धर्म, दर्शन, विज्ञान विषयक निबन्धों का प्रकाशन हुआ। इसमें विनोदात्मक सामग्री भी उपलब्ध होती है। संस्कृत विद्यालयों की सूचनाओं का भी प्रकाशन होता था। पत्रिका की भाषा काव्यात्मक थी। पत्रिका में 'संस्कृत चन्द्रिका' के समान मासावतरणिका भी प्रकाशित हुई है। पत्रिका के द्वितीय पृष्ठ पर यह श्लोक प्रकाशित हुआ करता था—

'काव्यावर्तविवर्तिता सुमनसां नेत्रोत्पला ह्लादिनी
तत्तच्छास्त्रनिगूढवाच्यनदिका प्रस्फोरसच्चातुरी।
विद्वद्वृन्दमनोज्ञचारुचरितेन्दिन्दी वरा घूर्णिता
कालिन्दी प्रवहत्यजस्रममला सुघ्नैकनिघ्नाघना॥

भारतीविद्या

सन् १९३७ भारतीय विद्या भवन बम्बई से भारती विद्या पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ हुआ। यह शोधनिबन्ध-प्रधान पत्रिका है। यथा—

भारती विद्या नाम्नी गवेषणाप्रधाना पत्रिका प्रकाश्यते। भवनेन प्रकाशितायां 'भारतीविद्या' नाम्नी गवेषणाप्रधानपत्रिकायां भारतीयविद्याविषयेषु विद्वत्तापूर्णरचना अतिरिच्य संस्कृतहस्तलिखितग्रन्थानां समालोचनात्मकानि सम्पादनान्यपि प्रकाश्यन्ते।'[1]

शारदा

सन् १९३८ में काशिकराजकीय महाविद्यालयच्छात्र परिषद् की स्थापना हुई। इसी परिषद् से शारदा नामक हस्तलिखित पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ था। यथा—

अथैका शारदा नाम्नी हस्तलिखिताऽन्तरङ्गबहिरंगसुभगा त्रैमासिकी पत्रिका विद्यार्थिभिः सम्पाद्यते।[2]

---

1. Bhartiya Vidya Bhavan Bulletin N. 82.
2. सारस्वती सुषमा, १.१ पृ० २२०

श्रीशंकरगुरुकुलम्

सन् १९३९ में श्रीरङ्गम् से श्रीशंकरगुरुकुलम् नामक पत्र का प्रकाशन आरम्भ हुआ। यह पत्र श्रीशंकरगुरुकुल कार्यालय श्रीरंगम् से प्रकाशित किया जाता था। इसके सम्पादक शास्त्रप्रसारभूषण टी०के० बालसुब्रमण्यम् और सह-सम्पादक विद्यावाचस्पति पी० पी सुब्रमण्यम् शास्त्री थे। इस पत्र का वार्षिक मूल्य छः रुपये था। यह पत्र पाँच वर्ष तक प्रकाशित हुआ।

अप्रकाशित संस्कृत वाङ्मय को प्रकाशित करने के लिए इस पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ था। इस पत्र के छः विभाग थे। प्रथम भाग में वेदान्त, द्वितीय भाग में मीमांसा, तृतीय भाग में काव्य, चतुर्थ भाग में चम्पू, पाँचवे भाग में नाटक और छठे भाग में अलंकार विषयक सामग्री प्रकाशित की जाती थी।

पत्र के प्रारम्भ में ऐसी आशा अभिव्यक्त की गई थी कि आगे चलकर यह पत्र द्वैमासिक और फिर मासिक हो जायगा। परन्तु यह आशा पूरी नहीं हुई। पत्रिका में अनेक ग्रन्थों की पद्यबद्ध टीकाएँ भी प्रकाशित हुई। शोध-निबन्धों का प्रकाशन पत्रिका में हुआ। अनेक उच्चकोटि के ग्रन्थों का प्रकाशन इस पत्रिका में हुआ है।

त्रैमासिकी संस्कृतपत्रिका

श्रीः पत्रिका की सूचनानुसार सन् १९४० के लगभग गोरखपुर से त्रैमासिकी संस्कृतपत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ था और वह शीघ्र ही अर्थाभाव के कारण बन्द हो गई।[1]

सारस्वती सुषमा

सन् १९४२ में वाराणसेय संस्कृत महाविद्यालय से सारस्वती सुषमा पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। इस पत्रिका के प्रकाशन के पूर्व सरस्वतीभवनानुशीलनम् पत्रिका प्रकाशित हुई थी। इस पत्रिका का उद्देश्य शोध-प्रधान निबन्धों को प्रकाशित करना था। सारस्वती सुषमा का प्रकाशन मौलिक अनुसन्धान प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करने के किया गया था। सारस्वती सुषमा के कुछ अंकों में अर्वाचीन कविताएँ और कहानियाँ भी प्रकाशित हुई हैं।

सारस्वती सुषमा पत्रिका के पूर्व यद्यपि सहृदया, मित्रगोष्ठी, आर्यप्रभा, अमरभारती, शारदा आदि पत्र-पत्रिकाओं में शोध-प्रधान निबन्ध उपलब्ध होते हैं, परन्तु उनका यह प्रमुख उद्देश्य नहीं था।

---

१. श्रीः ८. १-२

सारस्वती सुषमा पत्रिका सरस्वती भवन से प्रकाशित की जाती है। इसका वार्षिक मूल्य पहले दो रुपये और इस समय छः रुपये है। पहले तीन वर्ष तक यह पत्रिका त्रैमासिकी होते हुए भी वार्षिक रूप से प्रकाशित की गई थी। इसके पश्चात् पत्रिका का प्रकाशन त्रैमासिक रूप से प्रारम्भ हुआ। कभी कभी समय पर अंक नहीं प्रकाशित हो पाते अथवा कई अंकों के नाम पर एक अंक प्रकाशित कर दिया जाता है।

'सारस्वती सुषमा' डा० मंगलदेव शास्त्री के सम्पादकत्व में आरम्भ के तीन वर्षो तक प्रकाशित हुई। उस समय उपसम्पादक महामहोपाध्याय नारायण शास्त्री खिस्ते और अनन्त शास्त्री फड़के थे। चतुर्थ वर्ष से पंचम वर्ष के तृतीय अंक तक सम्पादक महामहोपाध्याय नारायण शास्त्री खिस्ते हुए। इस समय उपसम्पादक केदारनाथ शर्मा सारस्वत, जगन्नाथ उपाध्याय, अलख निरंजन पाण्डेय, वटुकनाथ शास्त्री खिस्ते, व्रजवल्लभ द्विवेदी, रघुनाथ पाण्डेय आदि उपलब्ध होते हैं। पंचम वर्ष के अन्तिम अंक से अष्टम वर्ष के प्रथम अंक तक को० अ० सुब्रह्मण्य सम्पादक रहे। इसके पश्चात् पत्रिका कुबेरनाथ शुक्ल के सम्पादकत्व में बारहवें वर्ष तक प्रकाशित हुई। श्री क्षेत्रेश चन्द्र चट्टोपाध्याय के सम्पादकत्व में भी पत्रिका का प्रकाशन हुआ है। इस प्रकार अनेक सम्पादकों के निरन्तर परिवर्तन से पत्रिका की प्रगति भी सदैव होती रही।

सारस्वती सुषमा में स्वतन्त्रता के पश्चात् राष्ट्रीय भावना से परिपूर्ण कविताएँ भी प्रकाशित हुई। वाराणसी के मूर्धन्य विद्वानों के निबन्धों से पत्रिका भरपूर रहती है। महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज, डा० मंगलदेव शास्त्री, महामहोपाध्याय गिरिधरशर्मा, आचार्य नरेन्द्र देव, महादेव शास्त्री, क्षमादेवी राव, महामहोपाध्याय नारायणशास्त्री खिस्ते आदि विद्वानों के निबन्ध पत्रिका में विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

पत्रिका कई भागों में विभाजित रहती है। शास्त्र विभाग, विज्ञान-विभाग, राजनीति विभाग, शब्दविज्ञान, विभाग, समालोचना विभाग और परिचय विभागादि विभागों में विभाग के नामानुसार निबन्ध प्रकाशित किए जाते हैं। यह एक उच्चकोटि की पत्रिका है जिसने उच्चतर स्तर स्थापित करने में सफलता प्राप्त की है।

इस में अत्यधिक गम्भीर, पाण्डित्यपूर्ण, तर्कसम्मत और शोध निबन्ध मिलते हैं। पत्रिका की यह कामना पूर्ण हुई—

विबुधगणैरभिनन्द्या नन्दनशोभातिशायिनी शुभदा।
लोकोत्तरप्रकाशा विभातु सारस्वती सुषमा॥

विद्यालयपत्रिका

सन् १९५१ में माथुर चतुर्वेदसंस्कृत विद्यालय मथुरा से विद्यालयपत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। पत्रिका का वार्षिक मूल्य एक रुपया है। यह पत्रिका पण्डित पुरुषोत्तम शर्मा चतुर्वेदी के सम्पादक में प्रकाशित होती है। इसके प्रकाशन में कोई क्रम नहीं है। यह विद्यालय के प्राध्यापक और विद्यार्थियों का पत्रिका है जो अनियतकालिक है।

श्रीरविवर्म संस्कृतग्रन्थावली

१९५३ ई० त्रिपुनिथुरा से श्रीरविवर्मसंस्कृतग्रन्थावली पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। यह पत्रिका त्रिपुन्तुरा संस्कृत विद्यालय समिति की पत्रिका है। इसका वार्षिक मूल्य पाँच रुपये तथा एक प्रति का मूल्य डेढ़ रुपये है।

यह पत्रिका श्री सि० के० रामन् नम्बियार के सम्पादकत्व में प्रकाशित हुई। पत्रिका के उपसम्पादक के० अच्युतपोतुवाल थे। इस पत्रिका में अप्रकाशित ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ है। किन्हीं-किन्हीं अंकों में संस्कृत भाषा की वर्तमान स्थिति पर भी प्रकाश डाला गया है। इसमें प्रायः सौ पृष्ठ रहते हैं।

संस्कृतप्रभा

आचार्य द्विजेन्द्रनाथ शास्त्री के सम्पादकत्व में १९६० में संस्कृतप्रभा पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। यह पत्रिका भारती प्रतिष्ठान्, ३४, आनन्दपुरी मेरठ से प्रकाशित की गई थी। यह भारती प्रतिष्ठान की अनुसन्धान प्रधान पत्रिका थी। भारती प्रतिष्ठान की स्थापना सन् १९५१ में हुई थी। इस पत्रिका का वार्षिक मूल्य पाँच रुपये था। पत्रिका का प्रकाशन प्रथम वर्ष में ही स्थगित हो गया। इसके प्रमुख पृष्ठ पर निम्नांकित श्लोक मिलता है—

यत्प्रभापाटलोद्भाषा भासतेऽद्यापि भारतम्।
दिव्या सा सर्वसंसारे भासतां संस्कृतप्रभा ॥

गैर्वाणी

सन् १९६० में संस्कृत भाषा प्रचारिणी सभा चित्तूर (आ० प्र०) से गैर्वाणी पत्रिका का प्रकाशन किया गया। इस पत्रिका का वार्षिक मूल्य डेढ़ रुपये था।

यह पत्रिका एम० वरदराजन् पन्तुल के सम्पादकत्व में प्रकाशित की जा रही थी। यह सचित्र पत्रिका थी। इसमें सभा का विवरण, सुभाषित, आन्ध्र-संस्कृत परीक्षा की सूचना, भाषण आदि विषय प्रकाशित किए जाते थे। संस्कृत भाषा प्रचारिणी सभा की स्थापना सन् १९४५ में हुई थी पत्रिका की भाषा सरल और मुद्रण त्रुटिरहित था।

सागरिका

सन् १९६२ में सागर (म० प्र०) से सागरिका नामक एक उच्चकोटि की पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ हुआ। यह प्रारम्भ में पाण्मासिकी थी, परन्तु दूसरे वर्ष से त्रैमासिकी हो गई। इसका वार्षिक मूल्य दस रुपये है। इसके प्रत्येक अंक में लगभग सौ पृष्ठ रहते हैं तथा यह पत्रिका 'सागरिका समिति' सागर विश्वविद्यालय, सागर (म०प्र०) से प्रकाशित की जाती है। पत्रिका के अंक क्रमशः जुलाई, अक्टूबर, जनवरी और एप्रिल मास में निकलते हैं।

'सागरिका' पत्रिका के सम्पादक प्रो० राम जी उपाध्याय, एम० ए० डी० लिट्०, सागर विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग अध्यक्ष हैं। इस पत्रिका में युगानुरूप साहित्य का प्रकाशन हो रहा है। सम्पादकीय स्तम्भों में संस्कृत भाषा, संस्कृत शिक्षा आदि विषयों पर तर्कसंगत और प्रौढ़ निबन्ध मिलते हैं। पत्रिका के सम्पादक महान् विचारक और लेखक हैं। यह इस समय की सर्वश्रेष्ठ शोध प्रधान पत्रिका है जो सतत प्रकाशित हो रही है। इसका समस्त श्रेय सम्पादक को ही है।

सागरिका सागर के समान नितनूतन, गम्भीर और शोध निबन्धों के लिए विशेष प्रसिद्ध है। इसमें इस प्रकार के निबन्धों के अतिरिक्त संस्कृत के मनीषियों की जीवनी, गीत और रूपकों का भी यदा कदा प्रकाशन होता है। इस समय प्रकाशित होने वाली पत्र-पत्रिकाओं में सागरिका को उच्च स्थान प्राप्त है। पत्रिका में पुस्तक समालोचना का स्तम्भ भी है। इस पत्रिका का मुद्रण त्रुटि-रहित है। पत्रिका निरन्तर प्रगति कर रही है।

भारती

तिरुव्यारु (मद्रास) से किसी समय भारती पत्रिका का प्रकाशन हुआ था। पत्रिका की प्रतियाँ अनुपलब्ध हैं।

इस समय प्रकाशित होने वाली पत्र-पत्रिकाओं में **विश्वसंस्कृतं** (होशियार-पुर), **संवित्** (बम्बई) **संगमिनी** (प्रयाग), **गुंजारवः** (अहमदनगर) **पाटलश्रीः** (पटना), **मधुमती** (उदयपुर) आदि प्रधान हैं। विद्यालयों से प्रकाशित **श्री-कामेश्वरसिंहसंस्कृतविश्वविद्यालयपत्रिका** (दरभंगा) प्रमुख है।

विश्वसंस्कृतं शोध प्रधान पत्र है। विश्वबन्धु के सम्पादकत्व में पत्र की प्रगति विशेष उल्लेखनीय है। **संवित्** का प्रकाशन सन् १९६५ में हुआ। इसके सम्पादक जयन्त कृष्ण दवे हैं। इसमें विविध प्रकार की सामग्री प्रकाशित हो रही है। **संगमिनी** के सम्पादक प्रभात शास्त्री हैं। उनके अनुसार 'इयं

सगमिनी निःस्वार्थसेवायाः नामान्तरं, है। इसमें कतिपय पुस्तकें भी प्रकाशित हुई हैं। संस्कृत शोध चर्चा भी रहती है। **गुंजारवः** व० त्र्यं० झाम्वरे के सम्पादकत्व में प्रकाशित हो रहा है। **पाटलश्रीः** महत्त्वपूर्ण पत्रिका हैं। इसमें साहित्यिक, धार्मिक आदि विषयों से सम्बन्धित सुन्दर और शोध प्रधान निवन्ध प्रकाशित होते हैं।

ऋतम्भरम् त्रैमासिक पत्र का प्रकाशन वृहद् गुजरात संस्कृत परिषद् अहमदाबाद से हो रहा है। **सनातनशास्त्रम्** कलकत्ता से प्रकाशित धार्मिक पत्र है। जवलपुर म० प्र० से प्रकाशित **हितकारिणी** सन् १९६४ से प्रकाशित हो रही है। **मधुमती** का केवल एक ही अंक प्रकाशित हुआ। इसके सम्पादक प्रसिद्ध लेखक गणेशराम शर्मा थे। निःस्वार्थ सेवापरायण गणेशराम विद्याभूषण के अनेक सुष्ठु लेख संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं में मिलते हैं। **अमृतलता** पारडी (सूरत) से प्रकाशित श्रेष्ठ पत्रिका है। आगरा की **संस्कृतस्रोतस्विनी** भी अच्छी पत्रिका है। **मालविका** भोपाल से प्रकाशित हो रही है।

उपर्युक्त सभी त्रैमासिक पत्र पत्रिकाओं में संस्कृतभारती, श्रीमन्महाराजकालेजपत्रिका, श्रीः, संस्कृतपद्यवाणी, सारस्वती सुषमा और सागरिका श्रेष्ठ पत्र-पत्रिकायें हैं। अन्तिम दोनों पत्रिकाओं का स्तर ऊँचा है। दोनों में उच्च कोटि के भारतीय विद्वानों के लेखों का प्रकाशन हो रहा है।

चतुर्मासिक पत्रिकायें

केरलग्रन्थमाला

मित्रगोष्ठी पत्रिका के अनुसार १९०६ ई० में केरल ग्रन्थमाला नामक पत्रिका का प्रकाशन हुआ था। इसकी सूचना इस प्रकार थी—

'केरलग्रन्थमाला चातुर्मासिकी संस्कृतपत्रिकायाः प्रकाशनं तत्कार्याध्यक्षेण दक्षिणमालावार कोट्टकालनगरतः भवति। केरलग्रन्थमालायाः सम्पादकः केरलेषुः कालीकूटनगरे सुविश्रुतः जेमोरिण वंशीयः। तेनास्यां पत्रिकायां प्राचीनानां कवीनां संस्कृतसाहित्याभिक्रमेण प्रकाशयितुमुपक्रान्तानि'[1]

पत्रिका का वार्षिक मूल्य तीन रुपये और प्रत्येक खण्ड का एक रुपया था। इस के प्रत्येक अंक में लगभग चौंसठ पृष्ठों में केवल केरलीय संस्कृत वाङ्मय का प्रकाशन होता था।

श्रीचित्रा

१९३० ई० में श्रीचित्रा नामक पत्रिका का प्रकाशन श्री महामहोपाध्याय एस० नीलकण्ठ शास्त्री के सम्पादकत्व में त्रावणकोर विश्व विद्यालय के

१. मित्रगोष्ठी ३.१०

संस्कृत विद्यालय से हुआ । श्री एन० गोपाल पिल्लई अध्यक्ष और पत्रिका के प्रबन्धक थे। 'कर्मणि व्यज्यते प्रज्ञा' को ध्यान में रख कर अर्वाचीन साहित्य को प्रोत्साहित किया गया। अनन्तशयनस्थ संस्कृतकलाशाला त्रिवेन्द्रम्, पत्रिका का प्रकाशन स्थान और प्राप्तिस्थल था । इसे त्रिवेन्द्रम् के महाराजा से कुछ अनुदान मिल जाता था । यह पत्रिका उच्चकोटि की थी। इसके प्रत्येक अंक में लगभग छत्तीस पृष्ठों में विविध वाङ्मय प्रकाशित होता था। सात वर्ष तक पत्रिका का प्रकाशन चलता रहा।

केरलग्रन्थमाला और श्रीचित्रा दोनों उत्कृष्ट संस्कृत की साहित्यिक पत्रिकायें थीं।

षाण्मासिक पत्र-पत्रिकायें

संस्कृतप्रतिभा

अप्रैल सन् १९५९ को साहित्यअकादमी नयी दिल्ली से संस्कृत प्रतिभा पत्रिका प्रकाशित हुई। इसके सम्पादक डा० राघवन् हैं । प्रत्येक अंक में लगभग सौ पृष्ठ रहते हैं। इस पत्रिका का वार्षिक मूल्य चार रुपये और एक अंक का दो रुपये है। प्रकाशन स्थल साहित्य कार्यदर्शी ७३, थियेटर् कम्यूनिकेषन्स् भवन, कन्नाट् सर्कस् देहली है तथा रचना भेजने का स्थान संस्कृत विभाग मद्रास विश्वविद्यालय है। यह विशुद्ध संस्कृत की पत्रिका है। प्रकाशित प्रबन्धों के लेखकों का परिचय अन्तिम पृष्ठों में रहता है। पत्रिका कई भागों में विभाजित है ।प्रथम भाग में सम्पादकीय रहता है। दूसरे भाग में में अर्वाचीन खण्डकाव्य प्रकाशित किए जाते हैं । तीसरे भाग में गद्य-प्रबन्ध तथा चतुर्थ भाग में रूपकों का प्रकाशन होता है। पाँचवें भाग में अनुवाद प्रकाशित किए जाते हैं। पत्रिका में संस्कृत भाषा में रचित अनेक अर्वाचीन ग्रन्थों का प्रकाशन हो रहा है। इसे अर्वाचीन-ग्रन्थ-प्रकाशन पत्रिका कहा जा सकता है। इसमें राघवन् महोदय के कुछ श्रेष्ठ निबन्ध प्रकाशित हुए, जिनमें उनकी मौलिकता और अनुसन्धानप्रतिभा का परिचय मिलता है। पत्रिका में अनुवादों को प्रधान स्थान दिया जाता है। तदनुसार—

आधुनिकव्यवहारभाषासु येऽथ प्रमुखाः कवयः भारते विद्यन्ते, तेषां भाषा साहित्यानां संस्कृतेऽनुवादः अप्यत्यन्तमभिनन्दनीयो व्यवसायः। एतच्च कार्यं संस्कृतप्रतिभायाः मुख्येपूद्देश्येषु अन्यतमं स्वीकृतम् ।[1]

---

१. संस्कृतप्रतिभा १.२ पृ० २६२

मागधम्

सन् १९६७ से आरा बिहार से मागधम् पत्र का प्रकाशन हो रहा है। यह पत्र नेमिचन्द्र शास्त्री के सम्पादकत्व में प्रकाशित हुआ। इसमें अर्वाचीन कवियों की कृतियों का प्रकाशन हुआ है। महाकवि कालिदास से सम्बन्धित विशेषाङ्क महत्त्वपूर्ण है।

लखनऊ से प्रकाशित **ऋतम्** तथा वाराणसी का **पुराणम्** भी षाण्मासिक पत्र हैं, परन्तु ऋतम् में हिन्दी तथा पुराणम् में आंग्लभाषा में लिखित निबन्धों का भी प्रकाशन होता है। **विद्यापीठपत्रिका** (प्रयाग), **इतिहासचयनिका** (लखनऊ) आदि इसी प्रकार की पत्रिकायें हैं।

राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान दिल्ली से प्रकाशित **संस्कृतविमर्शः** अच्छा शोध पत्र है। इसका मुद्रण तथा प्रकाशन आदि सुन्दर रहता है।

वार्षिक पत्र-पत्रिकायें

अमृतवाणी

सन् १९४१ में बंगलौर से अमृतवाणी नामक पत्रिका के प्रकाशन का आरम्भ विद्याभाष्कर विद्वान् एम्० रामकृष्ण भट्ट के सम्पादकत्व में हुआ। यह पत्रिका सेन्टजोसेफ कालेज की संस्कृत सभा से प्रकाशित हुई थी और लगभग तेरह वर्ष तक प्रकाशित हुई। पत्रिका उच्चकोटि की थी। 'संस्कृतं नाम दैवी वाक्' को प्रमाणित करने के लिए तदनुकूल सामग्री इसमें प्रकाशित हुई। इस पत्रिका में अर्वाचीन संस्कृत साहित्य प्रकाशित हुआ है। यह साहित्यिक पत्रिका थी और वैयक्तिक रुचि तथा व्यय से प्रकाशित की जाती थी। इसमें सौ से भी अधिक पृष्ठ रहते थे। पत्रिका का प्रचार उत्तर भारत में विशेष नहीं था। दक्षिण भारत में यह पत्रिका विद्वानों द्वारा अत्यधिक सम्मानित थी। इसमें उच्चकोटि की सामग्री प्रकाशित की जाती थी। वार्षिक पत्रिकाओं के लिए लेखकों का अभाव नहीं रहता। वर्ष भर में उच्चकोटि की सामग्री संकलित कर ली जाती है। पत्रिका में समकालीन महत्त्व की सामग्री भी मिलती है। **स्वातन्त्र्यज्योतिः** और **गान्धिसप्ताहः** ऐसी ही महत्त्वपूर्ण रचनायें हैं।

तरङ्गिणी

सन् १९५८ में उस्मानिया विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के अध्यक्ष डा० आर्येन्द्र शर्मा के प्रधान सम्पादकत्व में तरंगिणी पत्रिका प्रकाशित हुई। पत्रिका में उसी विश्वविद्यालय के प्राध्यापक और विद्यार्थियों की रचनाएँ

प्रकाशित की जाती हैं। डा० आर्येन्द्र शर्मा तथा डा० डी० वेंकटावधानी के निबन्ध शोध-परक हैं। इसमें हास्य और व्यंग्य प्रधान कविताओं का भी प्रकाशन हुआ। कवियों के समय के विषय में भी पत्रिका में प्रकाश डाला गया है। इसकी भाषा सरल है। इस पत्रिका के मुख पृष्ठ पर अजन्ता आदि के प्राचीन चित्रों की अनुकृति दी जाती है।

संस्कृतरङ्गः

डा० वे० राघवन् के सम्पादकत्व में संस्कृतरंगः पत्र सन् १९५८ से प्रकाशित हो रहा है। इसमें डा० राघवन् के नाटक आदि प्रकाशित हुए। डा० कुंजुन्नी राजा, सी० एस्० सुन्दरम् आदि उच्चकोटि के इसके लेखक हैं।

ज्ञानवर्धिनी

१९५९ ई० में लखनऊ विश्वविद्यालय की ज्ञानवर्धिनी सभा से डा० सत्यव्रत सिंह के सम्पादकत्व में ज्ञानवर्धिनी पत्रिका प्रकाशित हुई। इसमें विश्वविद्यालय के छात्रों की छोटी-छोटी रचनायें प्रकाशित हुईं। सहसम्पादकत्व का कार्य शोधच्छात्र और छात्रों द्वारा सम्पन्न हुआ है। डा० सत्यव्रत सिंह, डा० शिवशेखर, डा० वीणापाणि पाण्डे, डा० वाजपेयी तथा अन्य निबन्धकारों के सामान्य निबन्ध प्रकाशित हुए। पत्रिका का क्षेत्र सीमित था, क्योंकि एकमात्र उसी विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों के निबन्धादि प्रकाशित हुए तथा शायद इसका एक ही अंक निकला।

सुरभारती

धन के अभाव के कारण सन् १९५९ में काशी हिन्दू विश्वविद्यालयीय संस्कृतमहाविद्यालय की मुखपत्रिका के रूप में हस्तलिखित सुरभारती पत्रिका का प्रकाशन हुआ। सम्पादक प्रधानाचार्य विश्वनाथ शास्त्री थे। रेखाचित्र से यह पत्रिका परिपूर्ण थी। इसमें प्राचीन भारतीय विद्याओं के सम्बन्ध में लघु-निबन्ध मिलते हैं। दो सौ पृष्ठों की यह पत्रिका है और संस्कृतमहाविद्यालय के प्राध्यापकों के प्रौढ़ निबन्ध उपलब्ध होते हैं। पत्रिका की केवल पाँच प्रतियाँ निकलती थीं। यह कार्य जहाँ एक ओर प्रशंसनीय है, वहीं दूसरी ओर खेद उत्पन्न करता है कि एक वार्षिक संस्कृत पत्रिका का मुद्रण धनाभाव के कारण असंभव है।

मेधा

सन् १९६१ में रायपुर (म० प्र०) से मेधा नामक पत्रिका का प्रकाशन हुआ। यह राजकीय दूधाधारी संस्कृत विद्यालय से प्रकाशित की जाती है।

पत्रिका में विद्यालय के प्राध्यापकों के निबन्धों का प्रकाशन होता है। पत्रिका के सम्पादक विद्यालय के प्राचार्य रहते है। एक तो वार्षिक पत्रिका और दूसरे केवल एक निबन्ध का प्रकाशन भी हुआ है। काव्यतत्त्वमर्मज्ञ डा० रेवाप्रसाद द्विवेदी का 'भट्टहेमाद्रेःरघुवंशदर्पणः' निबन्ध लगभग सैंतीस पृष्ठों का प्रकाशित हुआ, जिसका अक्षुण्ण महत्त्व है।

सुरभारती

सन् १९६२ में 'सुरभारती' पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। यह पत्रिका वटोदर संस्कृत महाविद्यालय (बड़ौदा) की मुख पत्रिका है। इसका प्रकाशन स्थल 'वटोदरसंस्कृत महाविद्यालय मांडवी बेंकरोड, बटोदर' है। यह पचास पृष्ठों की पत्रिका है। इसमें उसी विद्यालय के अध्यापक और विद्यार्थियों के निवन्ध मिलते हैं। मुद्रण कला अच्छी है।

विद्यालयों से प्रकाशित वार्षिक पत्रिकाओं में **अध्ययनमाला** तथा **शिक्षा-ज्योतिः** (श्रीलालवहादुरशास्त्रिकेन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, दिल्ली) **प्रतिभा** तथा **प्राची** (संस्कृतविश्वविद्यालय, वाराणसी), **चन्द्रिका** (श्रीमहाराजसंस्कृतकालेज मैसूर) आदि प्रधान पत्र-पत्रिकायें हैं। कतिपय अनियतकालिकों में **साम्मनस्यम्** (अहमदाबाद) और **प्रज्ञालोकः** (बेंगलूर) प्रधान हैं।

बीसवीं शताब्दी में अनेक वार्षिक पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ है, जिनमें 'अमृतवाणी' प्रमुख है। सभी पत्रिकायें प्रायः विश्वविद्यालयों और संस्कृत विद्यालयों से प्रकाशित की गई हैं। अमृतवाणी पत्रिका का क्षेत्र व्यापक था, उसमें सम्पूर्ण भारत के विद्वानों की रचनायें उपलब्ध होती हैं। अन्य पत्रिकायें सीमित थीं।

बीसवीं शती की इन समस्त पत्र-पत्रिकाओं में स्वातन्त्र्योत्तर काल और स्वतन्त्रता के बाद के काल में अनेक अन्तर परिलक्षित होते हैं। स्वतंत्रता के पूर्व संस्कृत में बहुत कम ऐसी पत्र-पत्रिकायें मिलती हैं, जिनका स्वर प्रखर और तीव्र रहा है। सूनृतवादिनी, संस्कृतसाकेत आदि कुछ अवश्य पत्र-पत्रिकायें थीं, जो राष्ट्रीय भावना को मुखरित कर रही थीं परन्तु स्वतन्त्रता के पश्चात् प्रायः सभी पत्र-पत्रिकाओं में ऐसी विपुल सामग्री प्रकाशित होने लगी, जिनमें त्याग, देश-प्रेम, देश-सेवा, जीवन-आदर्श आदि मिलते हैं। इस समय भारतीय भावना को विशेष महत्त्व प्रदान किया।

चतुर्थ अध्याय

बीसवीं शती की अन्य पत्र-पत्रिकायें

बीसवीं शती में कई ऐसी पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ, जिनकी सूचना अन्य पत्र-पत्रिकाओं में उपलब्ध होती है। इस प्रकार की पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन अधिक समय तक न होने के कारण उनकी प्रतियाँ भी दुर्लभ हैं। बहुत सी पत्र-पत्रिकाओं का केवल प्रचार पत्र प्रकाशित किया गया, परन्तु उनका प्रकाशन हुआ या नहीं—यह अनिश्चित है, क्योंकि सूचना के अतिरिक्त उनकी प्रतियाँ नहीं मिलती हैं।

बीसवीं शती में दो चार ऐसी पत्र-पत्रिकायें प्रकाशित हुईं, जिनका स्थान निरन्तर परिवर्तित होता रहा है। उदाहरण के रूप में **संस्कृतरत्नाकरः** और **मधुरवाणी** प्रमुख हैं। पहला पत्र जयपुर, वाराणसी, कानपुर, देहली आदि स्थानों से प्रकाशित हुआ तथा दूसरी पत्रिका गदग (धारवाड़) बेलगांव, उत्तर-कर्णाटक आदि से प्रकाशित हुई। उपर्युक्त दोनों पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादक भी स्थान-परिवर्तन के कारण परिवर्तित होते रहे हैं। उनमें विषय गत भिन्नता परिलक्षित होती है। आकार, प्रकार, मूल्यादि में परिवर्तन हुआ है। इस प्रकार यह निर्णय करना कठिन हो जाता है कि यह कौन भी पत्रिका है जब कि उसके पूर्वापर इतिहास का उल्लेख न किया गया हो।

एक ही नाम से अनेक पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ है। स्थान भेद से उनका ज्ञान हो जाता है परन्तु जिस पत्र-पत्रिका का प्रकाशन उसी स्थान से और उसी नाम से हुआ, उसका निर्णय करना सरल नहीं प्रतीत होता, क्योंकि उसकी प्रतियाँ भी उपलब्ध नहीं तथा जो सूचना मिलती है, वह भी संक्षिप्त और अपर्याप्त है। उदाहरण के लिए **अमरभारती, देववाणी, ब्रह्मविद्या, शारदा, सुरभारती** आदि पत्रिकायें हैं। **अमरभारती** वाराणसी से दो बार अलग अलग सम्पादकों के द्वारा प्रकाशित की गई। इसी प्रकार **देववाणी** आदि के विषय में तथ्य उपलब्ध नहीं होते हैं। सुरभारती पत्रिका का प्रकाशन वाराणसी, बम्बई, इन्दौर, बड़ौदा, दरभंगा आदि स्थानों से हुआ है। इतना ही नहीं, वाराणसी से दो बार इसका प्रकाशन हुआ है।

संस्कृतरत्नाकर पत्र में संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं के मध्य एक नाटकीय संवाद

मिलता है, जिसमें समय की अन्विति नहीं है।[1] विभिन्न समयों में प्रकाशित होने वाली पत्र-पत्रिकाओं को एकत्र कर व्यंग्यात्मक संवाद भले ही रुचिकर है, तथापि उससे निश्चित सूचना नहीं मिलती। इस दिशा में यह भी सन्देह कुछ पत्र-पत्रिकाओं के अंक न उपलब्ध होने के कारण, उत्पन्न होता है कि इसका प्रकाशन किस समय और कहाँ से हुआ ?

कुछ पत्र-पत्रिकाओं की सूचना अन्य पत्र-पत्रिकाओं में उनके सम्पूर्ण नाम से न उपलब्ध होकर अपूर्ण अथवा संक्षेप में मिलती है। जैसे **सारस्वती सुषमा** और **पीयूष वल्लरी** को लिया जा सकता है। **सारस्वतीसुषमा** को **सुषमा** और दूसरी ओर **वल्लरी** नाम से अभिहित किया गया है। पीयूषपत्रिका को 'वल्लरी' के साथ अथवा अलंकारमयी शैली में कहा गया है। जबकि **सुषमा** और **वल्लरी** स्वतंत्र पत्रिकायें हैं।

यह आलंकारिक भाषा संस्कृतज्ञों की विशेष रुचि का परिचायक होने पर भी प्रशंसनीय नहीं है। डा० हास ने इस कठिनाई का अनुभव करते हुए लिखा है—

'Oriental writers are almost universally accustomed to give distinct names to their literary productions, whether anonymous or not. These names are fashioned mostly according to rhetorical fancies rather than founded on sound reason.[2]

अनेक पत्र-पत्रिकाओं का **प्रचार पत्र** प्रकाशित हुआ, परन्तु उनका प्रकाशन अनिश्चित है। विज्ञापन अवश्य अनेक वार अन्य पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए। **राजहंसः, सौदामनी, संस्कृतभास्करः** आदि इसी प्रकार की पत्र-पत्रिकायें हैं। इनके अंक दुर्लभ हैं, अतः यह अनुमान साधार है कि इनके केवल प्रचार पत्र ही प्रकाशित हुए हैं। प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं में भी त्रुटिपूर्ण सूचनायें मिलती हैं। संस्कृत चन्द्रिका में जयपुर से **साहित्यरत्नाकरः** के प्रकाशन की चर्चा है।[3] जबकि इस नाम के पत्र का प्रकाशन जयपुर से कभी भी नहीं हुआ। जयपुर से संस्कृतरत्नाकरः प्रकाशित हुआ था। अप्पाशास्त्री जैसे सफल पत्रकार भी इसके अपवाद नही है।

सबसे बड़ी विकट विडम्बना उस समय सुरसा की तरह मुह फैलाये खड़ी हो

---

१. संस्कृत रत्नाकर ६.६-११, पृ० १-७
२. Catalogue of Sanskrit and Pali Books in the British Museum. p. pre. III, 1876.
३. संस्कृतचन्द्रिका १०.११-१२

जाती है, जब पत्र-पत्रिकाओं में उनके प्रकाशन समय का भी उल्लेख नहीं मिलता। वाराणसी से प्रकाशित **प्रतिभा** में केवल **मकरसंक्रान्तिः माघः** लिखा है। इस सूचना से प्रकाशन के समय की जानकारी असम्भव है। इसी प्रकार भारत के भिन्न-भिन्न प्रदेशों से संस्कृत पत्र-पत्रिकायें प्रकाशित हुई हैं। किसी पत्रिका में **विक्रमाब्द**, तो किसी में **बंगाब्द**, तो अन्यों में **शकाब्द** तथा कतिपय में **कल्यब्द** एवं **याम्यायन** आदि के कारण उनके प्रकाशन का सही निर्धारण चक्रव्यूह के भेदन की तरह है। येन केन प्रकारेण निर्धारण हो जाने पर भी सन्देह अवश्य बना रहता है।

कुछ पत्र-पत्रिकायें औदार्य की सीमान्त रेखा के समीप हैं। **सूक्तिसुधा** के अङ्क प्रकाशित हुए, परन्तु अंकों की गणना नहीं की गई। केवल सतत प्रकाशन होता रहा। ऐसी भी अनेक पत्र-पत्रिकायें हैं जिनका प्रकाशन अनेक वर्षों तक स्थगित रहा, परन्तु पुनः प्रकाशित होने पर अप्रकाशित पूर्व वर्षों की गणना कर उसे प्रकाशित किया गया। **संस्कृतसंजीवनम्**, **संस्कृतरत्नाकरः** इसी कोटि के पत्र हैं। **मालवमयूर** का नर्तन भी ऐसी ही रहा है।

इस प्रकार स्थान परिवर्तन, समान-नाम, प्रचारपत्र, अस्पष्टसूचना, अर्धसूचना, समयसमुल्लेख, अङ्कगणना आदि अनेक प्रत्यवाय रहने पर भी भ्रमशून्य इतिहास प्रणीत करना विद्वानों की कृपा से हो रहा है। प्रस्तुत अध्याय में पहले संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं का विवेचन है, जिनका उल्लेख मिलता है, अतः संस्कृत पत्रकारिता के इतिहास में मतैक्य नहीं है। इसके बाद संस्कृत मिश्रित पत्र-पत्रिकाओं का संक्षिप्त विवेचन है।

संस्कृत पत्र-पत्रिकायें

अमरभारती नाम से अनेक पत्रिकायें प्रकाशित हुई हैं। श्रीः और सूर्योदयः के अनुसार **अमरभारती** पत्रिका का प्रकाशन अमृतसर से हुआ था।[1]

ततोऽमृतसरनगराद् १९२९ ई० आविर्भूतायाम् 'अमरभारती' पत्रिकायां।[2]

इस पत्रिका के केवल दो तीन अंक ही संभवतः प्रकाशित हुए। इसके सम्पादक सीता राम शास्त्री थे। दूसरी **अमरभारती** पत्रिका का प्रकाशन कोचीन से आरम्भ किया गया था।[3]

अमरवाणी नाम की दो पत्रिकाओं की सूचना मिलती है। एक का प्रकाशन

---

१. श्रीः ८.१-२ पृ० २१
२. सूर्योदयः १५.६ पृ० १४१
३. भारती ३.२

वाराणसी से आरम्भ हुआ था।[1] दूसरी **अमरवाणी** पत्रिका इन्दौर से प्रकाशित की गई थी अथवा सूचना प्रसारित हुई थी। यथा—

'राष्ट्रपुनर्निर्माणस्य पावनवेलायां संस्कृताध्ययने जनरुचिसमुत्पादनार्थं जन शासनयोः सहयोगः परमावश्यकः। तत्प्रचारायेयं अखिलभारतीयसंस्कृत-प्रचारसमितिः सचित्रस्वमुखपत्रत्वेन मासिकसंस्कृतपत्रिकां अमरवाणीमिति नाम्ना प्रकाशयितुमीहते। अस्यां वर्तमानराजनीतिमधिकृत्य साक्षात्परम्परया वा लिखिता लेखा नानुमताः प्रकाशयितुं सामाजिकविवादस्थापकाः प्रबन्धास्तथा। अस्यां भागचतुष्टयं स्यात्, तत्र संस्कृते भागद्वयं भवेत्। एकस्मिन्भागे प्रौढ-विदुषां भावविभूषिता विचारचर्चा। अपरस्मिन् भागे सरला हृदयग्राहिणो लघुकाया लेखाः प्रकाशमीयुर्येन साधारणसंस्कृतपरिचिता अपि संस्कृत-माधुर्याद् न वंचिता भवेयुः। प्रधानसम्पादकपदं शिक्षाशास्त्रविशेषज्ञाः मुसल-गांवकरोपनामकाः गजाननशास्त्रिणः समलंकरिष्यन्तीति।[2]

अमृतभारती पत्रिका कोचीन से प्रकाशित की गई थी।[3] भवितव्यम् में भी इसका उल्लेख मिलता है।[4] **अमृतवाणी** पत्रिका का प्रकाशन मैसूर से हुआ था।[5] संभवतः यह बंगलौर से रामकृष्ण भट्ट के सम्पादक में प्रकाशित 'अमृतवाणी' ही पत्रिका थी।

अमृतोदयः नामक पत्र का प्रकाशन बंगलौर से हुआ था।[6] **अरुणोदयः** का प्रकाशन कलकत्ता से आरम्भ हुआ था।[7] इस पत्र के सम्पादक रसिकमोहन भट्टाचार्य थे। संभवतः यह पत्र संस्कृत-बंगला में प्रकाशित होता था।

त्रिगुणानन्द के सम्पादकत्व में **आर्यवाणी** पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ हुआ था। यह पत्रिका एक वर्ष तक प्रकाशित हुई थी।

उदयः और **उदयन** दोनों पत्रिकायें संभवतः मिश्रित भाषा में प्रकाशित हुईं थीं।[8] **ओरियन्टकालेजमैगजीन** त्रैमासिक पत्रिका थी। यह लवपुर (लाहौर) से प्रकाशित हुई था। इसकी सूचना 'सूर्योदय' और 'उद्योत' में प्रकाशित हुई थी। उद्योत के अनुसार—

---

१. भारती ८.१ पृ० ४
२. शारदा (पूना) १.१६ पृ० ६,
३. Modern Sanskrit Literature, p. 209.
४. भवितव्यम् १.३२ तथा अर्वाचीन संस्कृत साहित्य, पृ० २८८
५. अर्वाचीन संस्कृत साहित्य पृ० २८७
६. अर्वाचीन संस्कृत साहित्य पृ० २८७
७. तंजौर सरस्वती महल जर्नल १५.३
८. सूर्योदयः १५.६ पृ० १४१

'ओरियन्टलकोलेजमैगजीन इत्याख्या त्रैमासिकी विविधभाषामयी पत्रिका यस्याः संस्कृतभागः संस्कृतविदुषां पठनपाठसौकर्याय सम्पादकमहोदयैः पृथगेवाङ्क्याप्यते। एतस्याः पत्रिकायाः प्रधानसम्पादकाः श्रीमाननीया मुहम्मद-शफी इति प्रसिद्धाभिधानाः कालेजस्य वाइसप्रिन्सिपलमहोदया वर्तन्ते। संस्कृतविभागस्य सम्पादकाश्च श्रीमन्तो डाक्टर लक्ष्मणस्वरूपमहोदया इति। प्रायोऽस्यामनेके पण्डितरूपैः सदृशाः शास्त्रीयाः सारगर्भिताश्च लेखा मुद्रयन्ते। ऐतिहासिका समालोचनात्मका वृत्तान्ताश्च। अस्या आकारप्रकारौ मनोहरौ सुन्दराण्यक्षराणि'।[1]

कल्पकः और **कर्णाटकचन्द्रिका** पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन की सूचना मिलती है।[2] कर्णाटकचन्द्रिका का प्रकाशन मैसूर से आरम्भ हुआ था। **कामधेनुः** मासिक पत्रिका थी। इसका प्रकाशन कल्लिडाई, कुरुचि मद्रास से होता था। इसका पूरा नाम संस्कृतकामधेनुः था। सूर्योदयः पत्र के अनुसार—

संस्कृतकामधेनुः मासिकसंस्कृतपत्रिका। अस्याः सम्पादकः श्री के० ए० रामलिंग शास्त्री। उपसम्पादकः श्री पी० शंकरसुब्रह्मण्य शास्त्री। अग्रिमं वार्षिकं मूल्यं त्रिरूप्यकम्।[3]

इस सूचना से यह प्रतीत होता है कि इसका प्रकाशन सन् १९२४ के लगभग हुआ था। अन्यत्र भी इसका नाम मिलता है।[4]

कौमुदी पत्रिका का प्रकाशन कोल्हापुर से किस समय हुआ? इस प्रश्न के समाधान के लिए यथेष्ठ सामग्री नहीं मिलती। नृसिंहदेव शास्त्री के सम्पादकत्व में उद्योत पत्र का प्रकाशन सन् १९२८ से लाहौर से आरम्भ हुआ था। सम्भवतः उद्योत ही **खद्योतः** पत्र हो। पाकिस्तान बनने के पूर्व लाहौर संस्कृत का एक प्रमुख केन्द्र था। वहीं से उद्योत पत्र का प्रकाशन हुआ था। 'खद्योतः' मासिक पत्रिका की सूचना मिलती है। **गीर्वाण** पाक्षिक पत्र था।[5] इसका प्रकाशन कब और कहाँ से हुआ था, अज्ञात है। **गीर्वाण-वाणी** की सूचना अमरभारती पत्रिका में मिलती है।[6]

चित्रवाणी पत्रिका का प्रकाशन काशी से आरम्भ किया गया

---

१. उद्योत १.३
२. सूर्योदयः १.९, १९२४ ई०
३. वही १.९
४. भवितव्यम् १.३२. सरस्वती ३८.२. पृ० १२४९
५. सरस्वती (हिन्दी) २७.२ पृ० १२४९
६. अमरभारती (वाराणसी) १.१

था। अर्वाचीन संस्कृत साहित्य नामक इतिहास ग्रंथ में इनकी सूचना इस प्रकार मिलती है—

चित्रवाणी मासिक काशीमध्ये प्रकाशित होत असे। रवीन्द्रनाथ टागोरांच्या अनेक काव्यांचा संस्कृत अनुवाद व कालीपद तर्काचार्यांचें महाकाव्य या चित्रवाणी मध्ये क्रमशः प्रकाशित झालें।[1]

जर्नादनः पत्र की सूचना हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ पत्रिका 'सरस्वती' में मिलती है।[2] **दिव्यवाणी** पत्रिका की सूचना संस्कृतसाकेत में मिलती हैं। इसका प्रकाशन हमीरपुर से हुआ था।[3] **देवगोष्ठी** पत्रिका का प्रकाशन भीमसेन विद्यालंकार के सम्पादकत्व में हरिद्वार से आरम्भ हुआ था। गुरुकुलपत्रिका के अनुसार—

'महाविद्यालयविभागे कतिपयकालपर्यन्तं हिन्दीपत्रिकासम्पादनातिरिक्तं सुरभारत्याः देवगोष्ठीपत्रिकायाः सम्पादनकर्मणि दत्तचितोऽभवत् ।[4]

गुरुकुलकांगड़ी महाविद्यालय से अनेक पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ है।[5] वहाँ संस्कृतोत्साहिनी एक सभा थी। इस सभा की ओर से हस्तलिखित **देववाणी** संस्कृत पत्रिका बहुत समय तक निकलती रही। यह पत्रिका संभवतः सन् १९१८-२० के मध्य प्रकाशित हुई थी।

बीकानेर से **देववाणी** पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ हुआ। यह पत्रिका एक अंक के प्रकाशन के पश्चात् स्थगित हो गई। अमरभारती में देववाणी पत्रिका का संकेत है[6] परन्तु वह कौन सी देववाणी है? यह निश्चय करना कठिन है। **देवस्थानम्** पत्रिका का प्रकाशन श्रीरंगम् से आरम्भ किया गया था।[7]

धर्मः और **धर्मचक्रम्** दोनों पत्रों का केवल नाम 'सरस्वती'[8] और 'तंजोर

---

१. अर्वाचीन संस्कृत साहित्य पृ० २८६

२. सरस्वती २८.२ पृ० १२४८-४९

३. संस्कृत साकेत २९.१२

४. गुरुकुलपत्रिका १५.१

५. उषा, देववाणी, गुरुकुलपत्रिका, देवगोष्ठी आदि

६. अमरभारती १.१

७. तंजौर सरस्वती महल पत्रिका १५.३

८. सरस्वती २८.२ पृ० १२४८

सरस्वतीमहल पत्रिका'[१] में क्रमशः मिलता है। **धर्मचन्द्रिका** की सूचना विख्यात पत्रिका संस्कृत चन्द्रिका में है ।[२]

पद्यवाणी और **पद्यामृततरंगिणी** पत्रिकाओं की सूचना एम्० कृष्णमाचारियार ने अपने इतिहास में दी है,[3] तथापि इसका निर्णय नहीं हो पाता कि क्या ये एक मात्र संस्कृत भाषा की पत्रिकायें थीं ?

संस्कृत चन्द्रिका में ऐसी अनेक पत्र-पत्रिकाओं की सूचना वत्सरारम्भ में अथवा अन्यत्र मिलती है, जिनके सम्बन्ध में अधिक प्रकाश नहीं मिलता। यही स्थिति **पुराणादर्शः** और प्रकटनत्रिका के सम्बन्ध में हैं। **पुराणादर्शः** की सूचना संस्कृत चन्द्रिका के आठवें वर्ष के ग्यारहवें अंक में मिलती है।

प्रभा पत्रिका का बांगलकोट से प्रकाशन आरम्भ किया गया था।

प्रज्ञा पत्रिका वाराणसी से प्रकाशित हुई थी। इसमें निम्नांकित विषय प्रकाशित किये जाते थे—

'अस्यां पत्रिकायां सर्वेषां पण्डितानामन्येषां सर्वेषां शिक्षाविदां च प्रबन्धाः प्रकाशिताः भवेयुः'।[४]

भारती पत्रिका आज भी जयपुर से प्रकाशित हो रही है। परन्तु इसके अतिरिक्त दो अन्य पत्रिकाओं का परिचय 'भारती' नाम से उपलब्ध होता है। तिरुव्यारु और पूना से ये पत्रिकायें प्रकाशित हुईं। परन्तु अंकों की प्राप्ति न होने के कारण स्तर, आकार-प्रकार का ज्ञान नहीं हो पाता है।

भारतधर्मः पत्र की सूचना संस्कृत चन्द्रिका के आठवें वर्ष के ग्यारहवें अंक में है।

मुजफ्फरपुर बिहार से **मित्रः** पाक्षिक पत्र का प्रकाशन हुआ था।[५] **मित्रम्** पत्र की सूचना 'अर्वाचीन संस्कृत साहित्य' ग्रन्थ से मिलती है।[६] तदनुसार

---

१. तंजौरसरस्वतीमहलपत्रिका १५.३

२. संस्कृत चन्द्रिका ८.४

३. History of Classical Sanskrit Litersture, p. CXIII-CXIV.

४. प्रणवपारिजातः १.३

५. Journal of the Ganganath Jha Research Institute, Vol. XIII p. 163.

६. अर्वाचीन संस्कृत साहित्य पृ० १८७

'मित्रम्' पत्र का प्रकाशन पटना से आरम्भ हुआ था। यह संस्कृत संजीवन समाज का पत्र था। यथा—

'पाटणा येथील संस्कृतसंजीवन समाजाचें 'मित्रम्' ।

महामहोपाध्याय रामावतार शर्मा और विधुशेखर भट्टाचार्य के सफल सम्पादकत्व में मित्रगोष्ठी पत्रिका का प्रकाशन वाराणसी से हुआ था। दूसरी **मित्रगोष्ठी** पत्रिका के प्रकाशित होने का स्थान कलकत्ता था[1]। इसके सम्बन्ध में इससे अधिक सूचना नहीं मिलती।

मीमांसा प्रकाशः मासिक पत्र था तथा मीमांसासमिति पूना इसका प्रकाशन स्थान था। संस्कृत रत्नाकर के अनुसार—

'पुण्य (पूना) पत्तनस्थमीमांसाग्रन्थप्रकाशनसमितिद्वारा प्रतिमासं प्रकाश्यमानः मीमांसकशिरोमणिवामनशास्त्रिदीक्षितरामचन्द्रशास्त्रिभ्यां संपाद्यमानः सोऽयं प्रकाशो नियतमेव कलिकालजलदपटलसमाच्छन्नं मीमांसासुधाकरं पुनरपि सर्वजननयनातिथिं विधत्ते। आङ्गलभाषया संस्कृतभाषया चेतिहास-धर्मशास्त्रवेदान्तमीमांसाशास्त्रनिबन्धान् परमसुन्दरैर्विशुद्धैश्चाक्षरैः संमुद्रय सर्व-सज्जनानां सेवायामुपायनी कुर्वन् सोऽयं मीमांसाप्रकाशः कियतीं वा श्लाघां नार्हति'[2]।

इस पत्र का वार्षिक मूल्य पाँच रुपये था। संभवतः यह पत्र सन् १९३६ के लगभग प्रकाशित होता था। इस पत्र की सूचना अन्यत्र भी मिलती है।[3]

मोदवृत्तम् नाम से हास्य प्रधान पत्र प्रतीत होता है। इसका केवल नामोल्लेख मिलता है।[4]

राजहंसः संस्कृत पत्र को निकालने का उपक्रम पण्डित भवानी शंकर शास्त्री अकोला निवासी ने किया था। इस पत्र का प्रचार पत्र 'मालयमयूर' के सम्पादक रुद्रदेव त्रिपाठी के सहयोग से तैयार हुआ था। इस पत्र की नियमावली भी पद्यमय थी। त्रिपाठी के पत्रानुसार इसका आदर्श श्लोक निम्नांकित था—

'पयसि पयसि भेदख्यापने प्राप्तशंस-
स्त्रिदशगिरि रिरंसू राजते **'राजहंसः'** ॥

वनौषधिः पत्रिका का प्रकाशन वाराणसी से केदारनाथ शर्मा के सम्पादकत्व में आरम्भ हुआ था। यथा—

---

१. History of Classical Sanskrit Literature, p. CXIII
२. संस्कृतरत्नाकर ५.२ पृ० ५१
३. श्रीः ८.१-२ पृ० २१, श्रीमन्महाराजपाठशालापत्रिका १३.३
४. सरस्वती (हिन्दी) २८.२ पृ० १२८४

बहुभ्यो वर्षेभ्यः पूर्वं स काशीत एव वनौषधिः इत्यभिधानां एकां अतीव उच्चैस्तरस्पृशन्तीं पत्रिकां सम्पादयामास ।[1]

एक **विद्या** का प्रकाशन बेलगांव से हुआ था। दूसरी **विद्या** का प्रकाशन काशी से आरम्भ हुआ ।[2] **वाग्देवी** पत्रिका के प्रकाशन का भी संकेत भर मिलता है ।[3]

विद्यारत्नाकरः पत्र के प्रकाशन की अनेक स्थलों में सूचनाएँ मिलती हैं ।[4] यह पत्र वाराणसी से प्रकाशित किया जाता था। यह मासिक पत्र था। इस पत्र के संरक्षक राजा शशि शेखरेश्वर राय बहादुर थे। वाराणसीय अनेक विद्वानों का सहयोग इस पत्र को प्राप्त था। महामण्डल शास्त्र प्रकाशक वाराणसी से सन् १६१० से पत्र का प्रकाशन आरम्भ हुआ था ।[5]

विद्याविनोद और विद्योदयः दोनों पत्रों का प्रकाशन भरतपुर से प्रारम्भ किया गया था। विद्याविनोद की सूचना संस्कृत चन्द्रिका[6] में तथा विद्योदय की आज का भारतीय साहित्य ग्रन्थ में है[7] ।

विद्वत्कला और विद्वद्गोष्ठी दोनों पत्रिकाओं की सूचना युग की सर्वश्रेष्ठ पत्रिका संस्कृत चन्द्रिका में मिलती है। विद्वत्कला की सूचना संस्कृतचन्द्रिका के सातवें वर्ष के आठवें अंक में और विद्वद्गोष्ठी की ग्यारहवें वर्ष के एक साथ प्रकाशित एक से चतुर्थ अंक में उपलब्ध है।

विश्वज्योतिः पत्रिका की सूचना अन्नामलाई विश्वविद्यालय पुस्तकालयाध्यक्ष के पत्र से मिली है। **विश्वनाथ पत्रिका** का प्रकाशन अपारनाथ मठ वाराणसी से आरम्भ किया गया था। इसके सम्पादक मधुसूदन थे।

वैष्णवसुधा पत्रिका का प्रकाशन कांचीवरम् से आरम्भ किया गया था[8]। यह वैष्णव सम्प्रदाय का पत्रिका थी।

---

१. सुप्रभातम् १७.३
२. दिव्यज्योतिः १.१
३. अमरभारती १.१
४. सरस्वती २८.२पृ० १२४८-४६, आज भारतीय इतिहास. पृ० ३२७
५. A supplementary catalogue of the Skt, Pali and Prakrit Books in Library of British Museum, part III. p. 759
६. संस्कृतचन्द्रिका ६.६
७. आज का भारतीय साहित्य पृ० ४२६
८. महाराजसंस्कृतपाठशालापत्रिका २.१

शंकरकृपा पत्रिका तेनूर (तिरुची) से प्रकाशित हुई थी।[1] **श्रीरामकृष्ण-विजयम्** पत्र का प्रकाशन मद्रास से आरम्भ हुआ था। **श्रीवैष्णवसुदर्शनम्** तिरुचिरापल्ली से प्रकाशित किया गया था। दोनों विशिष्ट विषयक पत्र थे।

श्रीशारदा पत्रिका का प्रकाशन मैसूर से आरम्भ हुआ था। यह आयुर्वेद प्रधान पत्रिका थी। संस्कृत साहित्यपरिषत्पत्रिका के अनुसार—

'श्रीशारदा मैसूरविभागात्, प्रकाशिता आयुर्वेदविमर्शवहुला च वर्णाश्रमधर्मविषयकाश्च निवन्धाः स्वल्पा अपि न विद्यन्ते इति न। अनेनोच्यते वर्णाश्रमाचारधर्मनिर्मूलनमेव स्वराज्यसिद्धेः सोपानमिति ये तु भणन्ति ते ह्यनारिप्रपंचचारित्र्यमेव न जानन्तीति'।[2]

यह पत्रिका मैसूर के शृंगेरीमठ से निकलती थी।[3] अर्वाचीन संस्कृत साहित्य में **संस्कृत कादम्बिनी** की सूचना है।[4] यह कहाँ से प्रकाशित हुई थी, इसका उल्लेख नहीं मिलता ? लश्कर (ग्वालियर) से संस्कृत-काव्य-कादाम्बिनी पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ हुआ था। संभवतः यह वही पत्रिका प्रतीत होती है।

वासुदेव नागेश जोशी के सम्पादकत्व में **संस्कृत चन्द्रिका** का सम्पादन बम्बई से हुआ था।[5] **गद्यवाणी** पत्रिका के सम्बन्ध में विशेप जानकारी नहीं मिलती है। संस्कृत चन्द्रिका पुरानी ही थी।

काशी धर्म संघ से **संस्कृत प्रतिभा** पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ हुआ था।[6] मेरठ से संभवतः **संस्कृतप्राण** प्रकाशित किया गया था।[7] **संस्कृत भारती** पत्रिका का प्रकाशन सन् १९१८ से वाराणसी से आरम्भ हुआ था। इसके अतिरिक्त वर्दवान से **संस्कृतभारती** के प्रकाशन की सूचना मिलती है।[8] इसके सम्पादक उमाचरण वंद्योपाध्याय थे।

---

१. तंजौर सरस्वती महल पत्रिका १५.३
२. संस्कृत साहित्यपरिषत्पत्रिका ५.१२ पृ० ३८
३. सरस्वती २८.२ पृ० १२४८
४. अर्वाचीन संस्कृत साहित्य पृ० २८८
५. भारतीयविद्याभवनबुलेटिन, अक्टूवर सन् १९५५
६. अर्वाचीन संस्कृत साहित्य पृ० २८७
७. Modern Sanskrit Literature, p. 208
८. श्रीः १.४

श्रीः त्रैमासिक पत्रिका में **संस्कृत रत्नप्रभा** का उल्लेख मिलता है।[1] शिमला से **संस्कृतसाहित्यपरिषत्पत्रिका** का प्रकाशन हुआ था। **समस्या-कुसुमाकरः** पत्र वाराणसी से प्रकाशित किया था। इसका प्रकाशन स्थल गोपाल मन्दिर काशी था। इसमें एकमात्र समस्या पूर्तिओं का प्रकाशन होता था।[2] **साहित्यसुधा** पत्रिका का प्रकाशन राघवपुर (पाटलीपुत्र) से आरम्भ हुआ था। संस्कृत साहित्यपरिषत्पत्रिका के अनुसार—

साहित्यसुधा पाटलीपुत्रान्तर्गतराघवपुरात् प्रकाशमापन्ना। एकहायने वयसि वर्तमाना पद्यमयी देशभाषान्विता संस्कृतपत्रिका च। क्रमागतो वनितावियोगस्त्वतीव करुणरसात्मकः सहृदयमनांसि द्रावयतीत्यत्र नास्ति सन्देहबिन्दुः।[3]

साहित्यसुषमा का प्रकाशन राजपुर (बांदा) ग्राम से हुआ था। इसका पूरा नाम 'संस्कृतसाहित्यसुषमा' था। यथा—

'राजापुर (बांदा) येथील तुलसीस्मारक विद्यालयाचे शास्त्री श्री देव-नारायण पाण्डे यांची संस्कृत-साहित्यसुषमा' हीं कांहीं वर्षे चालून बंद पड़लेगली संस्कृतनियतकालिकें विशेष उल्लेखनीय आहेत।[4]

सुदर्शनधर्म पताका की सूचना संस्कृत चन्द्रिका के आठवें वर्ष के बारहवें अंक में मिलती है। वाराणसी से **सुधानिधिः** पत्रिका का प्रकाशन हुआ था।[5] **सुरगीः** पत्रिका प्रयाग से प्रकाशित की गई थी।[6] **सुरभारती** का दरभंगा से प्रकाशन आरम्भ किया गया था।[7] **सुहृद्** पत्र की सूचना मालव मयूर पत्र में उपलब्ध होती है।[8]

गलगलि (विजापूर) से मुद्गलाचार्य के सम्पादकत्व में **सौदामनी**

---

१. सरस्वती २८.२ पृ० १२४८-९

२. सरस्वती २८.२ पृ० १२४९

३. संस्कृतसाहित्यपरिषत्पत्रिका ५.१२ पृ० २७९

४. अर्वाचीन संस्कृतसाहित्य पृ० २८८

५. दिव्यज्योति १.१२

६. वही, १.१२

७. आज का भारतीय साहित्य पृ० ३२९

८. मालवमयूरः कवितांक

पत्रिका का प्रकाशन हुआ या नहीं, सन्दिग्ध है । इसके सहकारि सम्पादक रामाचार्य गलगलि थे । प्रचार पत्र में इसकी सूचना इस प्रकार है—

अयि प्रियमहाभागा नानादेशनिवासिनः संस्कृतभाषापरितोषसततसमुत्साहाः श्रीमतां सन्निधौ यदद्य विनिवेद्यते तत्सावधानं श्रूयतामिति सांजलिवन्धं नाथामः कैश्चन मन्दीभूतप्रायविवेकैर्मृतत्वेन व्यपदिश्यमानां गैर्वाणीं वाणीं समुद्धर्तुं वद्धपरिकराः समवलोक्य ते केचन महोदया इति विदितचरमेव संस्कृतपत्रिकानुवाचकानाम् । तासु प्रथमगणनीया सर्वथान्तरंगवाह्यांगसौष्ठवान्विता रसिकचूड़ामणिभिः विद्यानिधिकृष्णमाचार्यैः प्रचार्यमाणा सहृदयैवेति नो बुद्धिः । तादृशी न काप्यवलोक्यते द्वितीया संस्कृतपत्रिकेति ननु स्वानुभव एव परमं प्रमाणं भविष्यति भावुकानां । सर्वथा सहृदयामनुकुर्वतीं सौदामन्यभिधानां सहृदयासहोदरीं संस्कृतमासिकपत्रिकां प्रकटीचिकीर्षामः ।

युगपदेव सौदामनी सहृदयामनुकरोतीति न वयमभिधास्यामः । अथाप्यचिरादेव तामनुकर्तुं दिवानिशं प्रयतते सौदामनीति प्रतिजानीमः । आर्याः अभिरूपशिखामणयः मदीयं प्रणामशतमुररीकुर्वन्तः मदीयाभ्यर्थनां कर्णयोः कुरुत राक्षसनामसंवत्सरीचैत्रशुक्लप्रतिपद आरम्भ प्रकट्यते सौदामनी । इदानीमेव ये ग्राहककोटिषु प्रवेशमीहमानाः आत्मनां नामधामादिकं निवेदयन्ति तेषां कृते कल्पितं मूल्यतया रूप्यकद्वयं । ये तु निरुक्तप्रतिपदोनन्तरं प्रविशन्ति ग्राहककोटिषु तैर्देयं स्यादधिकमर्धरूप्यकं मूल्यम् । निर्णयसागरे वा तत्सदृक्षे यंत्रालये मुद्राप्यते संस्कृतचन्द्रिकायाः सरलया सरण्या संगता सौदामनी द्वात्रिंशत्पृष्ठात्मिका । अधुनाऽपि देहे प्राणास्तिष्ठन्ति अधुनापि धमनी स्पन्दते अधुनाऽपि सर्वासां भाषाणां मातृभूतां देवगिरमुद्धर्तुं शक्नुथ । सहृदयाः किमित्यौसादीन्यमालंवध्वे । सौदामनी ग्राहककोटिषु प्रविशतु येनेह सुखमवाप्य परलोकेऽपि महनीयेषु सुरेषु परिगण्यध्वे ।

अन्य पत्र पत्रिकाओं में **डुंगर कालेज पत्रिका**[1], **वेंकटेश्वर पत्रिका**[2] आदि प्रधान हैं । **सद्बोधचन्द्रिका, सनातनधर्मसंजीविनी** आदि अन्य पत्र-पत्रिकायें हैं । **साहित्यरत्नाकर** का प्रकाशन जयपुर के हुआ था ।[3] परन्तु यह संस्कृत रत्नाकर ही पत्र था । **प्राची** वार्षिक पत्रिका है । इसका प्रकाशन सन् १९६० से आरम्भ हुआ । यह वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय की पत्रिका है । इसके सम्पादक रामशंकर शुक्ल हैं ।

---

१. आज का भारतीय साहित्य पृ० ३२९

२. वही, पृ० ३२९, और अर्वाचीन संस्कृत साहित्य, पृ० २८८

३. संस्कृत चन्द्रिका १०.११-१२

संस्कृत मिश्रित पत्र-पत्रिकायें

संस्कृत और उड़िया

लगभग पन्द्रह संस्कृत और उड़िया भाषा मिश्रित पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ है। ये पत्र-पत्रिकायें षाण्मासिक और वार्षिक हैं, जिनमें **अंजलि** (बेनकल १९५१ ई०), **विकास** (कटक १९५१ ई०), **आरती** (बालसोर १९५४ ई०), **नीहारिका** (कटक) आदि अर्धवार्षिक और **वासन्ती** (कटक), **सुधा** (पुरी), **अभ्युदय** (बालांगिर) आदि वार्षिक हैं।

संस्कृत और कन्नड़

संस्कृत और कन्नड़ मिश्रित कई उच्चकोटि की पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन आरम्भ हुआ। **वीरशैवप्रभाकर** (१९०६ ई०) मासिक पत्र था। मद्रास से इसका प्रकाशन होता था। इसका उद्देश्य शैव सिद्धान्त को प्रचारित करना था। इसमें तदनुकूल सामग्री प्रकाशित होती थी। **जिनमतप्रकाशिका** (१९१९ ई०) का प्रकाशन मैसूर से हुआ था। शिलालेख एवं प्राचीन अवशेष सम्बन्धी निबन्ध प्रकाशित होते थे तथा इसके सम्पादक बी० पद्मराज थे। **आनन्दचन्द्रिका** (१९२३ई०) का प्रकाशन केलमंगलम् (बंगलौर) से मासिक रूप में आरम्भ हुआ था। इसके सम्पादक वैद्यनिधि कारुपल्लि शिवराम थे। **द्वैतदुन्दुभिः** (१९२३ ई०) मासिक पत्रिका द्वैतसभा बिजापुर से अनन्ताचार्य सुवर्णाचार्य के सम्पादकत्व में प्रकाशित हुई थी। इसमें धार्मिक और दार्शनिक निबन्धों का बाहुल्य था।

संस्कृत और गुजराती

गीर्वाणभारती (१९०६ ई०) पत्रिका गीर्वाणभारती कार्यालय लाला भाई खाँचा, बड़ौदा से प्रकाशित हुई थी। इसके सम्पादक शास्त्री मंगललाल गिरजा शंकर थे। इसमें अनेक सुन्दर और आकर्षक चित्रों का प्रकाशन होता था। इसका वार्षिक मूल्य ढ़ाई रुपये था। इसमें अनेक काव्य, चम्पू, नाटक, कथा और गीत प्रकाशित हुए हैं। पत्रिका के मुख पृष्ठ पर निम्नांकित श्लोक प्रकाशित होता था—

> चित्रचारुपदन्यासयुक्तलेखप्रकाशिनी।
> विद्वद्वरेण्या जयति सैषा गीर्वाणभारती ॥

भारतदिवाकर (१९०७ ई०) का प्रकाशन श्री नारायण शंकर और हरिशंकर के सम्पादकत्व में हुआ था। यह अहमदाबाद से प्रकाशित किया जाता था। इसमें धर्म और विज्ञान विषयक निबन्ध मिलते हैं। संस्कृत और गुजराती मिश्रित अन्य अप्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाओं में **किरण** (१९४९ ई० सूरत),

प्रतिमा आदि हैं। आज भी अनेक संस्कृत गुजराती मिश्रित पत्र-पत्रिकायें हैं।

संस्कृत और तामिल

नृसिंह-प्रिया (१६४२ ई०) मासिक पत्रिका श्री आहोविलमठ तिरुवाल्लूर चिंगलेपेट से प्रकाशित होती थी। इसके सम्पादक जे० रंगाचारियार स्वामी तथा प्रकाशक और मुद्रक टी० रामास्वामी अय्यंगर थे। यह वैष्णव धर्म प्रधान तथा दार्शनिक पत्रिका थी।

वैदिक धर्मवर्धिनी (१६४७ ई०) मासिक पत्रिका का प्रकाशन श्रियाली (मद्रास) से आरम्भ हुआ था। इसके सम्पादक सोमदेव शर्मा और प्रकाशक एन्० व्ही० सुब्रह्मण्य थे। २।२१८ थम्बू स्ट्रीट से यह पत्रिका प्रकाशित की जाती थी। **आनन्दकल्पतरुः** (१६५६ ई०) मासिक पत्र २६, मैकडानेल्ड स्ट्रीट, फोर्ट, कोइम्बटूर से प्रकाशित हो रहा है। के० व्ही० नरसिंहाचार्य और के० एस्० नागराज राव सम्पादक तथा एन्० बालप्पन् प्रकाशक हैं। माध्व मण्डल की यह पत्रिका है। **श्रीकामकोटिप्रदीप** (१६६० ई०) मासिक पत्र का प्रकाशन मद्रास से बालसुब्रह्मण्य के सम्पादकत्व में हो रहा है। यह उस मठ का प्रचारक और धार्मिक पत्र है। इसी प्रकार **सत्यविद्या** (तंजौर) पत्रिका है।

संस्कृत और तेलगू

विद्यावति (१६०६ ई०) मासिक पत्रिका का प्रकाशन मद्रास से सी० दोरास्वामी के सम्पादकत्व में हुआ था। इसमें साहित्य, विज्ञान और धर्म संबन्धी प्रौढ़ निबन्ध मिलते हैं। यह पत्रिका १६१४ ई० तक प्रकाशित हुई। **विश्वश्रित** (१६०६ई०) के सम्पादक एम० वीरभद्राचार्य थे। यह पत्र मद्रास से प्रकाशित हुआ था तथा धार्मिक पत्र था। **हिन्दूजनसंस्कारिणी** (१६१२ ई०) मासिक पत्रिका मद्रास से निकली थी। इस के सम्पादक मन्नव सिंहचलम् पन्तुलु थे। यह सामाजिक पत्रिका थी। इसमें उच्चकोटि के निबन्धों का प्रकाशन होता था। **सरस्वती** (१६२३ ई०) मासिक पत्रिका मुक्त्याला (मद्रास) से प्रकाशित हुई थी। इसके सम्पादक राजावासि रेड्डी तथा दुर्गा सदा विश्वेश्वर प्रसाद बहादुर थे। यह साहित्यिक पत्रिका थी। **सरस्वतीमहलपत्रिका** (१६३६ ई०) तंजौर से प्रकाशित हो रही है। इसमें अनेक ग्रन्थों का प्रकाशन होता है। **अमृतलिंग** (१६५१ ई०) मासिक पत्र विजयवाड़ा से प्रकाशित हुआ था। अज्ञनय शास्त्री इसके सम्पादक थे। **आराधना** (१६५६ ई०) त्रैमासिक पत्रिका हैदराबाद से प्रकाशित हो रही है। इसके सम्पादक जी० नागेश्वर राव हैं। **संस्कृतवाणी** (१६५८ ई०) पाक्षिक पत्रिका तेलगू से मिश्रित थी,

तथापि संस्कृत प्रधान होने के कारण इसकी गणना संस्कृत पाक्षिक पत्र-पत्रिकाओं में की गई है।

संस्कृत और बंगला

अनेक प्रसिद्ध संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं के सफल सम्पादकों की मातृभाषा बंगला थी। उन्होंने मातृभाषा में अपनी भावनाओं का स्रोत न बहाकर गीर्वाणवाणी में बहाया। हृषीकेश भट्टाचार्य, सत्यव्रत सामश्रमी, विधुशेखर भट्टाचार्य, क्षितीशचन्द्र चट्टोपाध्याय आदि बंगला मातृभाषा वाले संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं के मूर्धन्य और सफल सम्पादक हैं।

वैष्णव सन्दर्भ (१६०३ ई०) मासिक पत्र नित्यसखा मुक्तोपाध्याय के सम्पादकत्व में वृन्दावन से प्रकाशित किया गया था। इसमें वैष्णव साहित्य का प्रकाशन होता था। भाषा सरल और विषयानुकूल थी। यह पत्र सन् १६१४ तक प्रकाशित हुआ। **तत्त्वबोधिनी** कलकत्ता से प्रकाशित हुई थी।

संस्कृत और मराठी

उन्नीसवीं शती के चतुर्थ चरण से ही अनेक संस्कृत-मराठी पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन आरम्भ हुआ था। **वीरशैवमतप्रकाशः** (१६०६ई०) खन्दल (पूना) से प्रकाशित हुआ था। इसमें शैव सिद्धान्त की तात्त्विक विवेचना उपलब्ध होती है। अन्य पत्र-पत्रिकाओं में तरुण, गर्जना आदि प्रधान हैं।[1] **षड्दर्शनचिन्तनिका** बम्बई से प्रकाशित उच्चकोटि की पत्रिका थी। इसमें भारतीय आस्तिक दर्शनों के ग्रन्थ प्रकाशित किये जाते थे। पूना की पत्रिका **एकता** में कभी-कभी संस्कृत लेख प्रकाशित होते थे।[2] लोकमान्य तिलक के सम्बन्ध में अनेक पत्र-पत्रिकाओं में संस्कृत में रचनायें मिलती हैं। **केसरी** का सिंहनाद संस्कृत में ही रहता था।

संस्कृत और मैथिली

मिथिलामोदः मासिक पत्र का प्रकाशन वाराणसी से सन् १६०५ से आरम्भ हुआ था। इसके सम्पादक मुरलीधर झा थे। मिथिलामोदः एक अच्छा पत्र था[3]।

संस्कृत और हिन्दी

संस्कृत-हिन्दी मिश्रित अनेक उच्चकोटि की पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ है। यहाँ पर उन्हीं का परिचय दिया जा रहा है, जिनका

---

१. भारती ३.४(मराठीवृत्तपत्राणां संस्कृतसेवा)
२. अर्वाचीन संस्कृत साहित्य पृ० २८६
३. वही०

संस्कृत की दृष्टि से अधिक है। **वैष्णवसर्वस्व** मासिक पत्र का प्रकाशन सन् १९१० से आरम्भ हुआ। इसके सम्पादक श्री किशोरीलाल गोस्वामी थे। यह वृन्दावन से प्रकाशित किया गया था। यह अनेक वर्षों तक चलता रहा। यह निम्बार्क सम्प्रदाय का प्रमुख पत्र था। इसमें स्तुतियाँ, अष्टक आदि का प्रकाशन होता था।

आयुर्वेदमहासम्मेलन मासिक पत्रिका का प्रकाशन दिल्ली से सन् १९१३ से आरम्भ हुआ था। इसका उद्देश्य 'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्' था। इसके सम्पादक चेतनानन्द चिदकाशी थे। यह अखिल भारतीय आयुर्वेद संघ की पत्रिका थी। **अच्युतः** वाराणसी से सन् १९३३ में प्रकाशित हुआ था। इसके सम्पादक चण्डीप्रसाद शुक्ल थे। यह दार्शनिक पत्र था। इसमें संस्कृत के अतिरिक्त हिन्दी में भी लेख होते थे।[1]

वेदवाणी पत्रिका का प्रकाशन वाराणसी से सन् १९३३ में हुआ। इसमें कभी-कभी शोध-निबन्ध प्रकाशित होते रहते हैं। भारते भातु भारती के उद्देश्य को लेकर **संस्कृतप्रचारकम्** पत्र का प्रकाशन सन् १९५० से आरम्भ हुआ। पत्र संस्कृतप्रचारकम् कार्यालय २५१८, बुलबुलीखाना, देहली-६ से प्रकाशित हो रहा है। इस पत्र के सम्पादक श्री रामचन्द्र भारती हैं। इसका उद्देश्य संस्कृत का प्रचार है—

संस्कृतस्य प्रचारः स्यात् हिन्दुस्थानगृहे गृहे।
पत्रोद्देश्यमिदं ज्ञेयं तथा संस्कृतिरक्षणम् ॥

आरम्भ में इस पत्र के सम्पादक कवीन्द्र कमल कौशिक शास्त्री थे। यह बालकों के लिए अत्यधिक उपयोगी पत्र है। इसमें सरल संस्कृत में श्लोक, उपदेश, कथा आदि का प्रकाशन होता है। आरम्भिक संस्कृत-ज्ञान के लिए यह सहायक पत्र है। **भारती विद्या** द्वैमासिक पत्रिका है। इसके सम्पादक स्वामी चिन्मयानन्द हैं। यह मकरन्दनगर (फतेहगढ़) से सन् १९५० से प्रकाशित हो रही है। मधुरवाणी पत्रिका के अनुसार—

एकान्तमनोरम आकारः मसृणतमानि पत्राणि, क्रान्तदर्शिनः विचाराः, सरससुन्दरभावबन्धुरा च लेखशैली ओजस्विनीप्रसादभूयिष्ठा च भाषा अत्युपयुक्ता अचर्चितपूर्वा वैविध्यपूर्णाः विषयाः देवभाषाराष्ट्रभाषयोः मधुर-मिलनं हृदयंगमो रससंगमश्चेत्येवमादिरेवात्र समुदितः सर्वो गुणानां गणः इमां

---

१. अर्वाचीन संस्कृत साहित्य पृ० २८७

भारतीविद्यां नाम्नीं द्वैभाषिकमासिकपत्रिकां पत्रिकासाम्राज्यसिंहासन एव प्रतिष्ठापयति। भारते भातु भारतीविद्या। यद्यप्यत्र पत्रे संस्कृतहिन्द्योः समावेशःमाध्वीकमृद्वीकमेलनवत् शोभते।[1]

सन् १९५६ में **अमरवाणी** पत्रिका का प्रकाशन श्रीगंगानगर (राजस्थान) से हुआ। यह पाक्षिक पत्रिका थी। यह श्री जीवनदत्त के सम्पादकत्व में कुछ समय के लिए प्रकाशित हुई थी।

प्रयाग विश्वविद्यालय की संस्कृत परिषद् की ओर से **सुरगीः** वार्षिक पत्रिका का प्रकाशन सन् १९५९ से आरम्भ हुआ। इसमें डा० बाबूराम सक्सेना जैसे धुरन्धर विद्वानों का सहयोग था।

डा० हरिदत्त पालीवाल के सम्पादकत्व में **काव्यालोकः** पत्र सन् १९६० से प्रकाशित हो रहा है। यह कायमगंज (उत्तर प्रदेश) से प्रकाशित किया जाता है। इसमें हिन्दी गीतों का संस्कृत अनुवाद अधिक संगीतमय रहता है।

गुरुकुलमहाविद्यालय ज्वालापुर (हरिद्वार) से **भारतोदयः** प्रकाशित हो रहा है। यह मासिक पत्र है और अनवरत प्रकाशित हो रहा है। आर्यसमाज का मुख पत्र है। इसमें कई सुन्दर निबन्ध प्रकाशित हुए हैं। समाचारपत्रों का इतिहास नामक ग्रन्थ में इसकी भूरि भूरि प्रशंसा है। उसके अनुसार भाषा और विचारों की दृष्टि से ज्वालापुर के गुरुकुल महाविद्यालय का 'भारतोदय' सर्वश्रेष्ठ पत्र है। इसमें मेरा लेख **कालिन्दी** संस्कृत पत्रिका का विस्तृत विवरण प्रकाशित हुआ है।

विभूति (देहरादून), भारती (जयपुर), कालीकमलक्षेत्रपत्रिका (हृषीकेश) आदि संस्कृत-हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में अनेक संस्कृत में निबन्धादि प्रकाशित हो रहें हैं, जिनका आकलन परिवेष से बाहर है।

संस्कृत और अंग्रेजी

अमृतसन्देशः पत्र का प्रकाशन तिरुमलाई श्रीनिवासी त्रिलिंग महाविद्यालय पीठ की ओर से सन् १९३८ से आरम्भ हुआ था। सी० वी० रेड्डी इसके सम्पादक थे। इसमें भारतीय संस्कृत के विषय में प्रकाश डाला जाता था।[2] इसका प्रकाशन विजयवाड़ा से किया जाता था। **आन्ध्रमहाभारतम्** पत्र का प्रकाशन सन् १९५९ से आरम्भ किया गया। यह पत्र 'टेम्पुल स्ट्रीट ककिनद'

---

१. मधुरवाणी १७.४

२. शंकरगुरुकुलम् १.३

से प्रकाशित होता है। इसके सम्पादक टी० बुच्छी राजू व प्रकाशक पी० एस्० प्रकाशदीक्षित हैं। यह साहित्य और संस्कृति प्रधान पत्र है।[1]

एनल्स आफ दि भण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट षाण्मासिक पत्र का प्रकाशन सन् १९१८ से पूना से आरम्भ हुआ। आज भी यह प्रकाशित हो रहा है। डा० दाण्डेकर, डा० बेलंकर आदि विश्रुतविद्वानों का सहयोग रहता है। इसमें लगभग चारसौ पृष्ठ रहते हैं। इसमें कतिपय अप्रकाशित ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ है। धर्म-सूत्र (शंखप्रणीत ५.२) मधुसूदनसरस्वती विरचित कृष्ण-कुतूहल नाटक (१.३) तथा कभी कभी अन्य निबन्ध भी प्रकाशित हुए हैं। इसमें प्रधानतः अंग्रेजी में लेख होते हैं। **भारतीय विद्याभवन बुलेटिन** पत्रिका का प्रकाशन सन् १९४७ से आरम्भ हुआ। इसका प्रकाशन स्थल चौपाटी रोड, बम्बई है। जे० एच्० दवे इसके सम्पादक हैं। यह समाचार प्रधान पत्रिका है। इसमें संस्कृत विश्वपरिषद् शाखाओं का समाचार, सुभाषित, कालिदासादि जयन्ती समारोहों का विवरण, संस्कृत में भाषण, प्रशस्ति, संस्थाओं का विवरण, आदि विषय प्रकाशित किए जाते हैं। इसके अतिरिक्त कभी अर्वाचीन संस्कृत ग्रन्थ भी प्रकाशित हुए हैं। **ब्रह्मविद्या** अड्यार लाइब्रेरी मद्रास की पत्रिका है। यह पत्रिका सन् १९३७ से प्रकाशित हो रही है। इसके प्रथम विभाग में अंग्रेजी भाषा में संस्कृत के सम्बन्ध में निबन्ध रहते हैं। द्वितीयभाग में प्राचीन और अर्वाचीन संस्कृत ग्रन्थों का प्रकाशन होता है। इसका वार्षिक मूल्य आठ रुपये है। यह त्रैमासिक पत्रिका है। इसमें धर्म, दर्शन आदि विषय-सम्बन्धी निबन्ध प्रकाशित हुए। एन० श्रीरामशर्म, वे० राघवन्, के० कुन्जुन्नी राजा आदि इस पत्रिका के सम्पादक हैं। पत्रिका में अनुवादों और अनेक अप्राप्य ग्रन्थों का प्रकाशन होता है। **बुलेटिन आफ दि गवर्नमेन्ट ओरियन्टल मैन्युस्क्रिप्ट लाइब्रेरी** पत्रिका सन् १९५२ से मद्रास से प्रकाशित हो रही है। इसके सम्पादक टी० चन्द्रशेखरन् हैं। उद्यान पत्रिका में इसकी समालोचना है। तदनुसार—

अमुद्रितपूर्वा इमे इह इदम्प्रथमं मुद्रयित्वा प्रकाश्यन्त इति जानन्तः सन्तः सन्तुष्येयुः। अत्र संस्कृतश्लोकमयी अन्योक्तिमालां अप्पयदीक्षितकविना प्रणीता इति निर्दिश्यते। एकामेव मातृकामाश्रित्य महता परिश्रमेण परिशोध्य अयं प्राचीनपुस्तकशालाध्यक्षः श्रीचन्द्रशेखरार्यः इमां कृतिं प्रकाशितवानिति विदुषां प्रमोदस्थानमेतत्। इतोऽपि परिष्कारसापेक्षाणि बहूनि स्थलानि सन्तीत्यस्माकं भाति।[1]

जर्नल आफ दि केरल यूनीवर्सिटी ओरियन्टल मैन्युस्क्रिप्ट लाइब्रेरी

---

१. उद्यानपत्रिका २५.५-८

पत्रिका त्रिवेन्द्रम् से सन् १९५४ से प्रकाशित हो रही है। इसके सम्पादक मण्डल में महाकवि राव साहब साहित्यभूषण, एम्० गोपाल पिल्लई, व्ही० न० रामस्वामी आदि हैं। इसका वार्षिक मूल्य चार रुपये है। प्रधान सम्पादक के० राघवन् पिल्लई हैं। इसके स्तोत्र, चम्पू, नाटक आदि अर्वाचीन और प्राचीन ग्रन्थ प्रकाशित किए गए। **जर्नल आफ दि ओरियन्टल इन्स्टीट्यूट एम्० एस्० यूनीवर्सिटी आफ बरोडा** त्रैमासिक पत्र सन् १९५१ से प्रकाशित हो रहा है। इसके सम्पादक जी० एच्० भाट हैं। इसके हर अंक में लगभग सौ पृष्ठ रहते हैं। इसमें भी कभी कभी संस्कृत के ग्रन्थों का प्रकाशन होता रहता है। **जर्नल आफ दि ओरियन्टल रिसर्च** त्रैमासिक पत्रिका मद्रास से प्रकाशित हो रही है। इसका प्रकाशन सन् १९२७ से आरम्भ हुआ था। डा० वे० राघवन् आदि उच्चकोटि के विद्वानों की संरक्षता इसे प्राप्त है। वास्तव में यह कुप्पूशास्त्री शोधमण्डल मद्रास-४ की पत्रिका है। इसके प्रत्येक अंक में सौ पृष्ठ रहते हैं। **जर्नल आफ दि श्री वेंकटेश्वर यूनीवर्सिटी ओरियन्टल इन्स्टीट्यूट** पत्रिका का प्रकाशन सन् १९५८ से आरम्भ हुआ। इसके सम्पादक टी० ए० पुरुषोत्तम महाभाग है। इसमें कई अर्वाचीन संस्कृत ग्रंथ प्रकाशित हुए। जैसे गुरुरामकवि विरचित सुभद्राधनंजयनाटक (३-४-२) आदि। इसमें प्रकाशित टी० वेंकटाचार्य का कादम्बरी रसस्यन्दः अच्छी रचना है।

मध्यभारती पत्रिका का प्रकाशन सन् १९६२ से आरम्भ हुआ। इसका प्रकाशन जबलपुर विश्वविद्यालय से हुआ है। इसके प्रथम वर्ष के अंक में रुद्रचन्द्रदेव प्रणीत 'उपारागोदया' नाटिका तथा सिद्धसेन रचित गुणवचन-द्वात्रिंशिका ग्रन्थ प्रकाशित हुए।

ओरियन्टल थाट का प्रकाशन सन् १९५४ से आरम्भ हुआ। यह त्रैमासिक पत्र है। यह डा० जी० व्ही० देवस्थली के सम्पादकत्व में प्रकाशित हुआ। यह पत्र कृष्ण मन्दिर पंचवटी नाशिक, बम्बई से प्रकाशित हुआ। **ओरियन्टल कालेज मैगजीन** कलकत्ता संस्कृत विद्यालय की पत्रिका है। यह पत्रिका सन् १९५३ से प्रकाशित हो रही है। प्रबोध चन्द्र लहिरी इसके सम्पादक थे। इसमें संस्कृत में निबन्ध मिलते हैं। **पूना ओरियन्टलिष्ट** त्रैमासिक पत्रिका है। इसका प्रकाशन ओरियन्टल बुक एजेन्सी, शुक्रवार पेठ पूना-२ से हो रहा है। इस पत्र के आरम्भिक सम्पादक एच्० एल्० हरियप्पा थे। सन् १९३६ से यह पत्र प्रकाशित हो रहा है। **पुराणम्** षाण्मासिक पत्र है। इसका प्रकाशन सन् १९५८ से हो रहा है। 'आत्मा पुराणं वेदानाम्' इसका उद्देश्य है। इसका वार्षिक मूल्य बारह रुपये है। सम्पादक मण्डल में राजेश्वर शास्त्री द्राविड,

वासुदेवशरण अग्रवाल, डा० वे० राघवन् आदि हैं। यह पत्र रामनगर वाराणसी से प्रकाशित हो रहा है।

सज्जनतोषिणी पत्रिका सन् १९०३ में प्रकाशित हुई थी। यह श्री गौड़ीय मठ मद्रास से प्रकाशित की जाती थी। यह मासिक पत्रिका थी और कुछ समय तक इसका प्रकाशन एकमात्र संस्कृत में हुआ था।[१] **शारदापीठप्रदीपः** पत्र शारदापीठ द्वारका से सन् १९६१ से प्रकाशित हो रहा है। डा० पी० एस्० मोदी इसके सम्पादक हैं। सन् १९२० के लगभग वर्द्धवान से संस्कृत भारती पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ हुआ। वाराणसी से 'संस्कृत भारती' पत्रिका आरम्भ हुआ था। सम्भवतः यह वही पत्रिका है। कुछ विद्वानों ने इसे 'संस्कृतभारती' नामक त्रैमासिक संस्कृत पत्रिका से भिन्न माना है।[२] **संस्कृत क्रिटिकल जर्नल** पत्र ओरियन्टल नाविलटी इन्स्टूट कलकत्ता से प्रकाशित हुआ।[3] आर० वी० कृष्णमाचारी के सम्पादकत्व में 'संस्कृत पत्रिका' का प्रकाशन कुम्भकोणन् से हुआ था। यह पत्रिका सन् १८९६ से प्रकाशित हुई थी। सन् १९०८ से **संस्कृत जर्नल** का प्रकाशन श्रीरंगन् से आरम्भ हुआ।[४]

संस्कृत रिसर्च त्रैमासिक पत्रिका थी। इसका प्रकाशन सन् १९१५ से आरम्भ किया गया था। इसका प्रकाशन स्थल बैंगलौर था।[५] **दि जर्नल आफ दि तंजोर सरस्वती महल लाइब्रेरी** पत्रिका सन् १९३९ से प्रकाशित हो रही है। यह एस्० गोपाल पिल्लई के सम्पादकत्व प्रकाशित हुई। **विश्व भारती** पत्रिका शान्तिनिकेतन विश्वविद्यालय से सन् १९४५ से प्रकाशित हो हो रही है। इसका वार्षिक मूल्य दश रुपये है। यह वार्षिक पत्रिका है।

उपर्युक्त अंग्रेजी पत्र-पत्रिकाओं के अतिरिक्त प्राचीन समय से ही अनेक ऐसी पत्र-पत्रिकायें हैं, जो द्विभाषिक रही हैं। ऐसी पत्र-पत्रिकाओं का उद्देश्य संस्कृत का सामान्य ज्ञान कराना रहता है या फिर अप्रकाशित महत्त्वपूर्ण ग्रंथों का प्रकाशन है। **संस्कृत रीडर** (सन् १८८७) तथा **संस्कृत टीचर** (सन् १८९४) इस प्रकार के प्रमुख पत्र हैं। अन्तिम का प्रकाशन गिर गांव से हुआ

१. National Library India Catalogue of Periodical News-papers and Gazette, p. 36.
२. अर्वाचीन संस्कृत साहित्य पृ० २८९
३. British Union Catalogue of periodicals, p. 25
४. वही०
५. वही०

था। इनके अतिरिक्त **जर्नल आफ दि विहार एण्ड ओड़ीसा रिसर्च सोसाइटी** (१६१५ ई०) तथा **जर्नल आफ दि अन्नामलाई यूनीर्वासिटी** (१६३८ ई०) आदि श्रेष्ठ पत्र हैं, जिनमें महनीय संस्कृत ग्रंथ प्रकाशित हुये हैं। कुम्भकोणम् संस्कृत कालेज मैगजीन (१६६६ ई०) ऐसी ही गणनीय श्रेष्ठ पत्रिका है। **वागर्थ** (दिल्ली), **इन्डोलाजिकल स्टडीज** (संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय), **प्राचीज्योति** (कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय), **मैसूर ओरियन्टलिस्ट** (मैसूर) आदि इस समय प्रकाशित श्रेष्ठ पत्र हैं।

उपर्युक्त पत्र-पत्रिकाओं के अतिरिक्त अनेक ऐसी पत्र-पत्रिकायें हैं, जिनकी गणना यहाँ संभव नहीं है, तथापि उनमें समय समय पर संस्कृत निवन्धों का प्रकाशन हुआ है।

वीसवीं शताब्दी में असंख्य संस्कृत मिश्रित पत्र-पत्रिकायें प्रकाशित हुई। विश्वविद्यालय, महाविद्यालय, विद्यालय, शोध-संस्थाएं आदि स्थानों से प्रकाशित होने वाली पत्र-पत्रिकाओं में संस्कृत के परिशिष्ट रहते हैं। उनमें समय-समय पर कई मौलिक और साहित्यिक सामग्री संस्कृत में उपलब्ध होती है। अतः यहाँ उन्हीं पत्र-पत्रिकाओं का उल्लेख किया है, जिनका संस्कृत की दृष्टि से विशेष महत्त्व रहा है।

मासिक-पुस्तकें

उन्नीसवीं शती से ही मासिक पुस्तकों के प्रकाशन की परम्परा चली आ रही थी। उन्नीसवीं शताब्दी में यह परम्परा और आगे वढ़ी। इस प्रकार की मासिक पुस्तकों में काव्यादि ग्रन्थों का प्रकाशन होता है। अर्वाचीन संस्कृत साहित्य को प्रकाशित करने वाली मासिक पुस्तकों को अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। **केरलग्रन्थमाला** चतुर्मासिकी पुस्तिका है। इसका प्रकाशन दक्षिण मलावार से होता है। 'मित्रगोष्ठी' के अनुसार इसमें सरल काव्य-ग्रन्थ प्रकाशित हुए।[1] **ग्वालियरसंस्कृतग्रन्थमाला** पुस्तक सन् १६३६ में प्रकाशित की गई थी। इसका वर्ष में एक वार प्रकाशन होता था, जिसमें कुल तीन सौ पृष्ठ रहते थे। इन तीन सौ पृष्ठों में अप्रकाशित ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ। इसमें विशेष कर उन्हीं ग्रन्थों को प्रकाशित किया जाता था, जो वेद, वेदांग, धर्म और दर्शन से सम्बन्धित रहते थे। सदाशिव शास्त्री मुसलगांवकर इसके प्रवन्धक थे।[2] **प्राच्यवाणी ग्रन्थमाला** कलकत्ता से प्रकाशित हो रही है। इसमें उच्चकोटि के काव्यग्रन्थों का प्रकाशन हो रहा है।

---

१. मित्रगोष्ठी ३.१०

२. सागरिका २.४ पृ० ३४२-४३

विजयनगरसंस्कृतग्रन्थमाला रामनगर (वाराणसी) से प्रकाशित हो रही है। सन् १९१४ से **व्याकरणग्रन्थावाली** मासिक पुस्तिका का प्रकाशन आरम्भ हुआ। इसका स्थल श्रीमुनित्रय मन्दिर कार्यालय, ६६ बैल्लाल् वेतुराई मद्रास था। इसके सम्पादक श्रीवत्सचक्रवर्ती अभिनव भट्ट वाण रायंपट्टैः कृष्णमाचार्य थे। तदनुसार—

प्रतिमासं प्राचार्यमाणा संचिकेयम्। अस्यामत्युत्तमा व्याकरणग्रन्थाः प्रकाश्येरन्। अत्र गदाचन्द्रिकाबृहच्छन्दरत्नादिकं प्रकट्यते।[1]

शारदा ग्रन्थमाला नाम से दो मासिक पुस्तकों का प्रकाशन प्रयाग और वाराणसी से हुआ। 'शारदा' नामक पत्रिका के सम्पादक चन्द्रशेखर शास्त्री ने संस्कृत ग्रन्थमाला का प्रकाशन प्रयाग से आरम्भ किया था। 'शारदा' पत्रिका के अनुसार—

'विदितमेवैतत् शारदाप्रणयिनां यत्साम्प्रतं विज्ञानबहुलेऽपि काले भारतीयेषु विशेषतः संस्कृतज्ञेषु न विलोक्यते विज्ञानाभिरुचिः। केचन विज्ञानानुशीलनाय समुत्सुका अपि ग्रन्थाभावान् नात्मनो मनोरथं सफलयितुं शक्नुवन्ति। संस्कृतग्रन्थप्रकाशका हि तेषामेव ग्रन्थानां प्रकाशनं साधु मन्यन्ते येषां सुखेन विक्रयो भवेत्, यत्प्रकाशनेन च भवेद् धनागमः। अत एव संस्कृते साम्प्रतमभिनवा ग्रन्था न प्रकाश्यन्ते। अतएव च दिनानुदिनं भवति ह्रासः संस्कृतविद्यायाः।

समयानुकूलमेव शिक्षणं फलति। परिष्कृतनिपुणा दक्षिणादिभिः सत्क्रियन्ते स्मेत्यभवत् प्रचारः संस्कृतज्ञेषु परिष्कारस्य साम्प्रतं नामशेषास्ते दक्षिणादातारो यजमानाः। साम्प्रतिकी शिक्षा आत्मनो लक्ष्यमभियाति। साम्प्रतं विज्ञानशिक्षैव बहुमता जगति। विज्ञानप्रचारार्थं बहुप्रयन्ते पाश्चात्या विद्वांसः तेषां संसर्गात् भारते विज्ञानशिक्षणं श्रेयसे मन्यसे।

शारदानिकेतनतः 'शारदाग्रन्थमाला' अचिरादेव प्रकाशयिष्यते। अत्र वैज्ञानिका एव ग्रन्थाः मुद्रापयिष्यन्ते।[2]

दूसरी 'शारदाग्रन्थमाला' का प्रकाशन गौरीनाथ पाठक के सम्पादकत्व में शारदा-भवन काशी से हुआ था। लगभग १९२६ ई० के पूर्व यह पुस्तक प्रकाशित हुई थी।

---

१. व्याकरणग्रन्थमाला १.१

२. शारदा (प्रयाग) १.३

श्रीरविवर्मसंस्कृतग्रन्थावली का प्रकाशन सन् १९५३ से त्रिपुन्तुरा से आरम्भ हुआ था। इसके सम्पादक पण्डितराज श्री के० अच्युतपोतुवाला थे। इस पत्रिका में सभी प्रकार से ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ है। उद्यानपत्रिका में इसका विवेचन किया गया है।[1]

वाराणसी संस्कृत विद्यालय से सन् १९२० से अमुद्रित प्राचीनसंस्कृत ग्रन्थों को प्रकाशित करने के लिए **सरस्वती भवनग्रन्थमाला** का प्रकाशन आरम्भ हुआ था। डा० गंगानाथ झा का यह उपक्रम था, जो सफल हुआ।[2] आचार्य वासुदेव द्विवेदी के सम्पादकाध्यक्ष में 'सार्वभौमप्रचारमाला' मासिक पुस्तक का प्रकाशन हुआ है।[3]

उपर्युक्त मासिक पुस्तकों के अतिरिक्त 'कोचीन संस्कृत सीरीज' और 'वेदान्तग्रन्थरत्नमाला' तथा 'काव्यमाला' (औरैया) आदि मासिक पुस्तकें प्रकाशित हुईं।

इस सर्वेक्षण से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि संस्कृत पत्रकारिता का आयाम बहुत विशाल और व्यापक है। प्रायः सभी भारतीय भाषाओं में देव-वाणी को महत्त्व मिलता है। पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण तक भारत के संस्कृत भाषा के विरोध का स्वर कभी नहीं रहा है। अतः सभी भारतीय भाषायें संस्कृतभाषा के सम्पर्क से उत्तरोत्तर प्रगति कर रही हैं। यही कारण है कि अधिकांश द्वैभाषिक और त्रैभाषिक पत्र-पत्रिकाओं में संस्कृत अवश्य प्रकाशित होती है।

—:०:—

१. उद्यान पत्रिका २७.५ पृ० ६८
२. सारस्वती सुषमा १.१ पृ० ३२
३. अर्वाचीनसंस्कृतसाहित्य पृ० २८८

पंचम अध्याय

संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं का उद्देश्य

संस्कृत भाषा में पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन समारम्भ में पाश्चात्य प्रभाव मूल कारण प्रतीत होता है। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य भाग में साहित्य सर्जन के इस अभिनव पथ को अपनाकर संस्कृतज्ञों ने संस्कृत को आगे बढ़ाने का सफल प्रयास किया।[१] संस्कृत-प्रेमिओं ने देखा कि अर्वाचीन साहित्य के अभाव में संस्कृत भाषा के प्रति नूतन श्रद्धा संवर्धित नहीं हो रही है। अत एव अनेक उत्साह सम्पन्न पण्डितों ने अनेक बाधाओं के रहने पर भी संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन आरम्भ किया।[२] उपर्युक्त सर्व सम्मत उद्देश्य के अतिरिक्त प्रत्येक पत्र-पत्रिका के विशिष्ट उद्देश्य भी थे।

उन्नीसवीं शती में धार्मिक भावना और साहित्यिक अभिरुचि पत्र-पत्रिकाओं के लिए प्रधान प्रेरणायें थीं। तथैव बीसवीं शती में भी अनेक धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक भावनाओं का जागरण हुआ। इस समय अगणित पत्र-पत्रिकायें प्रकाशित की गई और उनमें विविध प्रकार की सामग्री मिलती है। संस्कृत में नवचेतना जागरण का महत्त्वपूर्ण कार्य बहुत कुछ पत्र-पत्रिकाओं के द्वारा ही सम्पन्न हुआ है।[3]

उन्नीसवीं शती की पत्र-पत्रिकाओं का विवेचन करते समय उनके प्रकाशन के उद्देश्यों का सम्यक् निरूपण किया गया है। प्रकृत अध्याय में बीसवीं शती में प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं के उद्देश्य का ही निरूपण किया गया है। प्रसंगोपात्त उन्नीसवीं शती में प्रकाशित पत्र-पत्रिकायें भी चर्चित हैं।

मृत-भाषा-मृषात्व

संस्कृत **मृत-भाषा** है, इस भ्रान्ति को दूर करने के लिए कुछ पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन आरम्भ हुआ। कुछ पाश्चात्य संस्कृत विद्वानों की भी यह धारणा है कि संस्कृत कथमपि मृत भाषा नहीं है, क्योंकि उसमें आज अनेक पत्रिकायें प्रकाशित हो रहीं है, जो इसके जीवितत्त्व को प्रमाणित करती है। **विन्तरनित्स** के अनुसार—

---

१. Adyar Library Bulletin XX-1·2 p. 25
२. Modern Sanskrit Literature, p. 207.
३. वही०

'Sanskrit is not a 'dead language' even today. There are still at the present day a number of Sanskrit periodicals in India. To this very day poetry is still composed and works written in Sonskrit.[1]

मैक्स मूलर ने भी संस्कृत भाषा के प्रति इस मृषा अपवाद का निराकरण करते हुए कहा है कि संस्कृत का प्रचार भारत की प्रत्येक दिशाओं में समान रूप से है। संस्कृत आज भी सर्वत्र बोली जाती है। कन्याकुमारी से काश्मीर तक, कच्छ से कामरुप तक संस्कृत किसी न किसी रूप में जन साधारण की भाषा है। यथा—

'Sanskrit may be said to be still the only language that is spoken over the whole extent of the vast country.'[2]

डा० राघवन्[3] और प्रो० चिन्ताहरण चक्रवर्ती[4] आदि के भी संस्कृत की अनेक पत्र-पत्रिकाओं में इस सम्बन्ध में अनेक सुष्ठु तथा तर्कपूर्ण निबन्ध मिलते हैं। संस्कृत चन्द्रिका, सूनृतवादिनी, मित्रगोष्ठी, संस्कृतम्, संस्कृत-साकेत आदि पत्र-पत्रिकाओं का प्रमुख उद्देश्य संस्कृत की सजीवता प्रमाणित करना और उसकी प्राणशीलता को निरन्तर बढ़ाना ही उपलब्ध होता है। अप्पाशास्त्री ने सूनृतवादिनी साप्ताहिकी पत्रिका द्वारा संस्कृत भाषा में जीवनी शक्ति का संचार किया और घोषित किया—

'ये किल मन्यते मृतैव भगवती संस्कृतभाषेति, अवश्यमवेक्ष्यताममीभिः सूनृतवादिनी साप्ताहिकी संवादपत्रिका, येन जीवत्येवाद्यापि सर्वाङ्गीणसौष्ठव-शालिनी संस्कृतभाषेति शक्येतामीभिरवबोद्धुम्'[5]।

संस्कृत देवभाषा है, अतः इसे मृतभाषा कहना वदतोव्याघात दोष है। संस्कृत साकेत साप्ताहिक पत्र में इस विषय के अनेक लेख प्रकाशित हुए, जिनमें सप्रमाण दिखाया गया है कि संस्कृत कथमपि मृत भाषा नहीं है, अपितु जीवित भाषा है। यथा—

प्रलपन्तु नामेदानी केऽपि कूपमण्डूका निधनं गतेति भगवती देववाणी। अमरा या वाणी सा कथमपि न मृता अपितु मरणधर्मरहिता दिनानुदिनं

---

१. History of Indian Literature, I. p, 45
२. India what can it teach us. p. 71
३. Modern Sanskrit Literature, p. 192.
४. Journal of the Ganganath Jha Research Institute, Vol XIII p. 153.
५. सूनृतवादिनी १.१

प्रोल्लसति संस्कृतभाषा गीर्वाणवाणी। ये निरर्थकं प्रलपन्ति संस्कृतं मृत-भाषा तेषां कथनमेवास्त्याश्चर्यकरम् । अमराणां भाषा मृता इति वदतो-व्याघात एव'[1] ।

उन्नीसवीं तथा बीसवीं शती के अनेक कवियों ने भी अपनी अपनी रचनाओं में में इस मृतात्व अतथ्य को सतर्क समाप्त करने का दृढ़ संकल्प किया है। अनेक काव्यों एवं महाकाव्यों के रचयिता **महेशचन्द्र तर्कचूड़ामणि** संस्कृतचन्द्रिका के नियमित लेखक और महाकवि थे। **दिनाजपुरराजवंशम्** नामक महाकाव्य में उन्होंने संस्कृत भाषा के इस मृतत्व अपवाद का निराकरण इस प्रकार किया है—

सरस्वतीयं देवानां नित्यनूतनयौवना।
नित्यनूतनरूपा च नित्यनूतनभूषणा ॥
ये तु केचिदिमां दिव्यां भारतीममृतामपि ।
मृता वदन्तो निन्दन्ति दूरात्परिहरन्ति च ॥
मूढास्ते पण्डितम्मन्या बालास्ते बृद्धमानिनः।
अन्धास्ते दृष्टिमन्तोऽपि प्राप्ता गजनिमीलिकाम् ॥
पश्यन्तोऽपि न पश्यन्ति ते हि ब्राह्मीमितस्ततः ।
अद्यापि ब्राह्मणमुखे नृत्यन्तीं रुचिरैः पदैः ॥

संस्कृत के लेखक अपने आप को समकालीन घटनाओं के सम्पर्क में रखते रहे हैं। अतएव उस प्रकार के साहित्य का निर्माण होता रहा है। बीसवीं शती में संस्कृत को जीवित और जन-भाषा सिद्ध करने के लिए अनेक तर्क उपस्थित किये गये।[2] **संस्कृतं जीवति वा न वा** पर अनेक गम्भीर और तर्कसिद्ध निबन्ध प्रायः प्रत्येक पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादकीय स्तम्भों में प्रकाशित हुए। पत्र-पत्रिकाओं के प्रत्येक नूतन वर्ष में इस भ्रान्ति को दूर करने के लिए निबन्ध प्रकाशित किये हैं। बीसवीं शती में प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं का यह प्रमुख उद्देश्य दिखाई देता है। संस्कृत आयोग की सूचना के अनुसार आज संस्कृत का व्यापक प्रसार और प्रचार पत्र-पत्रिकाओं के द्वारा हो रहा है और इन पत्र-पत्रिकाओं ने संस्कृत को नव जीवन दिया है। संस्कृत के महत्त्व और प्रचार के लिए इन पत्र-पत्रिकाओं ने एक अकथनीय महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है। यथा—

---

१. संस्कृत साकेत १.३
२. सागरिका २.१

'Not the least item in this endeavour in keeping up Sanskrit as a living language is the publication of Sanskrit Journals from different parts of the country.

The Sanskrit Journal has played a valuable part in making Sanskrit a live medium of expression of contemporary thought and of discussion of current problems, and in infusing new life into that language.'[1]

इस प्रकार मृतभाषा के अपवाद को दूर करने के लिए अनेक पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ। श्रीमानप्पा इस सम्बन्ध में प्रारम्भ से ही पूर्ण सजग थे। अतः **संस्कृतचन्द्रिका** और **सूनृतवादिनी** पत्रिकाओं में अनेक वार संस्कृतज्ञों को उद्‌बोध प्रदान किया। उनके अनुसार—

प्रलपन्तु नामेदानीं केऽपि कूपमण्डूका निधनं गता भगवती देववाणीति। ये पुनः वङ्गेषु विलसन्तीं दाक्षिणात्येषु दीव्यन्तीं नेपालेषु नृत्यन्तीं राजस्थानेषु राजन्तीं महाराष्ट्रेषु माद्यन्तीं गुर्जरेषु गर्जन्तीं काश्मीरेषु कूजन्तीं अन्येषु च तेषु तेषु प्रदेशेषु विद्वद्वदनारविन्देषु विहरन्तीमभिनवकविगणप्रदत्तकरावलम्बां पुनः प्ररूढयौवनामिव सर्वाङ्गसुन्दरीमेनां पश्यन्ति। कथं नाम ते स्वप्नेऽपि व्याहरेयुः पञ्चत्वं गता देवसरस्वतीति। कियन्ति वा सम्प्रति मनोरमाणि काव्यानि नोत्पद्यन्ते यानि किल विलोकनमात्रेण प्रत्याययेयुरद्यापि निर्वीवत्वं च ससारत्वं च सरसरमणीयत्वं च संस्कृताया गिरां देव्याः।[2]

संस्कृत और राष्ट्रभाषा

'संस्कृत राष्ट्रभाषा वनाई जाय' इस सम्बन्ध में अनेक तक पूर्ण निवन्ध प्रकाशित हुए। काली प्रसाद प्रसाद शास्त्री ने **अस्यामेव शताब्द्यां संस्कृतं राष्ट्रभाषा भवेत्** उद्देश्य लेकर **अनरभारती** पत्रिका का प्रकाशन किया। परन्तु पत्रिका शीघ्र वन्द हो जाने के कारण इस दिशा में सफलता न मिली। जिस प्रकार चीन देश की राष्ट्रभाषा चीनी है ठीक उसी प्रकार भारत की राष्ट्रभाषा भी भारती (संस्कृत) है।[3]

संस्कृत के प्रति निष्ठा

कुछ पत्रिकाओं का प्रकाशन संस्कृत के प्रति महती श्रद्धा और आस्था के कारण हुआ। चन्द्रशेखर शास्त्री ने प्रयाग से **शारदा** का प्रकाशन इसी उद्देश्य को लेकर किया था। पत्रिका मनोविनोदात्मक थी। शारदा के प्रारम्भिक

---

१. Report of the Sanskrit Commission, 1955-57 p. 219-220

२. संस्कृत चन्द्रिका ६.१-३

३. अर्वाचीन संस्कृत साहित्य, पृ० ६.

पृष्ठों में इसका स्पष्ट उल्लेख मिलता है—

सा शारदा शारदचन्द्रशुभ्रा
मनोहराभा स्थिरसम्प्रसादा ।
विनाशयन्ती जगदन्धकारम्
मनः प्रमोदाय मनीषिणां स्यात् ॥

सम्प्रत्यपि दर्शनेषु शिल्पेषु कलास्वितिहासेषु च प्रबन्धान् प्रणीय शिल्पाद्युपदेशैर्निजप्रातिवेशिकान् कृतार्थयन्तो यथापुरं भारतीयाः यथाऋणान्यपाकृत्य पूर्वजानां मुखान्युज्ज्वलयेयुरात्मनश्च कलङ्कः क्षालयेयुरित्यभिनवः समारम्भोऽस्माकम् । यथा ज्ञानबुभुक्षानलस्तृप्तिमीयात् तथेयं प्रयतिष्यते । किं विज्ञानविनोदानुपहरन्ती स्फुटालापैः सचेतषां मनोविनोदयन्ती बालिकेव स्खलत्पदाविन्यासेयं शारदा[1] ।

संस्कृत के प्रति श्रद्धा और उसके प्रति प्रेम की भावना सर्वत्र प्रतीत होती है। स्वामी भगवदाचार्य का कथन है कि यह संस्कृत भाषा मेरी प्रियभाषा है। इसमें मैं अपने पूर्वजों का चित्रपट देखता हूँ। इस भाषा में मेरे जीवन का सारा इतिहास चित्रित है। यह मेरे लिए अमृत है। उससे भी बढ़ कर वस्तु है। इस भाषा में इस ग्रंथ को लिखकर मैं समझता हूँ कि मैंने अपनी प्रिय से प्रिय वस्तु का सुन्दर उपयोग किया है।[2] संस्कृत साकेत, उद्यानपत्रिका और भारतवाणी पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन की मूलभूत प्रेरणा संस्कृत के प्रति निष्ठा ही है। यथा—

'संस्कृतविषयकेण प्रेम्णा, संस्कृतविषयि चिन्तया च प्रकाशितेयं भारतवाणी । संस्कृतविषयको योऽयं स्नेहातिशयः श्रद्धा आत्मीयता च इदानीं केवलं तात्त्विकप्रामाण्यम् अनुभवति तत्सर्वं प्रत्यक्षे साकारीकर्तुं कार्ये परिणमयितुं च भारतवाण्याः अवतारः, तदेव च तस्याः जीवितकार्यम्'[3] ।

भारती पत्रिका का प्रकाशन हमने प्रारम्भ किया है। वह देववाणी संस्कृत के प्रेम से प्रेरित होकर ही किया है। इसमें हमारा एकमात्र आधार यदि कोई है तो वह है हमारे देशवासियों का संस्कृत प्रेम' ।[4]

---

१. शारदा १-१
२. भारतपारिजातम् पृ० २५
३. भारतवाणी १.१
४. भारती १.४

लोक-जागरण और समाज-हित

बीसवीं शती में विभिन्न भाषाओं में पत्र-पत्रिकायें प्रकाशित हो रहीं थीं। भौतिक प्रगति के साथ ही साथ आध्यात्मिक प्रगति की ओर ध्यान दिलाने के लिए, लोक में संस्कृत भाषा का जागरण करने के लिए **संस्कृत सन्देश** (नेपाल) और **मालवमयूर** आदि पत्रों का प्रकाशन हुआ।

कुछ पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन समाज को दृष्टि में रख कर किया गया। यह आवश्यक था कि भारतीय संस्कृति का परिचय समाज को कराया जाय। अत एव **उषा, दिव्यज्योति, वैजयन्ती, मधुरवाणी** आदि प्रमुख पत्रिकायें समाज हित को लेकर प्रकाशित हुईं।

वसुधैव कुटुम्बकम्

प्रणवपारिजात नामक पत्रिका का प्रकाशन विश्वशान्ति की प्रतिष्ठा करने के उद्देश्य से आरम्भ हुआ। वसुधैव कुटुम्बकम् की प्राचीन विचार-धारा फिर से पत्र-पत्रिकाओं द्वारा अभिव्यक्त हुई। अनेक सम्पादकीय लेखों में विश्वशान्ति की चर्चा उपलब्ध होती है। यथा—

'इतः संस्कृतराष्ट्रभाषासम्मेलनस्याधिवेशनं इतश्च विश्वशान्तिपथान्वेषणं भारतवर्षमधिवसतां केषांचित् कर्णकुहरद्वारं आहन्तीति लक्ष्यद्वयमेव पुरतो निधाय मर्त्यभूमाववतरति प्रणवपारिजातः। विश्वशान्तिमूलभूतप्रेरणेयमस्ति तथा च सुरभारती सेवा श्रीभगवन्नाममहिमप्रचारश्चेति'[1]।

संस्कृत-शिक्षण

बालसंस्कृतं, संस्कृतं, सहस्रांशु, ज्ञानवर्धिनी आदि पत्र-पत्रिकाओं का उद्देश्य छात्र-हित रहा है। इसमें **बालसंस्कृत** को सर्वाधिक सफलता मिली। सरल संस्कृत भाषा में बालकों के शिए विभिन्न विषयों पर प्रहेलिका, निबन्ध आदि का प्रकाशन इस पत्र में हुआ है। व्याकरण, दर्शन, धर्म, कवि-चर्चा आदि प्रमुख विषयों का भी समावेश किया गया। छोटी-छोटी कहानियाँ प्रकाशित हुईं। बालकों के लिए रुचिकर सामग्री का ध्यान रखा गया। यथा—

पत्रेऽस्मिन् प्रकाशितसाहित्यं सर्वेभ्यः रोचते, विशेषेण विद्यालयीयेभ्यश्छात्रेभ्यः। संस्कृतं नाम मुखं द्वारं वा भारतीयानां विज्ञानानां मन्दिरस्य। यावद् भारतीयाश्छात्रा संस्कृतं न पठेयुस्तावद् भारतीयविज्ञानस्य द्वारं वर्तते तेषां कृते पिहितम्। अतएव बालकानां प्राथमिकज्ञानमपेक्षते। तेषां कृत एव बाल-संस्कृतस्य प्रकाशनं प्रामुख्येण क्रियते। तथापि—

---

१. प्रणवपारिजातः १.१

बाले वृद्धे नवे यूनि कुट्यां ग्रामे गृहे पुरे
संस्कृतस्य प्रचाराय प्रभूयाद्बालसंस्कृतम् ।[1]

इसलिए इस पत्र में एकमात्र छात्रोपयोगी सामग्री प्रकाशित होती रही है। पाक्षिक पत्र **सहस्रांशु** का निम्न उद्देश्य था—

पत्रेऽस्मिन् बालकानां विनोदाय ज्ञानाय च या च सामग्री यानि च चित्राणि प्रकाश्यन्ते, ये च केचन विचित्राः समाचाराः प्रकाश्यन्ते ते प्रायः बालकानां कृत एव[2] ।

इस पत्र में वैज्ञानिक विषयों और वैज्ञानिकों की जीवनी पर सामग्री सचित्र प्रकाशित होती थी। ज्ञानवर्धिनी पत्रिका की निम्न कामना थी—

संस्कृतज्ञानसंवृद्ध्यै संस्कृतोद्धार-कर्मणे।
छात्राणां च तथान्येषां प्रवृत्तिर्जायतामिति ॥

स्वतंत्र भारत में विद्या और विज्ञान की प्रत्येक शाखा की वृद्धि के लिए ऐसे प्रयासों की नितान्त आवश्यकता है, जिससे हमारे राष्ट्र की संस्कृति और सभ्यता अपने पूर्व गौरव के उस उच्चतम शिखर पर पुनः पहुंचे, जिस पर प्राचीन काल के ऋषियों, महर्षियों ने उसे पहुँचाया था। भारतीय संस्कृति की प्राणभूत संस्कृत भाषा का प्रचार बालकों के लिए आवश्यकता है। तदनुकूल सामग्री भी सरल और विनोदात्मक शैली में प्रकाशित होना चाहिए। बालोपयोगी सामग्री का प्रकाशन सर्व प्रथम **विद्यार्थी** पत्र से प्रारम्भ हुआ था। दामोदर शास्त्री इस दिशा में सतत प्रयत्नशील रहे।

धर्मप्रचार

धार्मिक विषयों का ज्ञान कराने के लिए, धर्म की भौतिकता और आध्यात्मिकता समझाने के लिए, ऐहिक और पारलौकिक उन्नति तथा अभ्युदय के लिए अनेक पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ। ब्राह्मणधर्म की पूर्ण प्रतिष्ठा महामहोपाध्याय लक्ष्मण शास्त्री, अनन्तकृष्ण शास्त्री आदि के द्वारा **ब्राह्मण-महासम्मेलन** नामक पत्र से हुई। यथा—

घोरेऽस्मिन् धर्मविप्लवसमये विशुद्धसनातनधर्मप्रचाराय प्रयतमानं ब्राह्मण-महासम्मेलननामकं पत्रमस्ति।[3]

इसके सम्बन्ध में महामहोपाध्याय नारायण शास्त्री ख्रिस्ते ने अमरभारती

१. बालसंस्कृतम् १.१
२. सहस्रांशु १.१
३. ब्राह्मणमहासम्मेलनम् १.१

पत्रिका में इसे **धर्मरक्षणक्षेत्रे रविरिव**[1] कहा हैं। इस पत्र का प्रमुख उद्देश्य सनातन धर्म की रक्षा और धार्मिक साहित्य का प्रकाशन था। महामहोपाध्याय अनन्त-कृष्णशास्त्री, श्री राजेश्वर शास्त्री द्राविड़, ताराचरण भट्टाचार्य, श्री जीव न्यायतीर्थ आदि विद्वानों से धार्मिक जनता को यथेच्छ प्रोत्साहन मिला।

मथुरा से प्रकाशित होने वाले **सद्धर्मः** का धार्मिक विवेचन प्रधान प्रति-पाद्य विषय था। बहुश्रुत पत्र का उद्देश्य **वैदिकधर्मप्रवृत्तिपुरःसरं संस्कृत-साहित्यवर्द्धनेच्छास्य पत्रस्योद्देश्यमस्ति** था। **वैदिकमनोहरा** पत्रिका वैष्णव धर्म विषयक है। इस पत्रिका का प्रधान प्रयोजन वैष्णव धर्म का प्रसार और प्रचार करना है। धार्मिक महामण्डल वाराणसी से प्रकाशित साप्ताहिक **पण्डित पत्रिका** का उद्देश्य निम्नांकित था—

रागलोभभयादिति निमित्तोपस्थावपि सत्यभूतस्य सिद्धान्तस्य प्रकाशनम्, तथा प्राणिनामभ्युदयः निःश्रेयस्मूलभूतस्य श्रौतस्मार्तलक्षणस्य धर्मप्रतिष्ठा-पनम्, प्रचारणम्, तथाचरतः सहयोगप्रदानमस्या उद्देश्यमिति[2]।

उन्नीसवीं तथा बीसवीं शती की अनेक पत्र-पत्रिकायें धर्म प्रधान रही हैं। इनमें धार्मिक विचारों एवं सिद्धान्तों का उहा-पोह तथा वैदिक धर्म की संप्रतिष्ठा, आत्मा-परमात्मा, इहलोक-परलोक तथा शाश्वत वाणी का समुद्-घोष मिलता है। **धर्मो रक्षति रक्षितः, यतो धर्मस्ततो जयः** का जयघोष एवं **धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः** का स्वर ही अधिकतर तीव्र रहा है। भारत की आधार शिला धर्म पर प्रतिष्ठित है। यह धर्म प्राण देश है। यहाँ शास्त्र चर्चा भी उसी का अंग है। अतः यहाँ अनेक साधन-सम्पन्न धार्मिक संस्थायें हैं, जहाँ से पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ है। इन संस्थाओं के संचालक तपस्वी, साधक, स्वाध्यायरत, धर्म प्रचारक और धर्म प्रवक्ता सन्त हैं। ये ऋषिकल्प हैं। विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त के प्रवर्तक आचार्य रामानुज स्वामी के जन्मस्थान पेरुटुम्बूर (धर्मपुरी) से, प्रतिवादभयंकर मठ कांची से क्रमशः विचक्षणा और **वैदिकमनोहरा** का प्रकाशन हुआ है। अनेक अर्चावतार स्थानों से भी पत्रिकायें प्रकाशित हुई हैं। मठों ने विशेष भूमिका धर्म प्रचार के लिए निभाया है। धर्म या अध्यात्म की दुन्दुभि मन्दिरों से निकल कर सर्वत्र फैली है। **वैष्णवसन्दर्भ** पत्र में वैष्णवधर्म पर रुचिकर और ठोस सामग्री मिलती है। गीता में योगेश्वर कृष्ण का कथन है कि भारत में धर्म-विप्लव

---

१. अमरभारती १.१

२. पण्डितपत्रिका १.१

होने पर मैं स्वयं उस विप्लव का लय तथा धर्म की संस्थापना करने आता हूँ। अतः इन पत्र-पत्रिकाओं में धर्म की पुनः स्थापना हुई है।

दर्शन-प्रचार

दार्शनिक विषयों के प्रतिपादन में संलग्न कतिपय पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ। दार्शनिक पत्र-पत्रिकाओं का प्रमुख उद्देश्य सरल संस्कृत भाषा में दार्शनिक प्रवृत्तिओं को समझाना और सिद्धान्तों का प्रतिपादन करना है। दार्शनिक ग्रन्थों का प्रकाशन और उनका विवेचन करना सामान्यतया इन पत्र-पत्रिकाओं के अन्तर्गत पाया जाता है। **पीयूषपत्रिका** पूर्व मीमांसा दर्शन प्रधान पत्रिका है। इसमें मीमांसा ग्रन्थों का सटीक प्रकाशन हुआ है। पीयूष पत्रिका का निम्न प्रयोजन था—

पुष्टिपथस्य पारमार्थिकतत्त्वं जिज्ञासूनां कृते पत्रिकेयं सविशेषमादरमर्हति। वृथावादकोलाहलान् परिहरति पत्रिकेयमिति।

कुम्भकोणम् की अद्वैत सभा से प्रकाशित **ब्रह्मविद्या** दार्शनिक पत्रिका है। इस पत्रिका का प्रधान उद्देश्य अद्वैत वेदान्त का प्रतिपादन करना है। बेलगांव से प्रकाशित **विद्या** का उद्देश्य परा विद्या प्राप्त कराना था। इस पत्रिका में दार्शनिक सिद्धान्तों का गवेषणापूर्ण विवेचन उपलब्ध होता है। माध्वसम्प्रदाय से सम्बन्धित इसमें परा विद्या की प्रशंसा इस प्रकार की गई है—

विमुक्तेर्या पद्यां सुमतिजनबोध्यां विदधती
मनोज्ञार्थान् दद्यात्सततममरोद्यानतरुवत्।
अवश्यं संवेद्याखिलविषयहृद्या च नितरां
परा सेयं विद्या जगति निरवद्या विजयते॥

सारस्वती सुषमा में दार्शनिक निबन्धों का बाहुल्य रहता है। यद्यपि पत्रिका का उद्देश्य शोध-निबन्धों को प्रकाशित करना है, तथापि दार्शनिक शोध-निबन्धों की प्रधानता के कारण इस पत्रिका को दार्शनिक पत्रिका के नाम से अभिहित किया जा सकता है। ब्रह्मविद्या आदि अन्य कई पत्र-पत्रिकाओं का उद्देश्य दार्शनिक ग्रन्थों का प्रकाशन रहा है। **पीयूष पत्रिका** ने इस दिशा में अच्छा कार्य किया। इसमें ग्रन्थों के प्रकाशन के साथ ही तात्त्विक आलोचना भी रहती थी। **उद्यानपत्रिका** और **सहृदया** पत्रिकाओं में अच्छे दार्शनिक निबन्धों का प्रकाशन हुआ है। महामहोपाध्याय रामावतार शर्मा ने **मित्रगोष्ठी** पत्रिका के अपने नये दर्शन-सिद्धान्त की स्थापना की, जो **परमार्थदर्शन** नाम

से प्रसिद्ध है। इस ग्रंथ का कुछ भाग **संस्कृतसंजीवन** पत्र में प्रकाशित हुआ है। इस ग्रन्थ में सूत्र, वार्तिक, भाष्य की पद्धति अपनायी गयी है।

साहित्य-सर्जना

अर्वाचीन और प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों को प्रकाशित करने के लिए अनेक पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ है। **काशीविद्यासुधानिधिः** पत्रिका से इस परम्परा का प्रचलन हुआ और आगे चलकर इस परम्परा का विशेष विकास हुआ। जिन पत्र-पत्रिकाओं का उद्देश्य एकमात्र संस्कृत के प्राचीन ग्रन्थों को प्रकाशित करना था, वे अधिक दिन तक जीवित न रह सकीं। अर्वाचीन साहित्य को लेकर प्रकाशित होने वाली पत्र-पत्रिकाओं का योगदान प्रशंनीय है। इस प्रकार की पत्र-पत्रिकाओं में पाठकों के लिए पर्याप्त सामग्री रहती है। पाठकों को अपनी रुचि की सामग्री उपलब्ध होने के कारण वे उसका अध्ययन करते हैं। अर्वाचीन संस्कृत ग्रन्थों को प्रकाशित करने वाली पत्र-पत्रिकाओं में संस्कृतभारती, सूर्योदय, संस्कृतपद्यवाणी, संस्कृतगद्यवाणी, श्रीशंकरगुरुकुलम्, संस्कृतसाहित्यपरिषत्पत्रिका, उद्योत, वल्लरी, सहृदया, मित्रगोष्ठी आदि प्रधान हैं। **संस्कृत चन्द्रिका** और **मंजुभाषिणी** ने इस दिशा में पर्याप्त प्रशंसनीय कार्य किया है। अम्बिकादत्त व्यास रचित **शिवराजविजय** नामक संस्कृत गद्यकाव्य का प्रकाशन सर्वप्रथम **संस्कृत चन्द्रिका** में ही हुआ। सामान्यतया संस्कृत की प्रत्येक पत्र-पत्रिका में अर्वाचीन साहित्य का प्रकाशन अधिक होता है और इस प्रकार नूतन लेखकों को प्रोत्साहित किया जाता है। **संस्कृत भारती** में अनेक अच्छे ग्रन्थ प्रकाशित किये। राजनीतिं विहाय आधुनिक-संस्कृतप्रबन्धानां प्रकाशनमस्यां पत्रिकायां क्रियते ही संस्कृतभारती पत्रिका का प्रधान उद्देश्य था।

संस्कृत पद्यवाणी में एकमात्र संस्कृत पद्यग्रन्थों का प्रकाशन होता था। इसके प्राथमिक निवेदन में कहा गया है—

अस्ति किल सृष्टेरादिकालात् प्रभृत्येव सकलप्राचीनभाषाप्रसूतेः सुरसर० स्वत्या सगौरवा प्रवृत्तिः सकलभुवनेषु व्यतीतेष्वपि कल्पसहस्रेषु विशेषगुण-गरिष्ठायास्तस्या नापचीयते लेशेनापि प्रकर्षसीमा। अद्य यावन्न क्वापि प्रकाशमगमत् कापि तादृशी भाषा या सुरसरस्वतीसाम्येन सुललिता सुघटिता सुनियन्त्रिता च। सन्ति यद्यप्यनेकाः संस्कृतपत्रिकाः सम्प्रत्यपि प्रचरन्त्यो भारतवर्षे सन्ति चानेकाः संस्कृतपरिषदो याः सुरसरस्वतीमिमां विशेषेण समुन्नमयिषवः समनुतिष्ठन्ति प्रयत्नसहस्राणि तथापि तासामशेष-विधिव्यापृततया न ताभिः सम्पद्यते प्रभूततमः सुगमायाः पद्यपद्धतेरपि समुत्कर्षः दूर एव तु कथा चित्रकाव्यप्रहेलिकासमस्याश्लोकांशपूरणादी-

नाम्। अतः सप्रयोजनात्र तादृशी कापि पत्रिका गीर्वाणवाणी प्रतीका या निरन्तरायं प्राधान्येन पद्योन्नतिपरायणा पद्यप्रचुरा च नितरामलंकृत्यमार्ये स्वशक्ति विनियोजयितुमिति। सम्प्रति पुनस्तस्या एव लक्ष्यभूतां समभिलक्ष्य प्राचीनतमसंस्कृतसाहित्यविभूतिसम्वलमत्त्वा अर्वाचीनसंस्कृतसाहित्यग्रन्थानां प्रकाशनं पत्रिकायामस्यां भविष्यति।'[1]

शंकरगुरुकुलम् का निम्नांकित उद्देश्य था—

अत्र हि अतिदिव्यकाव्यग्रन्थानां केनाप्याचुम्बितपूर्वाणां चम्पूग्रन्थानां नवविधरसरत्नपेटिकायमानानां नाटकप्रवन्धानां असंस्तुतपूर्वाणामतिप्रशस्त-शास्त्रप्रवन्धानां अनाकर्णितविद्वदुपन्यासानां विविधवृत्तान्तविशेषाणां च समावेशनान्नूनमियं पत्रिका रत्नाकरस्थलीव प्रभूततरग्रन्थरत्नसमावेशभूमि-श्चकास्ति।[2]

इस प्रकार की पत्र-पत्रिकाओं में अनेक ग्रन्थ प्रकाशित किये जाते थे, परन्तु साथ ही साथ विविध विषयों से सम्वन्धित अन्य निवन्धों का भी प्रकाशन होता था। संस्कृतचन्द्रिका, वल्लरी, मंजुभाषिणी, संस्कृतसाहित्यपरिष-त्पत्रिका, संस्कृत पद्यवाणी, भारती, दिव्यज्योति आदि पत्र-पत्रिकाओं में सभी प्रकार की सामग्री का समाहार मिलता है।

हास्य

अनेक पत्र-पत्रिकाओं में हास्य-विषयक कविता, निवन्ध आदि प्रकाशित किए जाते हैं, तथापि एक मात्र हास्यरस को प्रकाशित करने वाला **उच्छृं-खलम्** प्रथम पत्र था। तदनुसार—

'नेदं पत्रं धनिनां प्रशंसायै धनोपार्जनाय वा प्रकाशितम्। नास्य वा महाराजस्तेषां गुरवो वा संरक्षकाः संचालकाश्च। पत्रमिदं हास्यरसमुररीकृत्य हास्यरसैकप्रियाणां पाठकानां कृते प्रकाशितम्'[3]।

इसके अतिरिक्त ज्योतिष्मती, मालवमयूर आदि पत्र-पत्रिकाओं के हास्यांक प्रकाशित हुये। **मालवमयूर** पत्र अपनी हास्य सामग्री के लिए सुविख्यात रहा है। इसमें सिनेमा तर्ज पर संस्कृत में गीतों का अधिक प्रकाशन हुआ। अर्वा-चीन विषयों पर भी पर्याप्त सामग्री मिलती है। मनोविनोद हृदय को विकसित करता है और वह तथ्य सहज ही हृदय ग्राह्य हो जाता है। **भारतवाणी** पत्रिका

---

१. संस्कृतपद्यवाणी १.१
२. शंकरगुरुकुलम् १.१
३. उच्छृंखलम् १.१

में अनेक हास्यपूर्ण कहानियाँ प्रकाशित हुई हैं । अथ **जामातृगवेषणा** निबन्ध व्यंगात्मक हास्य का उत्कृष्ट निदर्शन है, जिसका प्रकाशन **शारदा** पत्रिका में हुआ है ।[1] कभी कभी न्याय शास्त्र के पंचावयव के माध्यम से भी सुन्दर, तर्क सम्मत हास्य प्रस्फुटित हुआ । यथा—

पतिर्मे विस्मृतिस्वभावः [प्रतिज्ञा]
प्राध्यापकत्वात् [हेतु]
यो यः प्राध्यापकः स सः विस्मृतिस्वभावः [उदाहरण]
तथा चायम् [उपनय]
तस्मात्तथा[2] [निगमन]

ग्रन्थ-प्रकाशन

संस्कृत में बहुत ऐसी पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ, जिनका एक मात्र उद्देश्य ग्रन्थों को प्रकाशित करना रहा है । इस प्रकार की पत्र-पत्रिकाओं में एकमात्र ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ है । अर्वाचीन और प्राचीन ग्रन्थों को प्रकाशित करने वाली पत्र-पत्रिकाओं में संस्कृतमहामण्डलम्, श्रीचित्रा, रविवर्मग्रन्थावली, गीर्वाणभारती, संस्कृतप्रतिभा आदि प्रमुख रूप से हैं । कुछ ऐसी भी पत्र-पत्रिकायें प्रकाशित हुई है, जिनका उद्देश्य साहित्य विधाओं से सम्बन्धित सभी प्रकार की सामग्री को प्रकाशित करना है, तो कुछ का प्राचीन परम्परा सम्बन्धित विधायें । काव्यमाला, काव्याम्बुधिः आदि अन्तिम कोटि की पत्र-पत्रिकायें हैं ।

प्रत्येक समय में संस्कृत में रचना होती है, तथापि प्रकाशन के अभाव के कारण उनका प्रकाशन सम्भव नहीं होता । पत्र-पत्रिकाओं के द्वारा यह कार्य सम्पन्न हुआ । महामहोपाध्याय लक्ष्मणशास्त्री द्राविड़ ने **संस्कृतमहामण्डलम्** के उद्देश्य का संकेत करते हुए लिखा था—

अत्र संस्कृतमहामण्डलस्य मुखपत्रे धर्मज्ञानविज्ञानोपकारिणो दर्शनेतिहासपुराणसाहित्यादिनानाशास्त्रविषयकाः सरलाः सारगर्भाश्च प्रबन्धा नवनवा समाचाराः रसभावमनोहराः श्लोकाः, अन्ये चोपयोगिनो ग्रन्थसमालोचनप्रभृतयो विषयाः प्रकाश्येरन् ।[3]

---

१. शारदा [पुणे] गणराज्यविशेषाङ्क १.१-७ पृ० ५८-६६
२. भारतवाणी ४.२१-२२
३. संस्कृतमहामण्डलम् १.१

डा० वेंकट राघवन् द्वारा सुसम्पादित **संस्कृतप्रतिभा** का निम्नांकित उद्देश्य है—

विदुषां मध्येपि लब्धप्रसरोऽयं वरावर्ति अभिप्रायः यत् योरपादेशे यथा लातिनभाषा, तथा भारते संस्कृतमपि मृता भाषेति । परन्तु सत्यात् सुदूरापेतोऽयमभिप्रायः। यद्यप्यधुना भारते नेदं संस्कृतं सार्वजनिकी व्यावहारिकी भाषा भवति, तथापि नेदं कदाचिदपि विदुषां मध्ये व्यवहाराद्विरता। वस्तुतस्तु इयमेकैव भाषा प्रान्तीयविभागानां भेदिका, आकाश्मीरं आकुमारि च विद्वद्व्यवहारायोपयुज्यते।

दौर्भाग्यमेवेदं यत् सम्यक् प्रकटनोपायाभावात् प्रायस्सर्वा इमा नूतनसंस्कृत-रचना निलीना एव वर्तन्ते इति। अत एकान्ततो नूतनसंस्कृतसाहित्यस्य कृते संस्कृतप्रतिभा षाण्मासिकी पत्रिकाप्रकाशनीयेति अध्यवसितम्।

प्रबन्धप्रेषकैरिदं सततं मनसि निधेयं यदेषा पत्रिकातिनूतनसंस्कृतसन्दर्भ-प्रकाशनार्थेति । प्रतिसंचिकं खंडकाव्यानि, रूपकाणि, खण्डकथाः, गद्योपन्यासाः मुद्रितनूतनसंस्कृतसाहित्यग्रन्थानां विमर्श इति विविधं विषयजातं प्रकाशितं भविष्यति ।[1]

वाराणसी से प्रकाशित **सूक्तिसुधा** पत्रिका में अनेक ग्रन्थों का निरन्तर प्रकाशन हुआ है। यथा—

विदितमेवेदं भवतां यत्किल साम्प्रतं सर्वतः प्रचलति तत्तद्देशभाषोन्नति-क्रमे गीर्वाणवाण्येवं सर्वोत्कृष्टापि अपेक्षितावधानावलम्बनविरहेण सर्वतो विरलप्रचारा दुर्दिनच्छन्नेव दिवसलक्ष्मीः प्रत्यहमपचीयमाना मानसे परं खेदं जनयति तद्भाषानुरागिणां सहृदयानाम् ।

एतस्या नूनतायाः प्रमार्जनाय सुकरेषूपायेषु सूक्तिसुधा नाम्नी पत्रिका प्रतिमासं प्रकाशयिष्यते। अस्यां चाभिनवाः काव्यनाटकचम्पूप्रभृतयः केचन-ग्रन्थाः पुरातनाश्च केचित्साहित्यग्रन्थाः सटिप्पणीकाः काचित्समस्यापूर्तयः ग्रन्थाः प्रकाश्यन्ते ।[2]

श्रीमन्महाराजकालेजपत्रिका, सूक्तिसुधा, श्रीचित्रा और **संस्कृतप्रतिभा** में उच्चकोटि के संस्कृत ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ है।

संस्कृत का प्रचार

संस्कृत भाषा का प्रचार जन-साधारण तक हो—इस उद्देश्य को लेकर

---

१. संस्कृतप्रतिभा १.१

२. सूक्तिसुधा १.१

अनेक पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ है। सूनृतवादिनी, मंजुभाषिणी, भाषा, संस्कृतसाकेत, संस्कृतं, भवितव्यं आदि साप्ताहिक पत्र-पत्रिकाओं का उद्देश्य संस्कृत भाषा का प्रसार और प्रचार रहा है। संस्कृतिः दैनिक पत्र का भी यही उद्देश्य था। बहुश्रुत, भारतवाणी, संस्कृतप्रचारकं, दिव्यज्योतिः, कौमुदी, मालवमयूर आदि इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय हैं।

भारतवाणी का उद्देश्य संस्कृत के प्रति प्रेम तथा प्रचार प्रमुख था। यथा—

संस्कृतविषयकेण प्रेम्णा संस्कृतविषयिण्या चिन्तया च प्रकाशितमिदं पत्रम्। संस्कृतं विना न संस्कृतिः इति निःसन्दिग्धम् सामान्यजनानां कृतेऽस्माभिः पत्रिकेयं प्रकाश्यते। यतश्च संस्कृतस्य काठिन्यप्रवादेन पराङ्मुखीभूतायाः जनतायाः संस्कृताभिमुखीकरणमस्माकं उद्देश्यः। अतः सुबोधा भाषा शोभनं बहिरङ्गं तथा नावीन्यवैविध्यादिना भूषितमन्तरङ्गमिति सर्वात्मना पत्रिका आकर्षकत्वनिर्माणे वयं सविशेषं प्रयतिष्यामहे[1]।

भारती का उद्देश्य निम्न है—

संस्कृतभाषायाः प्रचारः सरलेन संस्कृतेन सर्वत्र भवतु इत्यस्य पत्रस्योद्देश्यम्[2]।

संस्कृतप्रचारकं की निम्न उद्घोषणा है—

संस्कृतस्य प्रचारं स्यात्
हिन्दुस्थान-गृहे-गृहे।
पत्रोद्देश्यमिदं ज्ञेयं
तथा संस्कृतिरक्षणम्॥

साप्ताहिक **भवितव्यं** का उद्देश्य निम्नांकित है—

भवितव्यं नाम साप्ताहिकं पत्रं संस्कृतभाषाप्रचारार्थं प्रकाश्यते।[3]

संस्कृतं साप्ताहिक पत्र के अनुसार—

संस्कृतभाषाप्रचारार्थाय पत्रमिदं साकेततः प्रकाशयिष्यते साप्ताहिकरूपेण[4]।

मासिक **दिव्यज्योतिः** का उद्देश्य इस प्रकार है—

सरलैः सरसैः सुबोधैः सर्वस्मिन् संसारे संस्कृतस्य प्रसारः, साहित्यान्तर्गतानां सकलानां कलानां समन्वेषणं, संसारस्य हितसम्पादनं एवं लौकिका-

---

१. भारतवाणी १.१
२. भारती १.४
३. संस्कृतभवितव्यम् १.१
४. संस्कृतम् १.१

लौकिकस्वातन्त्र्यस्य प्राप्तिः, पत्रस्य इमानि उद्देश्यानि वर्तन्ते[1]।

समस्यापूर्तिः

समस्यापूर्तिः, संस्कृतकाव्यकादम्बिनी और विद्वत्कला पत्रिकाओं का उद्देश्य समस्याओं को प्रकाशित करना था। अमरभारती, संस्कृतचन्द्रिका, कौमुदी आदि पत्रिकाओं में यद्यपि समस्याओं का प्रकाशन सदैव होता रहा है तथापि वह उनका गौण रूप था। **काव्यकादम्बिनी और विद्वत्कला** दोनों पत्रिकाओं में समस्या और समस्यापरक श्लोकों के अतिरिक्त अन्य कोई सामग्री नहीं प्रकाशित हुई है। विद्वत्कला शीघ्र ही बन्द हो गई परन्तु काव्यकादम्बिनी अधिक समय तक चलने के कारण इसमें अधिक सामग्री का प्रकाशन हो सका है। इन पत्रिकाओं के मूल में नये लेखकों को प्रोत्साहित करना था। नव साहित्य सर्जन की प्रवृत्ति इन पत्र-पत्रिकाओं से प्रवाहित हुई।

समाचार-प्रकाशन

विभिन्न प्रकार के समाचारों का प्रकाशन साप्ताहिक और दैनिक पत्र-पत्रिकाओं में होता है। सूनृतवादिनी, संस्कृतसाकेत, भाषा, संस्कृतसन्देश, (काठमाण्डू) भारतवाणी आदि पत्र-पत्रिकाओं में समाचारों का प्रकाशन होता है। कलकत्ता से प्रकाशित होने वाली **देववाणी** एकमात्र समाचार प्रधान पत्रिका थी। विशेपकर स्वतन्त्रता के पश्चात् इस प्रकार की पत्र-पत्रिकायें अधिक प्रकाशित हुई, जिनका उद्देश्य संस्कृत-भाषा में समाचार आदि से अवगत कराना प्रतीत होता है।

संस्कृत-संजीवन

श्रीः और ज्ञानवर्धिनी पत्रिकाओं का उद्देश्य संस्कृत भाषा का संजीवन था। **श्रीः** त्रैमासिकी पत्रिका में कहा गया है कि यह पत्रिका संस्कृतभाषा को जीवित भाषा सिद्ध करने के लिए प्रकाशित हुई है। ज्ञानवर्धिनी ज्ञानवर्धन के साथ ही साथ संजीविनी थी।

संस्कृतज्ञानसंवृध्यै संस्कृतोद्धारकर्मणे।
छात्राणां तथान्यैषां प्रवृत्तिर्जायतामिति ॥

पद्य-प्रकाशन

कलकत्ता से प्रकाशित **पद्यगोष्ठी** पत्रिका का उद्देश्य एकमात्र पद्यात्मक प्रबन्धों, गीतों आदि को प्रकाशित करना था—

त्रैमासिकी संस्कृतपद्यपत्री
मुखोपमा संस्कृतपद्यगोष्ठयाः।

---

१. दिव्यज्योतिः १.१

पद्येन बद्धा निखिला निबन्धा
भवेयुरस्या न हि गद्यनद्धाः ॥

क्लिष्टकाव्य-प्रकाशन

पद्यवाणी पत्रिका का उद्देश्य क्लिष्ट काव्यों का प्रकाशन था। प्रहेलिका, बिन्दुमती, दत्ताक्षरा, एकाक्षरकाव्य आदि प्रकार के काव्यों को प्रोत्साहन मिला। इस पत्रिका के द्वारा संस्कृत साहित्य की अनेक नवीन काव्यविधाओं का प्रकाशन हुआ, जिनका उल्लेख बाणभट्ट आदि कवियों ने किया था। **पद्यवाणी** पत्रिका में सभी प्रकार के क्लिष्ट काव्यों का प्रकाशन हुआ।

विज्ञान

युग के अनुकूल सामान्य लेखकों की विचार-धारायें प्रवाहित होती हैं। **मनोरमा** संस्कृत-पत्रिका का उद्देश्य आधुनिक विषयों को संस्कृत भाषा में प्रकाशित करना था। यथा—

नवीनां वैज्ञानिकाविर्भावानां समयमनुवर्तमानानां च विषयाणां सरलसरसया रसबन्धुरया च वाण्या प्रकाशनं मनोरमायाश्चरमाभिसन्धिः।[1]

गवेषणा

स्वतन्त्रता के पश्चात् संस्कृत भाषा को विशेष प्रोत्साहन मिला। अनेक शोध-कार्य किये गये। छोटे-छोटे निबन्धों द्वारा शोध सामग्री अनेक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई। सरस्वती भवनानुशीलन तथा सारस्वतीसुषमा पत्रिकाओं का निम्नांकित उद्देश्य था—

'अनुसन्धानमूलकनिबन्धानां प्रकाशनार्थं सरस्वतीभवनानुशीलनपत्रिकायाः प्रकाशनमभवत्'[2]।

'सारस्वतीसुषमायाः पत्रिकायाः सरस्वतीभवनस्थैर्विद्वद्भिर्विद्यालयीयाध्यापकैरन्यैश्च स्वोपज्ञविचारविचारकैर्निबद्धानामनुसन्धानमूलकानामन्येषाञ्चोपयोगिनां प्राचीनानां नवीनानां वा निबन्धानां प्रकाशनेन संस्कृतज्ञेषु अद्य यावदमुद्रितं चोत्कृष्टं विभिन्नशाखासमन्वितं संस्कृतवाङ्मयमधिकृत्य मौलिकानुसन्धानप्रवृत्तेः सम्यगालोचनाप्रवृत्तेश्चोत्पादनं प्रोत्साहनं चैव मुख्यमुद्देश्यमिति'[3]।

सागर विश्वविद्यालय से प्रकाशित **सागरिका** त्रैमासिकी पत्रिका का उद्देश्य

---

१. मनोरमा १.१
२. सरस्वतीभवनानुशीलनम् १.१
३. सारस्वती सुषमा १.१

अनुसन्धान कार्य को प्रोत्साहित करना है । इसमें अनुसन्धान निवन्धों का प्रकाशन विशेष रूप से हो रहा है । अनुसन्धान की प्रवृत्ति के जागरण के कारण अन्य अनेक पत्र-पत्रिकाओं में अनुसन्धानत्मक निवन्ध प्रकाशित हो रहे है । अप्पा शास्त्री ने **संस्कृतचन्द्रिका** में अनेक उच्चकोटि के अनुसन्धान प्रधान निवन्धों को प्रकाशित किया था ।

सागरिका शोध प्रधान पत्रिका है । तदनुसार—

संस्कृतभारती स्वतन्त्रताया अरुणोदये पुनः केनचिदपूर्वेण विलासेन पराक्रममाणा दृश्यते इति सर्वेषां सहृदयानामाह्लादकरी प्रतीतिः । नित्यमेव विविधभिधः काव्य-दर्शन-धर्मेतिहासालोचना-विज्ञान-संस्कृति-विषयकाः प्रभूततराः पुरातना अभिनवाश्च ग्रन्थाः प्रकाशिताः सन्तः भावकचेतांसि भावयन्ति, सौमनस्यं च जनयन्ति । तथापि तादृशेनापि साहित्यसंवर्धनेन न सम्यक् परितुष्टा वयं स्वयं किंचिदधिकमपि कर्त्तुं समुद्यताः ।

अध्यात्मविषयाणां काव्यात्मकभावादीनां च सूक्ष्मतमवैशिष्ट्यानि निदर्शयितुं संस्कृतवाक्यरीतिरनुत्तमैव । कालक्रमेण महामनीषिणां चिरन्तनप्रहतत्वेन च विशेषोऽयं संजातो गीर्वाणवाण्याः । नान्या काचिद् भाषा तादृशं सामर्थ्यं लब्धुं क्षमा इत्येतत् सन्धार्य भारतेऽभिनवोन्मेषशालिनी संस्कृतभारती सततमभिनवाभिः कृतिभिः परिपोष्यमाणा सती भारतीयसंस्कृतिं पुष्णातु इत्यस्माकं संकल्पः । अस्यां पत्रिकायां युगानुरूपं किंचिदभिनवं साहित्यं संवर्धयितुं प्रधानप्रवृत्तिरस्माकम् ।[1]

सागरिका में संस्कृत पत्रकारिता विषय पर मेरे दस शोध निवन्ध प्रकाशित हुए हैं ।

व्याकरण

मंजुषा पत्रिका का प्रकाशन व्याकरण की समस्याओं का समाधान करने के लिए हुआ था । क्षितीशचन्द्र व्याकरण के प्रकाण्ड पण्डित थे । मंजुषा में अनेक व्याकरण विषयक निवन्धों का प्रकाशन सदा होता रहा है । **व्याकरण-ग्रंथावली** का प्रकाशन व्याकरण संबंधी प्राचीनार्वाचीन ग्रन्थों को प्रकाशित करने के लिए हुआ था ।

संस्कृति-विमर्श

भारतीय संस्कृति के विशाल स्वरूप को समक्ष रखने के लिए उषा, आर्यप्रभा आदि पत्रिकायें प्रकाशित हुई । वैदिक संस्कृति का सुन्दर विवेचन **उषा** पत्रिका में हुआ है । दैनिक **संस्कृतिः** के प्रकाशन की मूल प्रेरणा संस्कृति है । **भारतसुधा** पत्रिका का निम्नांकित उद्देश्य था—

१. सागरिका १.१ पृ० ९३

महाजनो येन गतः पथा इति न्यायेन वयं भारतसंस्कृतिकल्पद्रुमस्य धर्मशास्त्रकलाप्रभृतिशाखानां संजीवनार्थं भारतसुधां पत्रिकां प्रकाशयामि। संस्कृतं विना न संस्कृतिः इति निःसन्दिग्धम्।[1]

धर्म, दर्शन और साहित्य को उद्देश्य में रख कर अधिक पत्र-पत्रिकायें प्रकाशित हुई हैं। संस्कृत पत्रकारिता का मूल उद्देश्य संस्कृत को जीवन्त भाषा सिद्ध करने और साहित्य सर्जन में निहित है।

मित्रगोष्ठी पत्रिका का प्रकाशन महामहोपाध्याय रामावतार शर्मा और विधुशेखर भट्टाचार्य के सम्पादकत्व में बनारस से हुआ था। सम्पादकद्वय संस्कृत भाषा के असमान्य विद्वान् थे। पत्रिका में **मित्रगोष्ठीपत्रिका सम्पादकयोर्दुर्बुद्धिः** नामक निबन्ध का प्रकाशन हुआ है। इसके लेखक सत्येन्द्रनाथ भट्टाचार्य थे। निबन्ध का सारांश इस प्रकार है—

नापृष्टः कस्यचिद् ब्रूयाद् इति सत्यप्युपसर्गे अपृष्टोऽपि हितं ब्रूयात् इति हि अवलम्ब्य, न पुनः पौरीभाग्यात् प्रियतमान् तत्रभवतः किंचिद् हितमुपदेष्टुं दूरस्थस्यापि मे लेखेनायं समुद्यमः।

हितं मनोहारि च दुर्लभं वच इति सम्पादकमहाशयाः भवतामसमीक्ष्यकारित्वं मां नितरां दुनोति। कोऽयं व्यामोह उपागतो भवतामिति न ज्ञायते। पृच्छामि तावत् संस्कृतपत्रिकां प्रचारयतां भवतां का नु खलु समीहितसिद्धिः? किं पितर उद्धार्यन्ते, आहोस्वित् स्वयमेव स्वर्गमारुरुक्षवः स्वर्णरथाधिगमोपायं साधयथ? नहि संस्कृतपत्रिकाप्रचारो नाम नित्येषु नैमित्तिकेषु वा किंचित् कर्म। तत्र न तावत् संस्कृतपत्रिकाप्रचारो भवतां वा भवत् पाठकानां वा स्वर्गादिपारलौकिकं फलं सिद्धं सिद्ध्यति सेत्स्यति वा। न तावत् अर्थाधिगमस्तत्फलम् इति स्वयमेव वेत्थ। कः खलु दुर्भाग्योऽस्ति यः संस्कृतपत्रिकां पठेत्, कस्य वा ईदृशः सुलभः कालः यो नाम भवद्धितार्थं संस्कृतपत्रिकामालोचयन् क्षणमपि यापयेत्, कस्य वा ईदृशं कर्मशून्यं जीवनं अपरिश्रमोपागतञ्च धनं यो हि भवद्वदनारविन्दमवलोकयन् मनागपि उत्सृजतु। किञ्च ग्राहकेभ्य एव धनाधिगमः सम्भावितो भवद्भिः। तत्र वक्तव्यं को नाम भवतां संस्कृतपत्रिकाया ग्राहको भवतु। न तावत् पण्डितमहोदयाः, तेषां गौरवहानसम्भवात्। अतो न पण्डितानां ग्राहकत्वे आशा। नापि विद्यार्थिनाम्। नापि भाषान्तरानुशीलनशीलानाम्। तस्माद् ग्राहकाणां सर्वथाऽभाव एवेति नेयमतिशयोक्तिः।

---

१. भारतसुधा आदर्शांकः

अथ कदाचिद् भवतां शुभग्रहपरिपाकाद् द्वित्राः सम्भवन्त्यपि ग्राहका, अनुगृह्णन्ति तेन भवतः भवदीयां मृतां भाषाञ्च, न ते मूल्यमर्पयेयुः। तस्मात् संस्कृतपत्रिका-प्रचारतो नाधिगमोऽर्थस्येति सिद्धम्। यशोलाभमपि मनोरथमात्रं न तावत् पण्डिताः श्रीमतः प्रशंसेयुः नाप्यपरे प्रशंसाकारणस्यैवावोधात्। अथ लेखन्याः कण्डूयननिवृत्तमेव पुरुषार्थं मन्यध्वे, वाढम्, न तथापि वहिः प्रचारयितुमर्हथ। कामं निधीयतां लिखित्वा मंजूषिकामध्ये, कीटानामपि तावत् क्षणमानन्दोत्सवो भवेत्। तस्माद् यदि हितमिच्छथ, ममोपदेशमनुसरथ, कथयामि एतत्सर्वं परिहाय ईश्वरपद एवं मतिं निवेशयथ किमेतेन परिश्रमेण इति।[1]

इस निवन्ध की भाषा अत्युत्तम है। संस्कृत पत्रकारिता के समक्ष समुपस्थित समस्त समस्याओं का सार इस निवन्ध में है, तथा तर्क प्रणाली का सुन्दर उपयोग किया गया है। परन्तु संस्कृत-पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन का उद्देश्य धनाशा, स्वर्गप्राप्ति अथवा कण्डूयननिवृत्ति कभी भी नहीं रहा है। धन की कमी के कारण अनेक पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन अवश्य वन्द हुआ है। रामावतार शर्मा ने सरल और विनीत भाव से उसका उत्तर देते हुए पत्रिका के प्रयोजन को प्रकट किया—

न स्वर्गस्थितिसिद्धये विलसितः स्वर्णस्फुरत्स्यन्दनः
को ब्रूते ननु पूर्व-पूरुष-गणानुद्धर्त्तुमेषः श्रमः।
न स्मृत्या विहितं न चोदितमथो श्रुत्याऽप्यथो यत्पुनः
तत्सत्यं न तथापि नेदमधुना शिष्टैरनुष्ठीयते॥
न प्रार्थ्यो द्रविणागमो न च यशःसम्भारभेरीरवः
कण्डूतिर्नहि लेखिनीं त्वरयति स्वान्तं न चाप्यस्थिरम्।
मस्तिष्कं विकृतं न जातमसकृत् यत्तत्समालोचनैः
प्रेयन्! प्रादुरभून्नवा ह्यणुतमा पाण्डित्य-दर्पान्धता॥
ऐक्यं नाम रसायनं किमपि तत्प्रीत्या परं पीयताम्
मैत्रीत्येतदनर्घमुज्ज्वलतरं रत्नं जनैर्धार्यताम्।
सम्भूयामरभारतीप्रसरणोद्योगः समाधीयताम्
तेनास्यास्य जयध्वजोऽम्वरतले भूयः समुड्डीयताम्॥

——:o:——

१. मित्रगोष्ठी १.३ पृ० ८१-८३

षष्ठ अध्याय

संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं की समस्यायें

संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं की प्राचीन और अर्वाचीन स्थित पर यदि विमर्श किया जाय तो ऐसा प्रतीत होता है कि उन्नीसवीं और बीसवीं शती में प्रकाशित होने वाली पत्र-पत्रिकाओं को अनेक विषम परिस्थितियों का सामना करना पड़ा है। प्रधान रूप से समस्त संस्कृत पत्र-पत्रिकायें राजनीतिक चेतना से दूर रहीं हैं क्योंकि उनमें अधिक राजनीति सम्बन्धित निवन्ध नहीं उपलब्ध होते है, अपवाद अवश्य हैं। इतना अवश्य है कि स्वतन्त्रता के पूर्व भी कुछ पत्र-पत्रिकाओं में इस प्रकार की सामग्री मिलती है, जिससे प्रतीत होता है कि साहित्यिक अभ्युत्थान के साथ ही साथ राष्ट्रीय भावना का भी अभ्युदय हो रहा था। कतिपय पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन राजनैतिक कुचक्र के कारण वन्द हुआ है। ऐसी पत्र-पत्रिकाओं में सूनृतवादिनी, संस्कृतं, ज्योतिष्मती आदि प्रधान हैं, जो स्वातन्त्र्योत्तर काल का प्रतिनिधित्व करती हैं। इन पत्र-पत्रिकाओं में राष्ट्रीय आन्दोलन धारा को तीव्रतम करने का सफल प्रयास परिलक्षित होता है।

स्वतन्त्रता के पूर्व प्रकाशित होने वाली पत्र-पत्रिकाओं पर तत्कालीन परिस्थितियों का प्रभाव परिलक्षित होता है। साप्ताहिक पत्रों में राष्ट्रीय भावना विशेष रूप से पल्लवित हुई है। विज्ञानचिन्तामणि, मंजुभाषिणी, सूनृतवादिनी, संस्कृतं आदि साप्ताहिक पत्र-पत्रिकाओं में तत्कालीन परिस्थितियों का सुन्दर चित्रण उपलब्ध होता है। उन्नीसवी शती के अन्तिम भाग में दैवी और राष्ट्रीय दोनों प्रकार की परिस्थितियों का दिग्दर्शन तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में यथावत् मिलता है।

सन् १९२० के बाद महात्मा गान्धी के नेतृत्व में सत्याग्रह आन्दोलन अनेक प्रदेशों से प्रारम्भ हुआ। अंग्रेजी राज्य के विरोध में **संस्कृतम्** और **साकेत** साप्ताहिक पत्रों का प्रकाशन हुआ। ज्योतिष्मती पत्रिका में अंग्रेजी राज्य के विरोध में निवन्ध प्रकाशित हुए, जिसके फलस्वरूप ज्योतिमष्ती पत्रिका का प्रकाशन स्थगित करवा दिया गया।[1] राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रवाह

---

१. ज्योतिष्मती १.५

में प्रायः बहुत कम सम्पादक रहे हैं तथापि उनका सर्वथा अभाव था, ऐसा भी नहीं है ।

संस्कृत में इस प्रकार की बहुत ही कम पत्र-पत्रिकायें हैं, जिन्हें राजनैतिक परिस्थितिओं का विशेष समान करना पड़ा है । स्वतन्त्रता के पश्चात् संस्कृत भवितव्यम् जैसे समाचार पत्रों का प्रकाशन हुआ है । स्वतन्त्रता के पूर्व और पश्चात् भी संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं में कोई विशेष अन्तर नहीं आया, क्योंकि संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं का दृष्टिकोण राजनैतिक अत्यल्प था ।

उन्नीसवीं और बीसवीं शती की पत्र-पत्रिकाओं को अनेक अभावों की विषम परिस्थितिओं से आगे आना पड़ा है । यद्यपि उनका सामना पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादक सतर्कता के साथ करने में तत्पर रहे, तथापि ऐसे बहुत कम हैं, जिन्हें उन पर सफलता मिली है । इस अध्याय में उन अभावों के संक्षिप्त दिग्दर्शन से संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं की भयावह परिस्थितियों का ज्ञान किया जा सकता है, जिनके फलस्वरूप उनका निर्बाध प्रकाशन अधिक समय तक न हो सका ।

लेखकाभाव

किसी भी पत्र-पत्रिका के लिए लेखकों की विशेष आवश्यकता होती है । लेखकों के सहयोग से सम्पादक को सफलता मिलती है । पत्र-पत्रिकाओं के विविध स्तम्भों में विविध प्रकार की सामग्री प्रकाशित होती है । उसके लिए विविध प्रकार के लेखकों की आवश्यकता रहती है । लेखक और सम्पादक का परस्पर अन्योन्याश्रय सम्बन्ध भी है । एक सम्पादक प्रौढ़ लेखक न होने पर भी पत्र-पत्रिका का सम्पादन कुशलता पूर्वक कर सकता है । **शारदा** (प्रयाग) पत्रिका के सम्पादक चन्द्रशेखर शास्त्री सफल सम्पादक थे, परन्तु उनका नाम उच्चकोटि के लेखकों में नहीं आता है । वही पत्रिका पूर्ण सफलता प्राप्त कर सकती हैं, जिसका सम्पादक एक विचारक और लेखक हो । **सहृदया, संस्कृतचन्द्रिका** और **मित्रगोष्ठी** पत्र-पत्रिकाओं की सफलता का यही प्रमुख रहस्य था । सम्पादकीय पृष्ठ पत्र-पत्रिकाओं का मूल है, जिस पर पत्र-तरु स्थित रहता है । यह मूल सम्पादक के वैदुष्य और विविध ज्ञान पर निर्भर रहता है । बहुज्ञता या निपुणता सम्पादक के लिए आवश्यक तत्त्व है, परन्तु लेखक विशेष विषय का विशेषज्ञ होने के कारण वह असीमित परिसर से सीमित परिसर में आता है ।

सामान्य सम्पादक के लिए उच्चकोटि के लेखकों का सहयोग आवश्यक है । **दिव्यज्योतिः** पत्रिका में लेखक और सम्पादक को क्रमशः भुज और शीर्ष माना

गया है। यथा—

पत्रकारो यदि शीर्षस्थानीयः प्रकल्प्येत तदा लेखकास्तस्य भुजस्वरूपा इति मन्यन्ताम्। लेखकानां सहयोगादेव पत्रकाराः स्वकर्मक्षेत्रे प्रगतिशीला जायमानाः पर्यन्ते सफलतां, श्रियं, समृद्धिं, यशो, वैभवं चार्जयन्ति। पत्रकाराणां कृते लेखकसहयोगस्तात्त्विकं वस्तु। पत्राणां विविधस्तम्भेषु प्रकाशनयोग्यां साहित्यसामग्रीं लेखका एव निष्कामं प्रदातुमुत्सृजन्ते। लेखकसम्पादकयोः परस्परमन्योन्याश्रयसम्बन्धः।[1]

उन्नीसवीं और बीसवीं शती में प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं में यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से लेखकों के अभाव का उल्लेख नहीं मिलता, तथापि अप्रत्यक्ष रूप से लेखकों का अभाव अवश्य परिलक्षित होता है। यदि दो चार पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित वर्ष भर की सामग्री पर दृष्टिपात किया जाय तो लेखकों के अभाव का निर्णय स्वतः हो जाता है। इस दिशा में यह भी सम्भावना है कि उस पत्रिका के स्तर के समकक्ष लेखकों का अभाव हो। **संस्कृतचन्द्रिका** और **मित्रगोष्ठी** आदि उच्चकोटि की पत्रिकाओं के लिए भी या तो लेखकों का अभाव था या उच्चकोटि के लेखक नहीं थे। संस्कृत चन्द्रिका में अधिकांश निबन्ध अप्पाशास्त्री के मिलते हैं। आलोचना, पुस्तक समालोचना, कहानी, निबन्ध, कविता, सम्पाकीय, अभ्यर्थना आदि विषयों पर सामग्री अप्पाशास्त्री की ही संस्कृत चन्द्रिका के एक ही अंक में उपलब्ध होती है। इससे स्पष्ट रूप से लेखकों का अभाव दृष्टिगोचर होता है। यही परिस्थिति **मित्रगोष्ठी** पत्रिका की थी। महामहोपाध्याय रामावतार शर्मा और विधुशेखर भट्टाचार्य के ही अधिकांश निबन्ध पत्रिका के प्रत्येक अंक में विभिन्न विषयों पर मिलते हैं। अप्पाशास्त्री, रामावतार शर्मा, विधुशेखर भट्टाचार्य आदि सम्पादक लेखनी के धनी थे। प्रत्येक विषय पर उसी प्रवाह और परिमार्जित शैली में लिखना उनके लिए सम्भव था। परन्तु सभी सम्पादक उन्हीं के समान प्रौढ़ हों, विचारक हों ऐसा तो सम्भव नहीं है। यही कारण है कि रामावतार शर्मा और विधुशेखर भट्टाचार्य के **मित्रगोष्ठी** के सम्पादन के पश्चात् पत्रिका कठिनाई के साथ प्रकाशित हुई और लेखकाभाव के कारण भी ताराचरण भट्टाचार्य को पत्रिका का प्रकाशन स्थगित करना पड़ा था। प्रकृत सन्दर्भ में यह भी सम्भावना बद्धमूल प्रतीत होती है कि सम्पादक यशः सम्भार को शीघ्र समेटने के लिए सब कुछ अपना ही प्रकाशित करना चाहता हो परन्तु यह अनुमान सन्देह ग्रस्त होने के कारण संकीर्ण और तथ्य से दूर है।

---

१. दिव्यज्योतिः १.१३ पृ० ८

अन्य पत्र-पत्रिकाओं का भी अध्ययन करने से प्रतीत होता है कि उन्हें सामान्यतया लेखकों का अभाव रहा है। इसमें शारदा, भारतवाणी, उद्यानपत्रिका, अमरवाणी आदि को लिया जा सकता है। अनुवादों के प्रकाशन की प्रथा भी लेखकों के अभाव को ही द्योतित करती है। यही कारण है कि प्राचीन संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं में अनुवादात्मक सामग्री विपुल है।

उच्चकोटि के लेखकों के सहयोग से पत्रिका का समाज में अवश्य आदर होता है। यही कारण है कि अप्पाशास्त्री निम्नकोटि के निबन्धों को **संस्कृतचन्द्रिका** में नहीं प्रकाशित करते थे। तदनुसार—

'विदितमेवैतत्प्रियपाठकमहाभागानां किं वा संस्कृतचन्द्रिकायाः प्रचार उद्देश्यमिति तदनुसारेण विरचिताः यैर्यैः प्रेर्येरंस्तेषां तेषामवश्यं प्रकाश्येरन्। यदि पुनर्न स्यादमीषां समुचिता भाषासरणिस्तदा नैते प्रकाश्येरन्। सम्प्रति पुनः प्रेष्यन्ते तैस्तैर्महात्मभिस्ते ते प्रबन्धाः संस्कृतचन्द्रिकायां प्रकाशयितुम्। किन्तु प्रायेण भूयांस एवैतेषु नार्हन्ति संस्कृतचन्द्रिकायां प्रकाशयितुमिति निवेदयन्तो विषीदामः। समादिशन्ति खल्वस्मान्केऽपि प्रबन्धप्रणेतारः चापेक्षायां परिवर्त्यतामदसीया भाषासरणिः। निराक्रियन्तां चाशुद्धयः इति। शिरसि करणीयः किलायमेतेषामादेशोऽस्माभिरिति नात्र सन्देहः। अनुल्लङ्घनीयादेशं हि सौहार्दमिति। किन्तु सविशेषमपि शक्तिमतिक्रम्यापि प्रयतमाना न खलु विदामोऽन्यदीयप्रबन्धशोधनेऽवसरम्। संशोधनं हि नामैतन्न प्रबन्धनिर्माणतोऽप्यतिरिच्यते। प्रबन्धा ह्येते प्रथमतः पठनीयास्ततः संशोधनीया अनन्तरं चाक्षरग्रन्थकानां कृते पुनः सपदच्छेदं लेखनीया भवन्तीति। अलब्धावसराः पुनरत्र किं वा कुर्मः'[1]।

इसी प्रकार **अमरभारती** (वाराणसी) पत्रिका में इसी तथ्य को हास्य के के माध्यम से कहा गया है—

कविः (सम्पादकं प्रति) मम कविता किमर्थं न प्रकाश्यते। सा खलु मम प्राण इव वर्तते।

सम्पादकः (सस्मितं) परेषां प्राणहरणं वयं न कुर्मः। अतः सा कविता भवदन्तिकं सधन्यवादं परावर्त्यते।[2]

ग्राहकाभाव

संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं की आर्थिक स्थिति उनके ग्राहकों पर अवलम्बित

१. संस्कृतचन्द्रिका १४.१

२. अमरभारती १.६ पृ० ६३

रहती है। संस्कृत में अपवाद स्वरूप कुछ ही पत्र-पत्रिकायें हैं, जिनके ग्राहकों की संख्या सहस्र तक पहुँची हो। अधिकांश संस्कृत की पत्र-पत्रिकाओं का ग्राहकों की कमी के कारण तथा धनाभाव की कठिनाई से ही प्रकाशन बन्द हुआ प्रतीत होता है।

अन्य भाषाओं की अपेक्षा संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं के ग्राहकों की संख्या बहुत कम रहती है। उन्नीसवीं और बीसवीं दोनों शताब्दियों में प्रकाशित संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं के लिए ग्राहकों का अभाव रहा है। **सरस्वती, संस्कृत-भास्कर, कथाकल्पद्रुम** आदि पत्र-पत्रिकाओं के लिए ग्राहक न मिलने के कारण उनका प्रकाशन आरम्भ ही न हो सका।

ग्राहक समय पर मूल्य नहीं देते हैं, इसकी चर्चा सहृदया, संस्कृतचन्द्रिका, शारदा आदि पत्र-पत्रिकाओं के वर्षारम्भों के निवेदन में मिलती है। **मंजुभाषिणी** के अनुसार—

The attention of all the patrons of Manjubhasini is drawn to the several notices of all subscribers requesting them to remit their small amount of subscription at an early date. Inspite of all of our requests and ever after the elapse of nine months in the current year some of the subscribers have not at all remitted the subscription while they are fully aware of the rules that they should make a pre-payment.[1]

सूक्तिसुधा पत्रिका के प्रकाशन से विरत होने के कारण ग्राहकाभाव था। यथा—

'एतत्किल चरमं सूक्तिसुधादर्शनम्। नेतः परमियं भवतां दृग्गोचरीभविष्यतीति। तुष्यत्विदानीं सकलसत्कार्यप्रतिबन्धव्यसनी विशेषतश्च गीर्वाणवाण्युदये बद्धवैरो दुर्विधिः। बहवः खलु मनोरथाः सूक्तिसुधोन्नतिविषये उद्‌भवन् मनस्येतदारम्भकाले एवं सूक्तिसुधा सहृदयमनांस्यावर्जयिष्यति, पात्रीभविष्यति च तत्साहाय्यस्य लब्धाश्रया च दिने दिने नवामभिख्यां वहन्ती नूनं प्रचलित-सकलमासिकपत्रिकाणां मूर्धन्यतापदमलङ्करिष्यति तस्मादात्मनो विदुषां च परमानन्दः फलमुद्भविष्यतीति। विधिविलसितेन न सैषा ग्राहकाणां तादृशीमनुग्रहपदवीं समारुरोहेति परमं खेदकारणम्। केचित् खलु वर्षमात्र-मेकतां निःशङ्कमङ्कमङ्गीकृत्य वर्षान्ते मूल्यप्रेषणाय कृता सूचना समुपलभ्य नातः परं सूक्तिसुधा प्रेषणीयेति बोधयन्तो निजामुदारतां प्रादर्शयन् ग्राहक-

---

१. मंजुभाषिणी २.१४

महानुभावाः ।[१]

अर्थ संकट से विपन्न अनेक पत्र-पत्रिकाओं में ग्राहकों से यह प्रार्थना की गयी है कि यदि वे पाँच अतिरिक्त ग्राहक बनायें तो उन्हें पत्रिका विना मूल्य के प्रेषित की जायगी अथवा उनका यह चिर स्मरणीय उपकार होगा। आर्यप्रभा मालवमयूर, बालसंस्कृतम् आदि पत्रों में यही सूचना मिलती है। **आर्यप्रभा** पत्रिका के अनुसार—

'अनुग्राहका ग्राहकाश्च यद्येकैकमपि ग्राहकमस्याः संगृह्णीयुस्तदा तेषां तदुपकारश्चिरस्मरणीय इति शम् ।'[२]

इस प्रकार संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं की ग्राहक-संख्या सन्तोषप्रद नहीं मिलती है। ग्राहक-संख्या सन्तोषप्रद न होने के कारण उनका प्रकाशन भी समय पर अथवा सफलता पूर्वक नहीं हो पाता है। **उद्योत** पत्र के अनुसार—

'अद्यापि उद्योतस्य ग्राहकसंङ्ख्या तथा सन्तोषजनिका न जाता यथा उद्योतकार्यं निष्प्रतिवन्धं संचलेत्'[३] ।

साधारणतः विरल ही वे पत्र-पत्रिकायें हैं जिनका कोई एक वर्ष भी धनाभाव से रहित रहा है। **मधुरवाणी** पत्रिका के अनुसार—

इतरवाङ्मयक्षेत्रे मासिकादिवृत्तपत्राणां द्वादशवर्षातिक्रमणे सहजेऽपि संस्कृतपत्र-पत्रिकाणामेकैकवर्षसीमातिगमनं नाम युगान्तरे पदप्रक्षेपणमेव ।[४]

अधिक समय तक पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशित न होने के निम्नांकित कारण प्रतीत होते है—

(१) पत्रिकाव्ययनिर्वहणे पर्याप्ता ग्राहका एव न लभ्यन्ते ।

(२) अपर्याप्ता अपि ग्राहकाः न द्वितीयवर्षे मनो दधतेऽनुहीतुम्[५] ।

प्रारम्भ से ही संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं के ग्राहकों का अभाव द्योतित होता है। **विद्योदय, संस्कृतचन्द्रिका** आदि पत्र-पत्रिकाओं के ग्राहकों की संख्या अधिक नहीं थी। **मधुरवाणी** पत्रिका में ग्राहकों के अभाव में पत्र-पत्रिकाओं की स्थिति का ठीक चित्रण है। तदनुसार—

का कथा संस्कृतपत्राणां यासां ग्राहकगणना प्रसंगे कदाचित् अंगुष्ठतर्ज-

---

१. सूक्तिसुधा १.१२

२. आर्यप्रभा ४.१

३. उद्योत १.३ पृ० २६

४. मधुरवाणी १२.१२

५. वही.

नीलामपि अनामिकात्वमायाति । काश्चन पत्रिकाः शरदम्बुधराडम्बरमेव विडम्बयन्ति, अन्याश्च काश्चन चंचच्चंचला इव यदा कदाचिदेव चारु चमत्कुर्वन्ति । अपराश्च काश्चिद् दरिद्रमनोरथा इव विनाशसामग्रीसमवहिता एव उत्पद्यन्ते विलीयन्ते च ।[1]

मधुरवाणी पत्रिका के स्थगित होने का कारण ग्राहकाभाव ही था । इसी प्रकार सहस्रांशु, वैजयन्ती, पण्डितपत्रिका, शारदा, संस्कृतमहामण्डलम्, वल्लरी, उद्योतः, कौमुदी आदि पत्र-पत्रिकायें ग्राहकाभाव के कारण अधिक समय तक न प्रकाशित हो सकीं । **मित्रगोष्ठी** जैसी श्रेष्ठ पत्रिका के लगभग तीन सौ ग्राहक थे ।[2] **सूक्तिसुधा** पत्रिका के दो सौ से कम ग्राहक थे ।

ग्राहक बन कर मूल्य न देना, अथवा वी० पी० लौटा देना—आदि भी संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं के संचालकों के लिए कठिनाइयाँ थीं । **संस्कृतरत्नाकर** में इसका चित्रण निम्न प्रकार है—

'गच्छतु विद्योदय-संस्कृतचन्द्रिका-मित्रगोष्ठी-सूक्तिसुधादीनां प्राचीनपत्रपत्रिकादीनां कथा । अपयातु सहृदया-सूनृतवादिनी-शारदा-कालिन्दी-आर्यप्रभा-उद्योत-उषादीनां मध्यकालिकीनामपि वार्ता । परन्तु अस्मिन्काल एवोत्पन्ना क्वाधुना संस्कृतपद्यवाणी । नवीनसंघटना मंजूषाऽपि सा सम्प्रति जर्जरिता । क्वेदानीं वाराणस्याः सा अमरभारती ?

न ग्राहकसंख्यायामभिवृद्धिः । समर्थाः प्राथिता अपि न तदर्थं प्रार्थनाः शृण्वन्ति । ये केचित्स्वल्पा एवाऽनुग्राहका भवन्ति तेऽपि आदौ देयत्वेन घोषितमपि सामान्यं वार्षिकमूल्यं न समये ददति । वहवो हि मध्य एवाऽनुग्राहकतां परित्यजन्ति । कतिपये महानुभावास्तु वर्षान्तं यावत्सर्वा अपि संख्याः निःशंकमंगीकृत्य मूल्यप्रेषणाय मुहुर्मुहुः कृतं प्रार्थनाशतमपि अगणयित्वा चान्ते विवशतया वी० पी० द्वाराप्रेषितामन्तिमां संख्यां तु निरनुरोधं परावर्तयन्ति । गच्छतु लाभकथा प्रापणव्ययोऽपि निजग्रन्थितः प्रत्युत देयो भवतीत्यादि ।'[3]

संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं के ग्राहक इतने पर्याप्त नहीं होते कि प्रकाशन का व्यय-भार प्राप्त हो सके । कुछ ग्राहक ऐसे भी होते हैं जो ग्राहक-श्रेणी में अपना नाम लिखाकर शुल्क बार बार मागनें पर भी उसे नहीं भेजते । **मित्रगोष्ठी**

---

१. मधुरवाणी १३.४

२. सरस्वती २८.२ पृ० १२४८

३. संस्कृतरत्नाकर ८.१ पृ० ४

के अनुसार—

'न तावन्तो ग्राहकाः सम्पद्यन्ते येन मुद्रणव्ययोऽपि निर्वहेत् । केचित्पुनर्विलेख्यापि ग्राहकश्रेण्यां स्वयमेव स्वाभिधानं स्वीकृत्यापि प्रतिमासमिमां स्तोकतममप्यस्याः मूल्यं मुहुर्मुहुः प्रार्थ्यमाना नोत्तरमपि वितरन्ति, दूरतस्तु मूल्यम्' ।[1]

इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि ग्राहकों का अभाव सम्पादकीय उत्साह को समाप्त कर देता है । वे सम्पादक धन्य हैं जो सतत हानि उठा कर भी पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन करते रहे हैं ।

शारदा पत्रिका के सम्पादक को प्रतिवर्ष लगभग एक सहस्र रुपयों की हानि होती थी । यथा—

शारदा पत्रिका का सम्पादन बड़ी योग्यता से किया जाता था । शास्त्री जी ने पूर्ण उद्योग के साथ इसका संचालन किया । प्रति वर्ष १०००-६०० रुपयों का घाटा सहा, अन्त में तीन वर्ष के पश्चात् विवश होकर प्रकाशन बन्द कर देना पड़ा । यह पत्रिका अपने ढंग की एक ही पत्रिका थी । इसमें सभी उपयोगी विषयों पर लेख निकलते थे ।[2]

सहृदया सर्वजन मनोहारिणी और सुन्दर पत्रिका थी, परन्तु सम्पादक के अनुसार ग्राहकसम्पत्तिः दिनानुदिनपरिक्षीयमाण रही है । उनकी आशा मृगमरीचिका की तरह व्यर्थ रही । यथा—

'आसीच्चास्माकं बलवती समुत्कण्ठा दृढीयसी च प्रतीक्षा यत्त्रिंशत्कोटिजनाधिष्ठितायां भारतभूमौ स्यादेव महती ग्राहकसम्पत्तिः ! हन्त ! कुतस्तावद्भागधेयं तपस्विन्या गैर्वाण्याः । सर्वमेवेतदस्माकं मरुमरीचिकायां पिपाशया सम्पन्नम् ।[1]

संस्कृतचन्द्रिका में ग्राहकों से मूल्य न मिलने की अनेक बार सूचना मिलती है । यथा—

'सहृदयवाचकाः यावच्छक्यं भवन्मनसोऽनुरंजनाय प्रयतमाना संस्कृतचन्द्रिका अष्टाभिः संख्याभिः प्रकाशितवत्यात्मानम् । दयावद्भिर्भवद्भिरपि सा प्रतिमासं सानन्दमंगीकृतेति प्रमोदते नश्चेतः ।

---

१. मित्रगोष्ठी २.६

२. सरस्वती २८.२ पृ० १२४६

३. सहृदया १.१२

किन्त्वेकमिदमतिमात्रं विपादयति विस्मापयति चान्तरं यदहं पूर्विकयाऽपि चन्द्रिकार्थं पत्रिकाः प्रहितवन्तो मूल्यप्रदाने निकामुदासते भवन्तः। यदि त्वेवेमेव सततं चन्द्रिकामनुगृह्णीयुर्दयायत्ता ग्राहकास्तदा कथंकारं चन्द्रिका चिरं जीवेदिति वलवदाशंकते चेतः। वहवः किल रसिकाः ससाधुवादं प्रतिमासं चन्द्रिकामंगीकुर्वन्ति विरलास्तु मूल्यं प्रयच्छन्ति'।[1]

संस्कृतचन्द्रिका में अनेक वार ग्राहको से यह प्रार्थना की गई कि वे उस का मूल्य यथासमय भेज दिया करें। यथा—

'विदितमेवैतत्सर्वेषां यदग्रिममूल्येनैव चन्द्रिका प्रदीयत इति। विना वाचकमहाशयानुकम्पां नासौ पत्रिका प्रकाशयितुं शक्या। अतः संख्यामिमां प्राप्य विधीयतां मूल्यप्रेरणानुकम्पा। अवसरे प्रदत्तं हि मूल्यं सहस्रगुणमिव भवति ये तु निर्दिष्टावसरे मूल्यं न प्रेरयेयुस्तेभ्यो व्ही० पी० द्वारा चन्द्रिका प्रेर्येत एतदेवान्तिमं निवेदनं नातः परं मूल्यस्य कृते पत्रान्तरं प्रेर्येत।'[2]

ग्राहक किस प्रकार पत्रिका का ग्राहकत्व त्याग देते हैं, इसका यथार्थ चित्रण **सूक्तिसुधा** पत्रिका में किया गया है। यथा—

नातः परं सूक्तिसुधा प्रेषणीयेति वोधयन्तो निजानुदारतां प्रादर्शयन् केचिद्। अन्ये तु वी० पी० द्वारा प्रेपितमङ्कं परावर्त्य निश्चिन्ता बभूवुः। केचिदस्या ग्राहकाः प्रेपितस्वनीरसकाव्यसमस्यापूर्त्यप्रकाशनजनितं निरर्थकं रोपं भजमानां इमां न्यपेधयन्। अन्ये तु वहवो द्वित्रानेवेतदङ्कान् आसाद्य परितृप्ततया वाऽशक्यवोधत्वेनास्या व्यर्थतामाकलय्य वा प्रत्यादिशन्निमाम्।

चातक इव नववारिदोदविन्दून् ग्राहकानुग्रहकणान् आवर्षान्तं प्रतीक्षमाणो, मध्ये मध्ये च कृतसूचनतया निश्चिन्तं मूल्यलाभमाशंसानः कथंचिदत्यवाह्यम्। ग्राहकसंख्या सततं क्षीयमाणाऽदर्शि येऽप्यस्या ग्राहकत्वं वहन्ति, तेषु कतिपयैरेवोदाराशयैरेतत्पत्रोत्तरमपि न प्रेषितं दूरतो मूल्यम्[3]।

सूक्तिसुधा के अप्रकाशन का कारण इस प्रकार ग्राहकों का समय में द्रव्य न देना ही प्रतीत होता है। यही दशा **विज्ञानचिन्तामणि** पत्र के ग्राहकों की थी। तदनुसार—

यदेते चिन्तामणयेऽस्मै देयनीयाय धारयन्तो वहुवर्पमूल्यं वहुविधमात्रसाध्यमेतत्प्रचारणमारोपयन्ति संशयपदवीमिति कष्टात्कष्टतरमेवैतत्। इदं पुनर-

---

१. संस्कृतचन्द्रिका ५.६

२. संस्कृतचन्द्रिका १.१२

३. सूक्तिसुधा १.१२

तीव चित्रतरं यत् केचन सुहृदो निस्त्रपा इव स्वायत्तयावत्संचिकानां मूल्यमन-
र्पयन्तः पुनरागच्छन्तीः संचिकाः प्रत्याचक्षते निवेदयन्ति चेतः परं न प्रेष्यतां
चिन्तामणिरिति[1]।

मंजूषा में ग्राहकों से कामना और हानि की सूचना इस प्रकार
मिलती है—

'मंजूषायाः प्रकाशनेनास्माकं महती हानिर्भवति। कृपया पत्रिका समधिग-
मानन्तरमेव वार्षिकं मूल्यं रूप्यकषट्कं सम्प्रेष्य नवीनांश्च कांश्चन ग्राहकान्
सम्पाद्य मंजूषायाः साहायकं विधीयताम्'[2]।

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं के
लिए ग्राहको की संख्या पर्याप्त नहीं और जो थे वे भी समय पर मूल्य प्रदानकर
सहायता नहीं करते थे, जिसके कारण पत्र-पत्रिकाओं का सतत प्रकाशन
नहीं हो पाता है। अतएव ग्राहक और पाठक का सहयोग पत्र-पत्रिकाओं के
लिए अपेक्षित है। **मैक्स मूलर** संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं के अध्ययन से निम्नांकित
निष्कर्ष पर पहुँचे थे—

'There are Journals written in Sanskrit which must entirely depend for their support on readers.'[3]

ज्योतिष्मती पत्रिका के सम्पादक का निम्न कथन संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं
की परिस्थिति पर अक्षरशः सत्य है—

आज इस अखिल विश्व में फैले संस्कृत समाज को देखते हुए यह एक
कटु सत्य है कि **ज्योतिष्मती** की जो ग्राहक संख्या हमारे सामने है, वह नहीं
के समान नहीं अपितु शून्य है। तथापि ज्योतिष्मती ने इन सभी महा कठिन
परिस्थितियों का सामना किया है और करेगी। इन आपत्तियों से न कभी
वह विचलित हुई है और न होगी।[4]

आर्थिक अभाव

लेखकों और ग्राहकों के अभाव के पश्चात् धन का अभाव पत्र-पत्रिकाओं के
लिए परिलक्षित होता है। जब तक धन रहा तब तक पत्र-पत्रिका का प्रकाशन
होता रहा और जिस समय धन समाप्त हो गया, उसका प्रकाशन स्थगित कर
देना पड़ा। यदि प्रचुर मात्रा में धन सम्पादक के पास रहे तो ग्राहक के अभाव

---

१. विज्ञानचिन्तामणि १६.१
२. मंजूषा १.११
३. India What can it teach us p. 72
४. ज्योतिष्मती १.६

में भी पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन कुछ समय के लिये हो सकता है। जिन पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन राजाओं के अनुदान अथवा किसी संस्था विशेष से हुआ, वे अधिक समय तक प्रकाशित होती रहीं। श्रीमन्महाराजविद्यालयपत्रिका, सारस्वती सुषमा, वैदिकमनोहरा, ब्रह्मविद्या, श्रीशंकरगुरुकुलम्, श्रीचित्रा आदि अनेक ऐसी पत्र-पत्रिकायें हैं जिन्हें धनाभाव नहीं रहा। श्रीमन्महाराज-विद्यालयपत्रिका के अधिकांश अंक चित्रार्हपत्र में प्रकाशित हुए, जिससे उसकी आर्थिक स्थिति की सुसम्पन्नता का ज्ञान होता है।

पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन धनसाध्य है। अप्पाशास्त्री ने सदैव यही घोषणा की कि इस के लिए पहले धन की आवश्यकता है, बाद में सम्पादन, संयोजन वितरण आदि की होती है। यथा—

द्रविणसाध्य एवायं व्यवसाय इति तु नैव वाचकमहाशयैर्विस्मरणीयम्'[1]। 'सर्वोऽपि ह्यारम्भः प्रथमं द्रव्यमेवापेक्षते विशेषतः प्रकाशनं पत्र-पत्रिकाणामिति।[2]

अधिकांश संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन व्यक्तिगत आय और व्यय से हुआ है। वे सम्पादक भी इतने अधिक धनी नहीं थे कि बिना किसी प्रकार की सहायता से सदैव पत्रिका को प्रकाशित कर पाते।

विचारणीय प्रश्न यह है कि एक संस्कृत की पत्रिका और उसमें लगे हुए धन में से किसका अधिक महत्त्व है। जिन्होंने अपने जीवन का उद्देश्य गीर्वाणवाणी की सेवा करना ही बना लिया है, निश्चय ही वे पत्रिका को चाहेंगें। अप्पाशास्त्री के अनुसार—

'हे सखायः! द्रव्यं द्रव्यमिति कियतीयं मात्रा। विचिन्त्यतां तावद्द्रव्यतोऽपि कस्य वैकान्ततो दुःखसम्भिन्नसुखमुपतमिति। नूनमयमस्माकमपि प्रत्ययो यदिदानीं धनवद्भिरपिसुखेन सुखाशया च प्रयुक्तं द्रव्यं प्रायेण दुःखपरिपाकितामेव प्रयातीति।

तदत्र निःसारप्रायेऽपि संसारे न खलु मन्तव्यं क्षणमात्रं प्रवर्तमानस्यानन्दस्य कृते भूयानयं धनव्यय इति यद्भूयिष्ठनाप्यर्थेन न तादृश आस्वादयितुं सुलभः पारमार्थिक आनन्दः। ते तु विषया आहारविहारादयो नैकविधाः किन्तु तेषु नैकोऽपि सुसरलरसवद्वाग्विलासमयीनां मासिकपत्रिकाणां तुलामधिरोपयितुं योग्यः। अत एव भवतु भूयानल्पीयान्वा व्ययो मासिकपत्रपत्रिकादीनां प्रमोदैकनिकेतनानां

१. संस्कृतचन्द्रिका ७.९ पृ० २
२. वही ५.९

कालान्तरेप्यहीनरसानां विषयाणां कृते सोऽवश्यं विधातव्यः। सकृदासेविता ह्याहारादयो न पुनस्तथा स्वदन्ते यथाहि ते प्रतिपलनव्यभावसापेक्षाः। हन्त! पत्रिका तु रसवत्प्रबन्धरमणीया यदाकदा वाप्युपस्थिता सकृदसकृद्वाऽस्वादित-रसापि न मनागपि विरागभाजनतामुपयाति प्रत्युत प्रतिक्षणमधिकाधिकमादरा-स्पदं भवति सहृदयानाम्। तथा च प्रमोदयति यथा किल तदास्वादैकतानमनाः पाठको नाहारं न विहारं न विनोदं न कामं नाप्यात्यावश्यकं कर्मान्तरमभिनन्दति नापि वा स्मरति। अत एवाल्पीयसीयं मात्रा यदेवंविधप्रमोदनिकेतनायमानायाः पत्रिकायाः कृते प्रतिवत्सरं भूयसोऽपि द्रव्यस्य व्ययो नाम। संचिततमाऽपि हि नावतिष्ठते लक्ष्मीः।[1]

संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं के सतत प्रकाशित न होने का मूल का कारण अर्थाभाव ही है। जिन पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन किसी संस्था से आरम्भ हुआ है, उनका भी प्रकाशन अर्थाभाव के कारण कभी कभी स्थगित करना पड़ा है। संस्था से प्रकाशित होने पर भी भारतसुधा, श्रीः, संस्कृतसाहित्यपरिषत्पत्रिका आदि पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन की अखण्ड परम्परा नहीं मिलती है।

ग्राहकों के द्वारा अर्थ की उपलब्धि होती है और साथ ही साथ सम्पादकों का उत्साह बढ़ता है, परन्तु उन्नीसवीं और बीसवीं दोनों शताब्दियों में ग्राहका-भाव परिलक्षित होता है। व्यक्तिगत व्यय से अधिक समय तक पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन सम्भव नहीं है।

संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं के अधिकांश सम्पादकों के पास इतना अधिक धन नहीं कि वे एक स्वतन्त्र मुद्रणालय स्थापित करके यथासमय पत्रिका का प्रकाशन कर सकते। इसलिए इसके कारण प्रकाशन में विलम्ब होना स्वाभाविक है।

संस्कृत भाषा में बहुत कम ऐसी पत्र-पत्रिकायें हैं, जिनके प्रकाशन की अखण्ड परम्परा मिलती है। यथासमय अप्रकाशन का प्रमुख कारण द्रव्याभाव ही है। इसी तथ्य को परिलक्षित करते हुए **मधुरवाणी** में लिखा गया—

मधुरवाणी कुतो नाविष्क्रियते?
अनानुकूल्यात्।
किं तदनानुकूल्यम्?
मुद्रणासौकर्यम्।
कुतस्तत्?
द्रव्याभावात्।

---

१. संस्कृतचन्द्रिका ५.१

उन्नीसवीं और बीसवीं शती की पत्र-पत्रिकाओं का मूल्य भी अधिक नहीं परिलक्षित होता है। संस्कृतचन्द्रिका, मित्रगोष्ठी आदि उच्चकोटि की पत्र-पत्रिकाओं का बहुत ही कम मूल्य था। उस यथार्थ मूल्य की प्रार्थना प्रायः प्रत्येक सम्पादक आरम्भिक निवेदनों में प्रकट करता हुआ मिलता है। धन के अभाव में अव्यवस्था और पत्रिका के कम मूल्य का उल्लेख करते हुए पत्रकार अप्पाशास्त्री ने कहा है—

'एतत्पुनरवश्यं च सुनिपुणं च विचारणीयमार्यवंशोत्तंसैर्यत् पत्रिकाणां सम्पादकादयः श्रीमद्भ्यो यथार्ह मूल्यमेव प्रार्थयन्ते नैव पुनः कपर्दिकामात्रमपि प्रतिग्रहं नाम। असति साहाय्ये हास्यन्त्येवात्मनो निसर्गचंचलं जीवितमेताः। किन्तु कथं वा प्रक्षालयतामयश इदं भारतवर्षस्य यदत्र विद्यमानेष्वपि धनिकधुर्येषु जाग्रत्स्वपि च रसिकवृन्देषु संस्कृतमासिकपत्रिका विलयमुपगच्छतीति। निर्धनतमाः खल्वासां सम्पादका नास्यायशसो लेशतोऽपि भाजनतामुपगन्तुमर्हन्ति।'[1]

आर्थिक क्षति

सम्पादकों को पत्र-पत्रिकाओं से लाभ के स्थान पर हानि हुई है। संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन से धन की आशा करना निराशा ही है। बहुत से सम्पादक हानि सहन कर भी पत्र पत्रिकाओं के प्रकाशन से अलग नहीं हुए। चन्द्रशेखर शास्त्री का निम्न कथन पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन की स्थिति को प्रकट करता है—

'शारदाप्रकाशनेन प्रकाशकस्य लेशतोऽपि न भवत्यर्थागमः किन्तु प्रतिवर्षं शारदाकृते स्वीयं धनं विनियुज्यत एव तेन। यावन्तोऽपेक्षिता ग्राहका न सन्ति साम्प्रतमपि तावन्त इत्येष एवात्र हेतुः। हन्त! इदं नो दु.खाकरम्। शक्तिमतिक्रम्य मया शारदाकृते प्रयत्नो विहितः। अर्थाशाप्रणोदितेन मया शारदाप्रकाशनमारब्धमिति केषांचिदुक्तयो न स्थाने। संस्कृतपत्रिकया कश्चन धनमर्जयितुं शक्नोतीति न कोऽपि विशेषज्ञः प्रत्ययमादधाति वचनेऽत्र। असम्भवतं हि तत्। तथापि प्रारब्धं मया शारदाप्रकाशनं, संस्कृतेऽपि नाम काचित् समुन्नता पत्रिका प्रचार्येत, संस्कृतज्ञा अप्याधुनिकान् विषयान् अधिगच्छेयुः, तेऽपि ननु सामयिकज्ञानपटवो भवेयुः। एवंविध एव मनोरथ आसीत् शारदाप्रकाशनतः पूर्वं मम। एतेनैव मनोरथेन प्रेरितोऽहं मित्रैरुपहसितोऽपि केनाऽप्यभिज्ञेनोन्मत्तकार्यपरोऽयमितिधीरं तिरस्कृतोऽपि वर्षद्वयं यावच्छारदाप्रकाशनं प्रतिज्ञातवान्।

---

१. मंजूषा १.४

यदि संस्कृतज्ञानां मौनमुद्रा न समुद्घटिता स्यात्तदा ते जानन्तु, कृतं मयात्मनः कर्तव्यम्, परं शारदाप्रणयिभिर्नाद्य यावत्किमपि साहाय्यमाचरितं न तैरत्र कुसुमसुकुमारं विलोचनं निःक्षिप्तम् ।[1]

वैजयन्ती, पण्डितपत्रिका, भारतवाणी, मंजूषा, मधुरवाणी, आदि पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादकों को हानि सहनी पड़ती थी। पण्डितपत्रिका का का मासिक व्यय सौ रुपये था, फिर भी उसे हानि के कारण स्थगित करना पड़ा। डा० सुनीतकुमार चटर्जी के अनुसार **मंजूषा** पत्रिका के सम्पादक क्षितीशचन्द्र चटर्जी हानि सहन कर भी पत्रिका को सतत प्रकाशित करते रहे। तदनुसार—

'Then his next venture was the Manjusha, and this Manjusha he has been publishing although with great financial loss, for 16 years and more.

It was too much to expect an impecunious scholar, though of great reputation, to be the financier as well as the editor of a learned paper of this type.'[2]

विद्यार्थी पत्रिका के सम्पादक का आत्मनिवेदन कितना हृदयस्पर्शी और मार्मिक है, जिसमें उन्होंने धन-लाभ की अपेक्षा सतत हानि का उल्लेख किया है। यह कथन संक्षिप्त होने पर भी पत्रिका की त्रैकालिक स्थिति पर पर्याप्त प्रकाश डालता है। यथा—

अस्माकं प्राचीना आधुनिका च स्थितिस्तथा भावी भयङ्करा दृश्यते।[3]

मधुरवाणी पत्रिका के सम्पादक ने भी इस दिशा में अर्थाभाव के अतिरिक्त हानि का अनुभव किया है। यथा—

'यास्तावद्देवभाषामय्यः पत्रिकास्तृणीकृतस्वार्थाः प्रचरन्ति भारतभूम्यां तेष्वेवेयमन्यतमा प्रधानतमा च मधुरवाणीत्यन्वर्थनाम्नी मासपत्रिका। अस्याश्च सम्पादकवर्यैर्महतीमपि हानिमुररीकृत्य प्राकाश्यत् पत्रिकामिमाम्।[4]

साप्ताहिक और दैनिक पत्र-पत्रिकाओं की अपेक्षा संस्कृतज्ञ मासिक आदि पत्र-पत्रिकाओं को अधिक पसन्द करते हैं। इसलिए साप्ताहिक और दैनिक पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादकों को मासिक पत्र-पत्रिकाओं की अपेक्षा अधिक

---

१. शारदा २.१२
२. मंजूषा क्षितीशचन्द्रस्मरणांक पृ० ४-५
३. विद्यार्थी कला ११ किरण १
४. मधुरवाणी १.१

हानि होने की सम्भवाना रहती है। **मधुरवाणी** पत्रिका में इसी अभिप्राय को प्रकट किया गया है। तदनुसार—

'साप्ताहिकपत्रेण विशेषसंस्कृतप्रसारो भवेदिति भावनया प्रारब्धाऽऽसीत् वैजयन्ती परं स्वतन्त्रमुद्रणालयाभावात् पर्याप्तधनाभावाच्च तस्याः नियत-प्रकाशनमशक्यमेव संजातम्। बहुभिरपि ग्राहकैः साप्ताहिकपत्रापेक्षया मास-पत्राण्येव भावसम्पदा अर्थगौरवेण आकारसौन्दर्येण भाषामाधुर्येण च साधी-यांसि स्वादीयांसि गरीयांसि चेति नैकपत्राणि आगतानि। इयमेवाभिप्रायं प्रकटीकृत्य ईदृशामव्यवस्थितसाप्ताहिकपत्रिकां विहाय अत्युत्तममेकं मासपत्रमेव सुव्यवस्थितरीत्या नियतं प्रकाशयन्तु भवन्त इति समसूचयन्। तेषां सूचनां वाचकानां चाभिप्रायमनुलक्ष्यास्माभिः मासपत्रिकैव पुनः प्रारब्धा।'[1]

संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन से इस प्रकार सम्पादकों को अर्थहानि हुई। अधिकांश सम्पादक इस स्थिति के अनुभव से ही अपने सम्पादकीय में इस दुर्दान्त परिस्थिति का चित्रण कर पत्रिका का प्रकाशन स्थगित करते रहे हैं। कभी-कभी तो उनके सामने अर्थाभाव की परिस्थिति विकट रूप में उपस्थित हो जाती थी। यथा—

'मदीया प्रार्थना मुद्रणालयाधिपैरपि अर्थाभावात् नैव कर्णेकृता ततश्च अन्ते पत्रिकायाः प्रकाशनं सम्पूर्णमेव प्रतिबद्धम्। यावत्कालपर्यन्तं तस्याः पूर्वकृतं ऋणं सम्पूर्णं नैव प्रदीयते तावत् एकाक्षरमपि वयं नैव संयोजयामः स्पष्टमेव अकथ-यन्। तदा मम समीपे एका स्फुटितकपर्दिकाऽपि नासीत्। तस्मादगत्या अतीव सम्भ्रमेण अत्युत्साहेन च प्रारब्धापि वैजयन्ती अकस्मादेव प्रतिरुद्धा बभूव। साप्ताहिकपत्रप्रकाशनेन संस्कृतसाहित्य एव अत्यद्भुतक्रान्तिरेव भवेदिति मम भ्रमकूष्माण्डः भग्नः। ऋणार्णव उद्वेलः संवृत्तः। जनैरपि अपेक्षितप्रमाणेन साहाय्यं नैव लब्धम्। अत एव अगत्या स्वयमेव स्थगितमभूत् पत्रप्रकाशनम्।[2]

सूक्तिसुधा के सम्पादक को हानि के कारण ही पत्रिका का प्रकाशन स्थगित करना पड़ा था। यथा—

'विरंस्यामि न निरर्थकात् प्रत्युत हानिकरादस्माद् व्यापारादिति'[3]।

भवानी प्रसाद शर्मा सफल पत्रकार होते हुए भी ग्राहकाभाव और अर्थाभाव के कारण अधिक समय तक **सूक्तिसुधा** पत्रिका का प्रकाशन चाहकर भी न कर

---

१. मधुरवाणी १.१

२. वही०

३. मित्रगोष्ठी २.६

सके। संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं के लिए ग्राहकाभाव की समस्या विकराल वकासुर की तरह मुहवायें रहती है। येन केन प्रकारेण एकाध वर्ष के प्रकाशन के पश्चात् यह वकासुर पत्र-पत्रिका को निगल लेता है। अनेक ऐसे सम्पादक हुए हैं, जो महती हानि उठाकर भी गीर्वाणवाणी की सेवा सतत करते रहे। **सूक्तिसुधा** पत्रिका से आर्थिक क्षति की सूचना अनेक वार मिलती है। यथा—

अनुभूतशताधिकमुद्रिकाव्यर्थव्ययोऽपि निर्विण्णतया द्वादशाङ्के कृतैतद्विरामोपक्षेपः, तदेवं गतवर्षतोऽप्यतिशयितां हानिमनुभूय जनसाहायमन्तरा केवलं स्वद्रव्यव्ययेनाशक्यप्रकाशनमतो विरमाम्यस्माद् व्यापारात्।[1]

इस प्रकार आर्थिक हानि का संक्षेप. विवेचन कतिपय पत्र-पत्रिकाओं के आधार पर प्रस्तुत किया। इसका यह अभिप्रेत कथमपि नहीं है कि अन्य पत्र-पत्रिकाओं की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ थी। प्रायः सभी संस्कृत पत्र-पत्रिकायें द्रव्याभावरूपी राहु से ग्रस्त रहीं हैं। भारतीय सरकार ने इधर अवश्य ध्यान दिया है, जिसके कारण अब वह भयावह, विकराल और असन्तोष प्रधान स्थिति नहीं है। भारतीय सरकार साधुवाद के योग्य है।

उन्नीसवीं और वीसवीं शताब्दी की अधिकांश पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादकों को इस प्रकार अर्थ की हानि हुई है और उन्हें भी विवश होकर पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन स्थगित कर देना पड़ता था।

विज्ञापनाभाव

साप्ताहिक और दैनिक पत्र-पत्रिकाओं का विज्ञापन से अधिक सम्वंध है। उन्नीसवीं और वीसवीं शती में प्रकाशित संस्कृत साप्ताहिक और दैनिक पत्र-पत्रिकाओं में विज्ञापन का अभाव परिलक्षित होता है। इसका प्रधान कारण उनकी सीमित संख्या का प्रकाशन है। संस्कृत भाषा में अपवाद स्वरूप ही किसी पत्र-पत्रिका की प्रकाशित प्रतियाँ एक सहस्र से अधिक गयी हैं। अतः विज्ञापन देने वाले संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं का पर्याप्त विकास न देखकर उनके लिए विज्ञापन नहीं देते। दूसरा कारण ग्राहकाभाव भी है। विज्ञापन का सम्वन्ध ग्राहकों और पत्रिका के प्रचार से है।

कुछ साप्ताहिक पत्र-पत्रिकाओं में विज्ञापन-प्रकाशन के नियम थे और उसी नियम के अनुसार उनका प्रकाशन होता था। सूनृतवादिनी पत्रिका में विज्ञापन का निम्नांकित नियम था—

'विज्ञापनप्रकाशनमूल्यं सूनृतवादिन्या अन्तः प्रवन्धेषु यादृशान्यक्षराणि

---

१. सूक्तिसुधा २.१२

तादृशः संग्रथिताया एकस्याः पङ्क्तेरानकत्रितयम् । मासाधिकं समयं यावत्प्रकाशनीयस्य तु विज्ञापनस्य विषये विशेषपत्रद्वाराऽवबोद्धव्यः। विज्ञापनान्यपि वैदेशिकवस्तुविषयाणि सनातनधर्मविद्रोहाणि वा न स्वीक्रियेरन् ।[१]

देववाणी, संस्कृतभवितव्यम्, वैजयन्ती, भाषा आदि साप्ताहिक पत्र-पत्रिकाओं में कभी-कभी विज्ञापन प्रकाशित हुए हैं।

अन्य पाक्षिक, मासिक आदि पत्र-पत्रिकाओं के लिए भी विज्ञापन नहीं मिलते। संस्कृत में कुछ ऐसी पत्र-पत्रिकायें अवश्य हैं, जिनके एकाध अंकों में विज्ञापन अधिक प्रकाशित हुए हैं। शारदा, भारती, दिव्यज्योति आदि इसी कोटि की पत्रिकायें हैं।

प्रोत्साहनाभाव

सम्पादक को उत्साह प्रदान करने वालों में ग्राहक, लेखक और पाठक प्रधान रूप से हैं। इन सभी का प्रोत्साहन सम्पादक के उत्साह के लिए अपेक्षित है। ग्राहकों, लेखकों और पाठकों की ओर से सम्पादक को प्रोत्साहन न मिलने के कारण उसका उत्साह मन्द पड़ जाता है और कुछ समय पश्चात् पत्र-पत्रिका का प्रकाशन स्थगित कर देना पड़ता है।

विद्योदय पत्र के सम्पादक हृषीकेष भट्टाचार्य का निम्न कथन प्रोत्साहनाभाव के सम्बन्ध में कितना मार्मिक है—

अद्यापि न तत्प्रयोजनस्याङ्कुरोदगमोऽपि दृश्यते प्रथमतोऽस्मिन्नुत्साहदातृणामभावः, ये केचित् कृपयोत्साहं प्रददति च तेऽप्यस्मद्दुर्भाग्यवशीभूता न यथाकालं मूल्यं प्रेरयन्ति। तन्निश्चितेऽप्यस्य विनाशे एतावन्तं कालं केवलपंचनदमहाविद्यालयस्य कृपया जीवनमस्ति। अहो ! किमस्त्यतो दुःखतरं यत्संस्कृतभाषायां भारतवर्षे इयमेकैव पत्रिका प्रादुर्भूता सापि सम्यगुत्साहाभावात् मृतप्राया तिष्ठतीति।[२]

संस्कृत चन्द्रिका में भी बार बार पाठकों से निवेदन किया गया है। लेखकों और ग्राहकों से उनके प्रोत्साहन और सहायता की कामना की गई है। वाचकों के अभाव में पत्रिका का प्रकाशन सम्भव नहीं हो पाता है। संस्कृतचन्द्रिका का यह कथन सार्थक है—

'विना वाचकमहाशयानुकम्पां नासौ पत्रिका प्रकाशयितुं शक्या'[३]।

उन्नीसवीं और बीसवीं दोनों शताब्दियों में वाचकों, लेखकों और ग्राहकों

---

१. सूनृतवादिनी १.१
२. विद्योदय १३.६ जून १८८४
३. संस्कृतचन्द्रिका १.१२

के प्रोत्साहन का अभाव था। सम्पादक एक मात्र अपने उत्साह से पत्र-पत्रिकाओं को प्रकाशित करते रहे हैं। संस्कृत आयोग की सूचना के अनुसार सहयोग के अभाव में पत्र-पत्रिकाओं का आकार-प्रकार आदि भी यथायोग्य नहीं है—

'These Journals are published by enthusiasts for Sanskrit and they are, most of them, run at a loss. The support they receive comes mainly from the various Sanskrit Institutions, Schools and Associations in the country, which themselves are in a very bad way financially. Naturally, owing to financial reasons their printing and format are generally not at all up to the mark.'[1]

विज्ञानचिन्तामणि यथार्थ नाम पत्र था। इसमें भिन्नरुचि वाले पाठकों के लिए सभी प्रकार की मनोमुग्धकारी सामग्री प्रकाशित की जाती थी। परन्तु पत्र के प्रकाशन के समय सम्पादक को प्रोत्साहन के स्थान पर कटुवचन और निन्दा सुननी पड़ी थी। तदनुसार—

'सर्वथा दुर्वहैव पत्राधिपत्यमधुना यदत्र केचन भीषयेयुः विरज्येयुरितरे निन्दयेयुरपरे परिहसेयुरपरे निर्भत्सयेयुरन्ये दूषयेयुः कतिपये न गणयेयुः केऽपि। केचित्पुनः पापवादानारचयेयुः'[२]।

जयतु संस्कृतम् पत्र में पाठकों के प्रोत्साहन की कामना की गई है। साथ ही पाठकों को सूचित किया गया है कि पत्र की रक्षा करना आर्य-संस्कृति की रक्षा करना है—

आर्यसंस्कृतेः पवित्रनिक्षेपं दधाना नेपाले जीवन्त्या एकमात्रं संस्कृत-पत्रिकायाः जीवितं भवतामेवाधीनं वर्तते। अस्य पत्रस्य जीवनमरणे अस्माकमार्यत्वाभिमानस्य अग्निपरीक्षारूपे तिष्ठतः।[3]

समस्त पत्र-पत्रिकायें एकमात्र सम्पादकों के उत्साह से ही प्रकाशित हुई हैं। पाठकों, ग्राहकों, लेखकों आदि के प्रोत्साहन की अपेक्षा सम्पादकों का उपहास किया गया है। जब कोई सम्पादक किसी पत्रिका के प्रकाशन की योजना बनाता था अथवा उसके प्रकाशन की चर्चा करता तो अन्य उसका उपहास करने में नहीं चूकते हैं। मित्रगोष्ठी, मधुरवाणी, वैजयन्ती आदि पत्र-पत्रिकाओं के आरम्भ में इस प्रकार की चर्चा मिलती है। जब पत्रिका का प्रकाशन स्थगित हो जाता था, उस समय सम्पादक को सब कुछ कह डालते। यथा—

'कुतो वा प्रतिबद्धा वैजयन्ती ? किं तत्सम्पादकः निद्राति अथवा दरिद्राति

---

१. Report of the Sanskrit Commission, 1956-57 p. 220

२. विज्ञानचिन्तामणि १७.१०

३. जयतुसंस्कृतम् २.४-५

उत् भयात् क्वापि प्रद्रवति ? किमस्माकं धनानि गृहीत्वा कुत्रापि सुखं शेते ? उत्तिष्ठ रे कुम्भकर्णकुमार ! लम्बकर्णडिम्भक ! प्रेषय पत्रिकाम्'[1]।

तथापि सम्पादक का उत्साह अकथनीय है। यथा—

'एतानि कठिनाक्षराणि अपि पत्राणि सम्पादकस्य हृदये आनन्दतरंगाणां उर्मी: एव उल्लोलयन्ति। यदा यदा कार्यालये पतितं पत्रण्वतं पश्यामि तदा तदा 'अहो धन्या खलु वैजयन्ती'।

यदि वैजयन्तीं न पश्यामि तदा मम रात्रौ नैवा निद्रा। दिवा नैव भोजनं रुचिकरं भवति। मम बहिश्चरप्राणायते सा संस्कृतपत्रिका'[2]।

उपर्युक्त सभी अभावों के रहने पर भी संस्कृत में अनेक पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन होता रहा है। इसका प्रधान कारण सम्पादकों का उत्साह ही प्रतीत होता है।

संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादकों का उत्साह कभी भी नैराश्य में परिवर्तित नही हुआ। जब कोई सम्पादक संस्कृत पत्र-पत्रिका के प्रकाशन का प्रस्ताव दूसरों के समक्ष रखता है, उस समय उसे चकित नयनों से, नाक-भौंह सिकोड़कर अपमानित करने वालों की शब्दराशि सुननी पड़ती है। संवादपत्रिका **सूनृतवादिनी** के प्रकाशन के समय की सामान्य प्रतिक्रिया श्रीमानप्पा ने निम्न प्रकार से प्रदर्शित किया है—

समवेक्ष्य किल सूनृतवादिन्या: संस्कृतभाषामयत्वमनुयुञ्जतेऽस्मान् केचित्पण्डितम्मन्या यदहो किमित्ययं तुषपेषणायासो यत्संकृतभाषया संवादपत्रं प्रकाश्यत इति। न किलामीषामारटिते मन: क्रियतेऽस्माभि: निसर्ग एव ह्ययं केषांचिद् यदमी युक्तमयुक्तमपि वा केनापि किमप्युपक्रान्तं तृणाय मन्यन्ते प्रकाशयन्ति च पौरोभाग्यमात्मीयं विनिन्दन्ति च नव्यं व्यवसायमिति। तदविगणय्यैवैतेषामाक्रोशमुपक्रमणीयानि कर्माणि। तथा हि आहु: इतिहासविद: **पिबन्त्येवोदकं गावो मण्डूकेषु रटत्स्वपि।**

इसी प्रकार **भारतवाणी** के प्रकाशन के समय किसी को तो अनिर्वचनीय आनन्द मिला तो अन्यों ने आश्चर्य के साथ वितृष्णा दर्शायी—

मासत्रयात् प्राक् पत्रिकाया अस्या: प्रकाशनसंकल्प: अस्माभिर्यदा प्रकटीकृतस्तदा तस्य नैकविधा: प्रतिक्रिया अस्माभिरनुभूता। आश्चर्यवद्वयं कैश्चित् दृष्टा:। आश्चर्यवत्कैश्चित्संकल्प: श्रुत:। अहो साहसमिति कैश्चिदुक्तम्। अहो मौर्ख्यमिति कश्चिदपहसितम्। साधु इति कतिपयैरनुमोदितम्।

नाङ्गीकृतं व्रतमिदं सहसान्धभक्त्या। प्रायेण सर्वेषामेव वृत्तपत्राणां

---

१. मधुरवाणी १.१

२. वही.

सम्प्रति कीदृशी दु:स्थितिः वर्तते तन्न खल्वस्माकमपरिचितम् ।[1]

संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं की आर्थिक व्यवस्था कई प्रकार से मिलती है। जिन पत्रिकाओं का प्रकाशन राजाओं के अनुदान से हुआ, उनके लिए आर्थिक व्यवस्था की चिन्ता ही नहीं रही। संस्था से प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं की आर्थिक व्यवस्था उस संस्था पर आधारित थी। व्यक्तिगत व्यय से प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं के कतिपय सम्पादकों ने भ्रमण कर, धन एकत्र करके उन्हें प्रकाशित किया है। अधिकांश पत्र-पत्रिकायें अपने अस्तित्व को निरन्तर बनाये रखनें के लिए सतत संघर्षरत रहीं हैं।[2]

आधुनिक स्थिति

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं की स्थिति से कुछ सुधार हुआ है। भारत सरकार की ओर से कुछ पत्र-पत्रिकाओं को अनुदान मिला, जिससे उनकी स्थिति में पर्याप्त सुधार हुआ है। अधिकांश पत्र-पत्रिकाओं को यह अनुदान नहीं मिलता है, अतः उनकी स्थिति में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ। फिर भी सरकार का यह अनुदान संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं के लिए वरदान सिद्ध हुआ है।

संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं के लिए आज भी उच्चकोटि के लेखकों का अभाव है। सामान्य लेखकों की रचनायें कुछ पत्र-पत्रिकाओं में मिलती हैं। कुछ संस्कृतज्ञों का ध्यान इस ओर अब आकर्षित हुआ है और वे गीर्वाणवाणी में लिखने का प्रयास करने लगे हैं। संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशनार्थ उच्चकोटि की सामग्री नहीं मिलती, तथापि उसका ऐकान्तिक अभाव भी नहीं है।

ग्राहक, धन आदि की कमी तथैव परिलक्षित होती है। प्रोत्साहन का अभाव है। आज भी संस्कृत पत्र-पत्रिकायें केवल पुस्तकालयों द्वारा मगाई जातीं हैं। इनके ग्राहक बहुत कम होते हैं। जब तक संस्कृतज्ञों का इस ओर पूर्णरूपेण ध्यान नहीं आकर्षित होगा, तब तक संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं की स्थिति ठीक से नहीं सुधर सकती है।

पत्र-पत्रिकाओं की अर्वाचीन स्थिति पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि संस्कृत पत्रकारिता में कोई विशेष सुधार नहीं हुआ, तथापि वह विकासोन्मुखी है। आज पत्रकारिता का जो विकास अन्य भाषाओं में परिलक्षित

---

१. भारतवाणी २.१

२. उद्यानपत्रिका २५.६-१२

होता है, उसका यदि अवलोकन किया जाय तो संस्कृत पत्रकारिता अभी बहुत पीछे है। स्वच्छ और शुद्ध मुद्रण, महार्घ कागज तथा इन्द्रधनुषी नयनाभिराम चित्राङ्कन और पाठकापेक्षित मनोरंजक सामग्री ही किसी भी पत्रिका के प्रचार और प्रसार के लिए आवश्यक वस्तुयें है। यह तभी सम्भव है जब विपुल ग्राहक या द्रव्य हो। विगत सौ वर्षों के परिप्रेक्ष्य पर एक विहंगम दृष्टि डालने पर ऐसा सम्भव नहीं परिलक्षित होता है। विषयगत श्रेष्ठता रहने पर भी अन्यतत्त्वों के अभाव के कारण वह निरर्थक सा लगता है। यही कारण है कि असंख्य पत्र-पत्रिकाओं की प्रतियाँ सम्पादकों के पास ही रहती है, और जीर्ण शीर्ण हो विनष्ट हो जाती हैं। पत्रिका-प्रासाद सम्पादक के स्वर्ग सिधारते ही अन्धकार के गर्त में सदा के लिये विलीन हो जाता है।

अगणित द्रव्य व्यय करके, महान् क्लेशभार स्वीकार करके, स्वच्छन्द तथा सुखपूर्वक विचरण छोड़ चिन्तानल प्रदीप्त कर, पूर्ण ग्राहक न प्राप्त कर व्यर्थ ही यह सब व्यापार फलित होता है। पत्र-पत्रिकायें सम्पादक के गृह रूपी पयोधि में ही पड़ी पड़ी क्षीण हो जाती हैं। इसका कारण अलब्ध-सदृशप्रतिग्राहकत्व ही है। यथा—

> सम्पत्री द्रविणव्ययो न गणितः क्लेशो महान् स्वीकृतः
> स्वच्छन्दस्य स्वयं जनस्य सततश्चिन्तानलो दीपितः।
> पत्री हि स्वयमेव तुल्यघनताभावाद्वराकी हता
> कोऽर्थश्चेतसि तद्विना विनिहितस्तस्य श्रमः जायते॥
> पत्रं मम जगत्यलब्धसदृशप्रति ग्राहकं।
> प्रयास्यति पयोनिधेः पय इव स्वगेहे जराम्॥[1]

संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादक प्रारम्भ से ही अनेक समस्याओं का सामना करने लगते है। संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं के अधिकांश सम्पादक चाह कर भी नयनाभिराम, मनोहारिणी पत्र-पत्रिका प्रकाशन में समर्थ न हो सके। सहृदया, श्रीपीयूषपत्रिका, शारदा, श्रीमन्महाराजकालेजपत्रिका आदि अवश्य ऐसी पत्रिकायें है, जिनका प्रत्येक दृष्टि से महत्त्व है। इनमें कलात्मक चित्र और कलात्मक छपाई तथा बहुमूल्य कागज का उपयोग किया जाता था। अन्य भाषा में प्रकाशित श्रेष्ठ पत्र-पत्रिकाओं को देखकर, अपने मोह का संवरण कर यथासंभव शुद्ध सम्पादन कर सम्पादक पत्र-पत्रिका को प्रकाशित करना

१. महान् दार्शनिक धर्मकीर्ति के प्रसिद्ध श्लोकों में किंचित् परिवर्तन कर ये श्लोकद्वय है।

चाहते थे। श्रीमानप्पा ने इसका बहुत ही सुन्दर वर्णन किया है। यथा—

न किल नाम प्रज्ञा केवलं वैदेशिकेष्वेव विधाता निहिता येन समधिगतार्थाः स्वास्थ्यमापन्ना अपि भारतीयाः स्वीयपत्रिकासु मनोज्ञत्वमाविष्कर्तुं न प्रभवेयुः। किन्तु द्रव्यमात्रायत्तं सर्वाङ्गरमणीयतापादनं ग्राहकजनानुग्रहमात्रायत्तञ्च पत्रिकाणां द्रव्याधिगमः। तदभाववशादेव हीयमानकान्तीनि व्याकुलीभवन्ति प्रत्यहं स्वदेशीयानि संवादपत्राणीति जानन्तोऽप्येतन्न जानन्ति प्रज्ञावन्तो भारतवर्षीयाः। एवं गते प्रचारितपूर्वाणामपि पत्रिकाणां प्रकाशने कष्टायमानाः सम्पादकाः कथं नाम नव्याः पत्रिकाः प्रकाशयितुं प्रभवेयुः[1]।

निष्कर्ष

संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं की समस्याओं पर यदि समीक्षात्मक दृष्टि से विमर्श किया जाय तो जितने भी अभाव परिलक्षित होतें हैं, उन सबका मूल कारण संस्कृत भाषा का व्यावहारिक भाषा न होना ही है। लेखक, ग्राहक, अर्थ, अर्थ-प्रणाश, विज्ञापन, प्रोत्साहन आदि अभावों के मूल में विद्यमान तत्त्व संस्कृत का बोल-चाल की भाषा न होना ही प्रतीत होता है। संस्कृत में आधुनिक विषयों के अभिव्यक्ति की क्षमता हैं, परन्तु उसका प्रचार और प्रसार नहीं हो पाता है। संस्कृत न तो व्यवहार अथवा बोल चाल की भाषा है, और न किसी प्रदेश के बहुसंख्यक लोगों की भााषा है, अतः संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं की दयनीय स्थिति का प्रधानतम कारण संस्कृत का गिने चुने लोगों के मस्तिष्क की भाषा का होना है।

इसका दूसरा कारण संस्कृतज्ञ स्वयमेव है। आज यदि सर्वेक्षण कर के मालूम किया जाय तो निश्चय ही यह निष्कर्ष निकलेगा कि जितने संस्कृतज्ञ हैं, उनमें एकाध प्रतिशत ही संस्कृत पत्र-पत्रिकायें खरीदकर पढ़ते हैं या नियमित ग्राहक हैं। संस्कृत का व्यावहारिक न होना, संस्कृतज्ञों का संस्कृत की पत्र-पत्रिकाओं के अतिरिक्त अन्य पत्र-पत्रिकायें पढ़ना ही संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं के अप्रकाशन, असमय पर स्थगन, सुन्दर और आकर्षक मुद्रण, सम्पादन, प्रकाशन, तथा साज-सज्जा आदि के न होनें में प्रधानतम कारण है।

---

१. संस्कृतचन्द्रिका १३.३

——:०:——

सप्तम अध्याय

सम्पादकों का व्यक्तित्व

उन्नीसवीं और बीसवीं शती में प्रतिभासम्पन्न, सुधारक और साहित्य-स्रष्टा सम्पादक हुए हैं। उनमें सभी सम्पादकीय गुणों का समावेश एवं प्रखर-पाण्डित्य मिलता है। मार्ग विधायिनी और सहजोन्मेष शालिनी शक्ति की प्रतीति उनकी रचनाओं से होती है।

भारत के विभिन्न प्रदेशों से संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ है। यद्यपि उन सम्पादकों की मातृभाषा संस्कृतेतर थी, तथापि जिस उत्साह, प्रेम और लगन के साथ संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं को प्रकाशित किया गया, वह वास्तव में चिरस्मरणीय है। चाहे वे कामरूप के हों अथवा कच्छ के, चाहे काश्मीर के हो अथवा कन्याकुमारी के, संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं के प्रति उनकी अगाध श्रद्धा और निष्ठा प्रकट होती है। उन्हें अपनी मातृभाषा में लिखने से अधिक यश और धन मिल सकता था, परन्तु उन्होंनें यश की चिन्ता न कर, निर्धन ही रह कर संस्कृत के प्रति अपने अद्वितीय अनुराग का परिचय दिया है। अनेक सम्पादक जीवन भर अनेक बाधाओं के रहने पर भी अंगीकृत कार्य करते रहे हैं।

सम्पादक का महत्त्व

सम्पादक का अधिकार उत्तुंग शिखर के समान है, जहाँ से वह समाज की गतिविधियों को देखकर अपनी भावनाओं एवं तदनुकूल सामग्री का प्रकाशन करता है। सम्पादक में सामान्य सभी गुणों का पूर्ण समावेश अपेक्षित है। सम्पादक नित नूतन विचारों और रचनाओं का अग्रदूत होता है। वह समाज का नेतृत्व अपनी प्रखर प्रतिभा से करने में समर्थ है। सम्पादक जिन विचारों का प्रतिपादन करता है, वे काल विशेष और देश विशेष तक सीमित नहीं रहते हैं, वरन् उनका व्यापक प्रचार होता है। अतः उसके विचारों में स्थायित्व होना चाहिये। पत्रकार तत्कालीन गतिविधियों से अवश्य प्रभावित होता है, परन्तु वह समाज के लिए सक्षम नव पथ-प्रदर्शक भी है। सम्पादक जिस भाषा में पत्र अथवा पत्रिका का प्रकाशन कर रहा है, उसमें उसे पारंगत होना नितान्त अपेक्षित है। तभी वह प्रज्ञा-प्रासाद में चढ़कर सभी को देख सकता

है। धनी-निर्धनी सभी का वह सचेतक और चिन्तक है। संस्कृत कवि की निम्न उक्ति पूर्णतः सम्पादक में सम्बन्ध में सही है। यथा—

प्रज्ञाप्रासादमारुह्य अशोच्यः शोचतो जनान्।
भूमिष्ठानिव शैलस्थः सम्पादकोऽनुपश्यति ॥

पत्र-पत्रिका के सम्पादन में सम्पादक पत्रकीय-रंचमंच का सूत्रधार होता है। समस्त वस्तु सम्पादक पर ही अवलम्बित रहती है। उसी पर समस्त वस्तु का विनियोग है। पत्र-पत्रिका के सम्पादक सच्चे धर्मोपदेशक भी होते हैं। सम्पादन अयाचित और स्वयं स्वीकृत सेवा है, जिसका परिवहन सभी नहीं कर सकते हैं। उस पर किसी का बन्धन नहीं है। देश, समाज, भाषा, धर्म, नीति, वाङ्मय आदि का भार सम्पादक अपने ऊपर आप उठा लेता है। किसी ने न तो दिया और न किसी ने उससे कहा है कि ऐसा करो। अतः स्वयं स्वीकृत सेवा में सदा सतर्क रहने की आवश्यकता है।

सम्पादक को समाचारों के संकलन, विचारों के प्रतिपादन और विज्ञापनों के प्रकाशन में पूर्ण ध्यान देना चाहिये। सम्पादक के विचारों में नम्रता और दृढ़ता का संयोग मणि-कांचन की तरह होता है। पत्रकार अपने को पत्र-पत्रिका में ही अभिव्यक्त करता है। अतः पत्रकार के व्यक्तित्व की कसौटी पत्रकारिता है। निम्न कथन भी अनुग्राह्य है—

पत्रकारों को चाहिये कि वे महर्षि नारद को अपना गुरु मानें। नारद प्रखर प्रचारक थे। शौर्य, धैर्य और आत्म-त्याग की सूचनायें वे दिगन्त तक फैलाते रहे। सद्‌गुणों की कीर्ति फैलाने की तथा विपत्ति और फूट के नाश की इच्छा से बढ़कर और कौन दूसरा आदर्श हो सकता है।[1]

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी सफल पत्रकार थे। वे संस्कृत के भी अच्छे ज्ञाता थे। संस्कृत चन्द्रिका में प्रकाशित **सम्पादकस्तवः** में उन्होंने सम्पादक की महिमा से अभिभूत होकर उसे नमन किया है। यथा—

देशोपकारव्रतधारकाय
नानाकलाकौशलकोविदाय।
निःशेषशास्त्रेषु च दीक्षिताय
सम्पादकाय प्रणतिर्ममास्तु ॥[2]

अर्थात् देश का उपकार करने वाले श्रेष्ठ सम्पादक अनेक शास्त्र, कला-

---

१. सम्पूर्णानन्द, आधुनिक पत्रकारकला पृ० ६४

२. संस्कृतचन्द्रिका ६.२

कौशल के ज्ञाता होते हैं। विविध विषयों का ज्ञान होना सम्पादक की श्रेष्ठता की कुंजी है। अतः सम्पादक अपने विचारों से समाज को पर्याप्त प्रभावित करने में सक्षम है, यदि वह गुण-मण्डित है, नाममात्र का नहीं।

सम्पादकीय पृष्ठ

किसी भी पत्र-पत्रिका का सम्पादकीय पृष्ठ बहुत ही महत्त्वपूर्ण होता है। समाचार प्रधान पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादकीय पृष्ठ तत्कालीन विचारधारा को प्रभावित करता है और पाठक को उससे विशेष लाभ होता है, यदि वह पृष्ठ कन्धे पर चढ़े को देखकर न लिखा गया हो अर्थात् निष्पक्ष विचार-प्रवाह ही सम्पादकीय पृष्ठ में प्रवाहित करना चाहिये। इसके लिए निर्भीक, सन्तुलित, स्वस्थ और समुचित विचार अपेक्षित हैं। यही उसका मेरुदण्ड है, मूल है, जिसपर पत्र-वटवृक्ष का प्रसार होता है। अतः इसे सबल होना चाहिये, सदल नहीं।

सम्पादकीय पृष्ठ पर पत्र के महत्त्व की आधार शिला रखी रहती है। अतः भावनाओं को आन्दोलित और प्रभावित करने वाले निष्पक्ष, स्वपक्ष स्वच्छ विचारों का प्रकाशन श्रेयस्कर है। इस सन्दर्भ में उसे सर्वथा शुक्ल पक्ष का ही गुणगान नहीं करना चाहिये अपितु कृष्णपक्ष की भी पर्याप्त चर्चा करनी चाहिये। गुण-दोष का प्रकटीकरण सर्वक्षा अपेक्षित है। ऐसा करने में सबसे बड़ी बाधा राजनैतिक रुकावट हो सकती है, क्योंकि सम्पादक का कार्य दो नावों में पैर रखे व्यक्ति की तरह होता है, जिसे दोनों को संभालना ही अपने श्रेय के लिये है अन्यथा उसका परिणाम सद्यः फलित गान्धारी की तरह प्रत्यक्ष है। उसे न तो अधिक जनभावना का पक्ष लेना है और न नरपति पक्ष का, क्योंकि जनप्रतिनिध बनने में नरपति के प्रकोप का सामना करना पड़ता है। यही कारण है कि स्वतंत्रता के पूर्व अनेक पत्र-पत्रिकायें सरकारी आदेश के कारण न प्रकाशित हो सकीं। उनके प्रकाशन पर प्रतिबन्द लगा और उनकी प्रतियाँ जब्त कर ली गई। दूसरी, ओर सरकारी जी-हुजूरी करने से पाठक वृन्द अप्रसन्न होते हैं। पाठक गण भले ही कुछ न कर सकें, ग्राहकत्त्व का त्याग तत्क्षण उनका अधिकार है। ऐसा प्रायः होता है कि पत्र-पत्रिका के ग्राहक विशेषानुबन्ध के कारण कम हो जाते हैं। किसी कवि का निम्न कथन सम्पादक के सम्बन्ध में सार्थक है—

> नरपतिहितकर्ता द्वेष्यतां याति लोके
> जनपदहितकर्ता त्यज्यते पार्थिवेन्द्रैः।
> इति महति विरोधे वर्तमाने समाने
> नृपतिजनहितानां दुर्लभः कार्यकर्ता ॥[1]

---

१. शार्ङ्गधरपद्धति, श्लोक-संख्या १३५३

अर्थात् राजा का पक्ष लेने वालों से प्रजा द्वेष करती है और जन का हित करने वाले का राजा त्याग कर देता है। विरोधी परिस्थिति के रहने पर दोनों का हितकर्ता कार्यकर्ता दुर्लभ है । समाचार पत्र-पत्रिकाओं का सफल सम्पादक मध्यम मार्गी सम्पादक होता है। संस्कृत में बहुत कम समाचार प्रधान पत्र-पत्रिकायें रहीं हैं । सूनृतवादिनी, संस्कृतं, साकेत, विजयः, सुधर्मा अवश्य इसके अपवाद हैं तथापि इनमें भी अन्य सामग्री पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होती है । अनेक पत्रों में यह स्पष्ट घोषणा रहती थी कि राजनीति प्रधान निबन्धों का प्रकाशन इसमें नहीं होगा । इससे सम्पादक की भावना का ज्ञान होता है कि वह राजनीति से दूर रहना चाहता है। यह सम्पादक की कमजोरी ही है । जनभावना का प्रतीक बनकर उसे राजनीति से अछूता नहीं रहना चाहिये। ऐसी पत्र-पत्रिकायें संस्कृत में एकाध हैं, जिनका सम्पादकीय पृष्ठ स्वतंत्र, विचारोत्तेजक, निर्भीक और जन प्रतिनिध प्रधान रहा है। स्वतंत्रता के पश्चात् अवश्य उनकी भावनाओं में परिवर्तन हुआ है, जो स्वाभाविक है, परन्तु सच्चा समाचार पत्र सम्पादक वह है जो विषम परिस्थिति में भी तत्कालीन भावना को महत्त्व प्रदान करे। यह निशित क्षुरस्य धार है, जिसपर चलना कठिन है। **अप्पाशास्त्री, नीलकण्ठ** आदि अवश्य ऐसे ही सफल सम्पादक थे, जिनमें युगीन गुरुत्व मिलता है।

साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादकीय पृष्ठ समाचार पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादकीय पृष्ठ से कथमपि कम महत्त्वपूर्ण नहीं होता है। ऐसे सम्पादक का उत्तरदायित्व नवीन साहित्यिक विधाओं का स्वागत करने में है परन्तु उन्मुक्त, उच्छृंखलता अथवा विसंष्ठुलता का तीव्र विरोध भी पूर्वाग्रह रहित होना चाहिये। **पद्मपत्रमिवाम्भसा** का तरह उसे निर्लिप्त होना चाहिए। वाद विशेष के कठघरे में उसे बन्द हो कर अपने विचार प्रस्तुत करने का अधिकार नहीं है। उसे मस्तिष्क रूपी वातायन का प्रत्येक पक्ष खोले रहना चाहिए, जिससे ज्ञान-पवन चतुर्दिक से आ सके । नयी विधाओं का स्वागत, पुरातन विधाओं का प्रतिसंस्कार करते हुए उसे सुष्ठ, ज्ञानवर्धक, मनोरंजक महत्त्वपूर्ण साहित्यांकन करना चाहिये।

संस्कृत की अधिकांश पत्र-पत्रिकायें साहित्यिक रही हैं। **विद्योदय** प्रथम साहित्यिक पत्र था, जिसमें नवीन विधाओं का प्रकाशन हुआ है । पुरातन साहित्य में व्यंग्य प्रधान गद्य नहीं मिलता, परन्तु हृषीकेश भट्टाचार्य के अधिकांश निबन्ध इस नवीन विधा के सर्वोत्तम उदाहरण हैं । इसी प्रकार अनुसन्धान की प्रवृत्ति का प्रचार पहली बार **उषा** पत्रिका से आरम्भ हुआ । इसमें सत्यव्रत सामश्रमी

का वैदिक साहित्य से सम्बन्धित प्रत्येक निबन्ध अनुसन्धान प्रधान है। इनमें तर्कानुसन्धान मौलिकता से ओत-प्रोत है। आगे चलकर अनेक पत्र-पत्रिकाओं में सम्पादकों के निबन्ध अनुसन्धान प्रधान मिलते हैं। संस्कृत चन्द्रिका, मित्रगोष्ठी, सहृदया, सारस्वतीसुषमा, शारदा, सागरिका इस दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ पत्रिकायें हैं। इनका सम्पादकीय पृष्ठ भी बहुज्ञता से परिपूर्ण मिलता है। इस प्रकार साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादकीय पृष्ठ **पूर्वापरो तोयनिधी वगाह्य** से लिखित होने के कारण **स्थितः पृथिव्यामिव मानदण्डः** की उक्ति को पूर्णतया चरितार्थ करता है।

अन्य प्रकार की पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादकीय पृष्ठ विशेषानुबन्धमय होना चाहिये। संस्कृत में अन्य भाषाओं की तरह पत्रकारिता के विविध रूप नहीं हैं। ग्राहकाभाव या संस्कृति तत्त्व ही इसका प्रधान कारण हो सकता है। संस्कृत में आर्थिक, व्यापारिक, फिल्मी जीवन से सम्बन्धित तथा वैज्ञानिक आदि प्रकार की पत्रकारिता का अभाव है। संस्कृत पत्रकारिता विशुद्ध रूप में जन सेवा नहीं है अपितु भारती सेवा है। अतः संस्कृत पत्रकारिता व्यापारिक भावना से सर्वथा विमुक्त, दुराग्रहों से उन्मुक्त एक साधना है, जिसमें आने वाली बाधायें बाधक नहीं प्रतीत होती हैं अपितु उनसे सम्पादक के उत्साह का संवर्धन होता है। अतः संस्कृत पत्रकारिता का सर्वतोमुखी विकास सम्पादक की साधना पर निर्भर रहता है।

समस्त संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादकीय पृष्ठ पर यदि विहंगम दृष्टि डाली जाय तो ऐसा लगता है कि उनमें अपनी राम कहानी के अतिरिक्त ठोस सामग्री कम है। यह उनकी विवशता थी, जिसकी चर्चा वे सतत किया करते हैं। वे अनेक अभावों का उल्लेख करते हुए काठिन्य का सामना कर पत्र-पत्रिका प्रकाशित करते हैं। पाठकों का शुल्क न देना, व्यय-भार बढ़ना, मुद्रक न मिलना, धन का न होना आदि बातों से संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादकीय पृष्ठ भरा रहता है। श्रीमानप्पा शास्त्री ने अपने सम्पादकीय पृष्ठों में धन की निःसारता का उल्लेख किया है, तथापि धनाभाव के कारण समय पर पत्रिका न निकल पाती थी। यथा—

'हे सखायः ! द्रव्यं द्रव्यमिति कियतीयं मात्रा। सञ्चिततमाऽपि हि नावतिष्ठते लक्ष्मीः। जगत्यस्मिन् सुखं दुःखं वा किमपि न चिरमत्रतिष्ठते। न सर्वदा दिवसो विराजते, न वा सदा शर्वरी शशाङ्कशोभना, न वा घोरतिमिराच्छन्ना'।[1]

---

१. संस्कृतचन्द्रिका ५.१

एकस्य दुःखस्य न यावदन्तं तावद्द्वितीयं समुपस्थितं की तरह सम्पादकों के समक्ष सदैव अभाव आते रहे हैं, परन्तु वे उनसे निराश नहीं हुए हैं ।

संस्कृतेतर पत्रकारिता के विकास में अनेक व्यक्तियों का सहयोग रहता है, क्योंकि वह एक व्यापारिक संस्था का अंग बनकर कार्य करती है । सम्पादक, अनेक सहसम्पादक, समाचार दाता, अक्षरसंयोजक आदि अनेक व्यक्तियों के सम्मिलित सहयोग से उसका प्रकाशन होता है परन्तु संस्कृत के पत्र-पत्रिकाओं की स्थिति सर्वथा इनसे भिन्न है । सम्पादक ही सर्वस्व होता है । कभी-कभी वह अक्षरसंयोजक भी होता है । अनेक सम्पादकों ने पत्र-पत्रिका के समय पर न प्रकाशित होने पर दुःख प्रकट करते हुए ऐसी बातों का ही उल्लेख किया है, जिसे पढ़कर प्रकाशन-मार्ग में आने वाले कंटकों का ज्ञान होता है । मंजुभाषिणी, मधुरवाणी, कौमुदी, मालवमयूर, ज्योतिष्मती आदि ऐसी पत्र-पत्रिकायें हैं, जिनका अक्षर संयोजन से लेकर वितरण तक का सारा कार्य सम्पादक को ही करना पड़ा है । जो पत्र-पत्रिकायें संस्था विशेष से प्रकाशित हुई हैं, उनकी स्थिति अवश्य वैयक्तिक पत्र-पत्रिकाओं से भिन्न है । वैयक्तिक रुचि और व्यय से प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादक, प्रकाशन सामग्री लिए मुद्रणालयों की परिक्रमा करते रहे हैं, परन्तु अधिकारी नहीं सुनते है ।[1] अन्ततोगत्वा पत्र-पत्रिका का प्रकाशन स्थगित करना पड़ता है या विलम्ब से प्रकाशन होता है, परन्तु दूरस्थ पाठक इस से अज्ञात होने के कारण अपने शुल्क की चर्चा करता रहता है । इस प्रकार की विषम परिस्थिति आने पर सम्पादक का आत्मतोष 'श्रुत्युक्तमार्गेण श्रद्धया च प्रयतमाने यदि देहपातः स्यात् तदिष्टापत्तिः'[1] से ही कर परम प्रसन्न होता है । यथा—

'कुतो वा प्रतिबद्धा वैजयन्ती ! किं तत्सम्पादकः निद्राति अथवा दरिद्राति उत् भयात् क्वापि प्रद्रवति ? किमस्माकं धनानि गृहीत्वा कुत्रापि सुखं शेते । उत्तिष्ठ रे कुम्भकर्णकुमार ! लम्बकर्णविडम्बक ! प्रेषक पत्रिकाम् ।

एतानि कठिनाक्षरपूर्णानि अपि पत्राणि सम्पादकस्य हृदये आनन्दतरङ्गाणां उर्मीः एवोल्लोलयन्ति । यदा यदा सम्पादकः कार्यालये पतितं पत्रपर्वतं पश्यति तदा तदा 'अहो धन्या खलु वैजयन्ती[2] ।

संस्कृत पत्र-पत्रिकायें किस प्रकार बन्द हो जाती हैं, इसके कारणों का उल्लेख **मधुरवाणी** में इस प्रकार मिलता है—

---

१. मधुरवाणी [गदग] १२.२

२. वही.

मदीया प्रार्थना मुद्रणालयाधिपैरपि अर्थाभावात् नैव कर्णे कृता । ततश्चान्ते पत्रिकायाः प्रकाशनं सम्पूर्णमेव प्रतिबद्धम् । यावत् कालपर्यन्तं पूर्वकृतं ऋणं सम्पूर्णं नैव प्रदीयते तावदेकाक्षरमपि वयं नैव संयोजयामः इति स्पष्टमेव अकथयन् । तदा मम समीपे एका स्फुटितकपर्दिकाऽपि नासीत् । तस्मादगत्या अतीव सम्भ्रमेण अत्युत्साहेन च प्रारब्धाऽपि वैजयन्ती अकस्मादेव प्रतिरुद्धा बभूव । साप्ताहिकपत्रप्रकाशनेन संस्कृतसाहित्य एवात्यद्भुतक्रान्तिरेव भवेदिति मम भ्रमकूष्माण्डः भग्नः । ऋणार्णवः उद्वेलः संवृतः । जनैरपि अपेक्षितप्रमाणेन साहाय्यं नैव लब्धम् । अत एवागत्या स्वयमेव स्थगितमभूत् पत्रप्रकाशनम् ।[1]

इसी प्रकार अन्य पत्र-पत्रिकाओं के सम्बन्ध में भी तथ्य प्राप्त होते हैं, तथापि सम्पादकों ने इस अप्रदत्त सेवा का निःस्वार्थ भावना से सतत सहर्ष निर्वाह किया है । गीता का सच्चा आदर्श **कर्मण्येवाधिकारस्ते** मा फलेषु कदाचन ऐसे ही सम्पादकों के सम्बन्ध में सार्थक है । कर्मठ और विद्वान् सम्पादकों ने संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन के लिए **लाभालाभौ जयाजयौ** की चिन्ता छोड़कर सतत निःस्वार्थ सेवा की है ।

प्रत्येक सम्पादक का संस्कृत के प्रचार और प्रसार में सहयोग रहा है । तथापि कतिपय ऐसे विशिष्ट सम्पादक हुए हैं, जिनके आदर्श आज भी अनुकरणीय हैं । जिन्होंनें पत्र या पत्रिका के न प्रकाशित होने पर कहा है—

यदि वैजयन्तीं न पश्यामि तदा मम रात्रौ नैव निद्रा । दिवा नैव भोजनं रुचिकरं भवति । मम **बहिश्चरप्राणायते** सा संस्कृतपत्रिका ।

अतः संस्कृत पत्रकारिता का इतिहास सम्पादकों के त्यागमय व्यक्तित्व से भरा है । ग्रंथ के वैपुल्य को ध्यान में रखकर कतिपय विशिष्ट सम्पादकों का ही परिचय दिया जा रहा है, क्योंकि सभी सम्पादकों का पूर्ण परिचय स्वतंत्र ग्रन्थ सापेक्ष है । अतः प्रकृत लेखक उन महनीय सम्पादकों से क्षमायाचक है, जिन्होंने सर्वस्व समर्पित कर पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन किया है या आज भी कर रहे हैं। संस्कृत के सम्पादक निम्नश्लोक की परिधि में आते हैं—

मौने मौनी गुणिनि गुणवान् पण्डिते पण्डितोऽसौ
दीने दीनः सुखिनि सुखवान् भोगिनि प्राप्तभोगः ।
मूर्खे मूर्खो सुयतिषु यती वाग्मिषु प्रौढवाग्मी
धन्यः लोके त्रिभुवनजयी योऽवधूतेऽवधूतः ॥[2]

---

१. मधुरवाणी १.१ शकाब्द १८७७
२. संस्कृतरत्नाकरः २६.३

हृषीकेश शास्त्री भट्टाचार्य (१८५०-१९१३ ई०)

हृषीकेश शास्त्री ने **विद्योदय** नामक मासिक संस्कृत पत्र का अनेक वर्षों तक सम्पादन किया। वे ओरियंटल कालेज लाहौर में अध्यापक थे। शास्त्री जी अनेक भाषाओं के ज्ञाता थे, जिसके कारण विद्योदय पत्र में भाषा-विज्ञान का पूर्ण विवेचन रहता था। विद्योदय में शास्त्री जी के अधिकांश साहित्य का प्रकाशन हुआ है। **नाविकसंगीतम्, मातृस्तोत्रम्, कमलास्तवः, वियोगिविलापः** आदि अनेक सुन्दर सरस गीतिकाव्यों का प्रकाशन हुआ। **होल्यष्टकम्, मृत्युष्टक, विजयादशकम्, देव्यष्टकम्, अन्नपूर्णाष्टकम्** आदि अनेक अष्टकों और दशकों का प्रकाशन **विद्योदय** में हुआ है। शास्त्री जी ने अंग्रेजी की कई पुस्तकों का सरस अनुवाद संस्कृत में प्रस्तुत किया, जिनमें **पर्यटकत्रिंशत्** और **हैमलेटचरितम्** प्रधान हैं। समालोचना और टीका के क्षेत्र में भी भट्टाचार्य जी की देन प्रशंसनीय है। उनकी मेघदूत की टीका विख्यात है।

प्राचीन संस्कृत साहित्य में निवन्ध लेखन का प्रचार नहीं था। भट्टाचार्य जी ने सामयिक विषयों पर निवन्ध लिखकर मौलिक प्रणाली का प्रचार किया है। **विद्योदय** में शास्त्री जी के सामयिक समस्याओं पर सरल और विनोदपूर्ण शैली में लेख हैं। **भाषा-विचारः, परिहासः, विदूषकः, काबुलयुद्धम्, शिक्षा-प्रयोजनम्** आदि प्रधान रूप से उल्लेखनीय है। विद्वानों ने उनके विषयों की नवीनता और विनोद पूर्णशैली तथा विविधता की प्रशंसा की है। मैक्समूलर ने भी शास्त्री जी के अद्भुत कार्य को पसन्द किया था। उन्नीसवीं शती में एक संस्कृत पत्रिका का नूतन विचार-प्रणाली से तथा पाश्चात्य शैली में सम्पादन कर शास्त्री जी ने इस युग में संस्कृत साहित्य की अमूल्य सेवा की है तथा अपने प्रवन्धों से उसकी श्री वृद्धि की है। **एकाक्षरकोषः, एकवर्णार्थसंग्रहः, द्विरूपाक्षरकोषः** आदि अनेक कोषों से शब्द भण्डार को पूर्णता प्रदान किया है। **विद्योदय** में प्रकाशित सम्पूर्ण लेखकों का एक संग्रह **प्रवन्धमंजरी** नाम से प्रकाशित हुआ है। यह मनोहर और **सकलरसपरम्परातरङ्गितानां प्रवन्धानां संग्रहः** है। शास्त्री जी की भाषा साहित्यिक होते हुए भी सुगम है। **विद्योदय** में शास्त्री का **उद्भिज् परिषद्** नामक एक लेख है, जिसमें पेड़-पौधों की सभा में मनुष्यों के सम्बन्ध में बड़ी रोचक चर्चा होती है। यथा—

अश्वत्थमहोदयः स्वशाखाहस्तमुत्थाप्य प्रतिपादयति। भो भो ! नानादिग्देश-समागताः सुभद्रा वनस्पतयः परमप्रियतमा लतावध्वश्च, सावहिताः शृण्वन्तु भवन्तः। अद्य मानववार्तैवास्मत् समालोच्यविषयः। मानवा नाम सर्वासु सृष्टि-

धरासु निकृष्टतमा सृष्टिः। समन्तादभिनवोत्तरविलक्षणसृष्टिमुत्पादयता भगवता जगत्सवित्रा यादृग्बुद्धिप्रकर्षः सृष्टिनैपुण्यं च प्रदर्शितं, मानवसर्गं विदधता पुनरनेन तत्सर्वमेकपद एवापहारितम्, एतावदुच्चावचसृष्टिपरम्परामवलोक्य स्रष्टुरगाधबुद्धिमत्वं सृष्टिश्चेयं बुद्धिपूर्वकेति यदस्माभिरनुमितमासीत् पूर्वं साम्प्रतं मानवसर्गसन्दर्शनेन तु निःशेषतोऽपागतोऽसौ संस्कारः, संजातश्च तद्विपरीतः स्रष्टुर्न स्वल्पापि बुद्धिर्विद्यत इत्येवं रूपः कोऽपि निश्चयः।

व्यंग्य शैली का सुन्दरतम और पहली वार प्रयोग संस्कृत साहित्य में हुआ है। इसमें भाषा का प्रवाह भावों के साथ हुआ है। सफल सम्पादक के सम्पूर्ण गुणों के साथ साथ भट्टाचार्य में साहित्यकार के गुण पूर्णरूपेण परिलक्षित होते हैं। **विद्योदय** पत्र में गम्भीरता के आवरण में मन्द परिहास है। पाठकों को विद्योदय अत्यन्त प्रिय पत्र था। आर्थिक संकट रहने पर भी वे सदैव विद्योदय का प्रकाशन करते रहे।

उनकी भाषा अत्यन्त प्रांजल एवं प्रवाहपूर्ण है। संस्कृत में व्यंग्य-शैली का प्रथम प्रादुर्भाव इन्हीं निवन्धों से माना जायगा। भट्टाचार्य जी की भाषा में बाण की शैली की पूरी छाप है। **विजयोत्सवभाणः** तथा **नरकपालप्रत्यावेदनम्** में व्यंग्य शैली अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच गई है।

तत्कालीन अनेक साहित्यकारों की कृतियों का मूल्यांकन करते हुए, शास्त्री जी उन्हें समुचित सुझाव दिया करते थे।

ईप्सितार्थस्थिरनिश्चयं मनः वाले मनुष्य की तरह वे अपने संकल्प के प्रति सदैव अडिग रहे। **दातव्यं शुल्कं न वर्तते मत्पार्श्वे** अर्थात् उनके पास देय शुल्क भी न होने पर भी वे निरुत्साही नहीं थे। वे **चक्रवत् परिवर्तन्ते दुःखानि च सुखानि च** पर विश्वास करते थे। **प्रतिकूलतामुपगते विफलत्वमेति वहुसाधनता** में विश्वास करने भी कभी भी उन्होंने आत्मप्रतिष्ठा के विपरीत कार्य नहीं किया। अतः विद्योदय में प्रकाशित शास्त्री जी के निबन्ध सरस और गम्भीर हैं। इनके निबन्धों की भूरि भूरि प्रशंसा मिलती है—

'निबन्धानेतानवलोक्य न केवलं जीवति खलु संस्कृतभाषेति प्रत्ययः सुदृढो भवति, सन्तीदानीमपि बाणसरणिमनुसर्तुं तदतिशयितुञ्च शक्ता लेखकधौरेयाः। ये हि स्वप्रतिभा वलेन नवनवान् प्रकारानुद्भाव्य गद्यकाव्यानां ह्रेपयन्ति निर्जीवसंस्कृतभाषेति वादिनः समुल्लासयन्ति साहित्यचन्द्रचकोरचेतांसि प्रीणयन्ति विवुधजनमनांसि प्रकाशन्ति चात्मनोऽसाधारणं वैदग्ध्यं संस्कृतानुरागञ्चेत्यादिविचारपरम्पराविचक्षणसहृदयमधिकुर्वन्ति।'[1]

---

१. शारदा [प्रयाग] ३.३ पृ० ९३.

विद्योदय के प्रकाशन के लिए उन्हें सतत संघर्ष करना पड़ा है। आर्थिक अभावों से ग्रस्त होने पर भी उन्होंने विद्योदय के प्रकाशन से सन्यास नहीं लिया। अतीत की याद वे ऐसे समय करते हैं, जब अनेक प्रवन्धों के प्रणयन से भी अर्थ की सिद्धि नहीं होती है। यथा—

'भवतु कालस्य कुटिला गतिरेकदा प्रतिश्लोकं ब्राह्मणैर्लक्षमुद्रा लब्धा। अद्य तु सुदीर्घं प्रबन्धत्रयं रचयित्वाहं पञ्चमुद्रा प्राप्तवान्।'[1]

श्री हृषीकेष भट्टाचार्य जी सफल गद्य काव्य प्रणेता और गीतिकाव्य गायक थे। भट्टाचार्य जी का उद्देश्य संस्कृत भारती के भण्डार को अर्वाचीन वाङ्मय से परिपूर्ण करना था। इसमें वे यावज्जीवन प्रयत्नशील रहे। शारदा पत्रिका में इनका इतिवृत्त प्रकाशित हुआ है।[2]

दामोदर शास्त्री (१८४८-१६०६)

उन्नीसवीं शताब्दी में नूतन विचारों से संवलित पाक्षिक पत्र का सम्पादन कर शास्त्री जी ने संस्कृत साहित्य की अपूर्व सेवा की है। **विद्यार्थी** पत्र में **बालखेलम्** नामक पांच अंकों का स्वरचित नाटक प्रकाशित हुआ, जिसमें प्राचीन परम्परा नान्दी आदि अपनायी गयी है। इस नाटक में ध्रुव चरित्त अत्यन्त ही निपुणता के साथ चित्रित किया गया है। आदर्श चरित्र के अंकन में नाटककार सफल हुआ है। **श्री गंगाष्टकम्, जगन्नाथाष्टकम्** आदि अष्टकों की रचना से भक्ति भावना को सदा जागृत करने का प्रयास किया गया है। **चन्द्रावली** नाटिका में कालिदास तथा हर्षवर्धन की सुकुमार शैली अपनायी गयी है। सम्पादक अपनी कृतियों में भावों की सरिता बहाकर सहृदयों के हृदय को आकर्षित करना चाहता है, शब्दों के जाल से नहीं। पत्र में अनेक सरस निबन्धों के दर्शन होते हैं। एकान्तवासः में दार्शनिक सिद्धान्तों का तथा उपद्रवः में तत्कालीन अशान्ति का पूर्ण विवेचन किया गया है। सैद्धान्तिक तत्वों की पुष्टि वेद, उपनिषद्, पुराण, भाष्यादि ग्रंथों से की गयी है, जिससे उनके अगाध अध्ययन और शास्त्रानुशीलन का परिचय मिलता है।

सत्यव्रत सामश्रमी

सत्यव्रत सामश्रमी सफल पत्रकार और वैदिक वाङ्मय के धुरन्धर ज्ञाता थे। वनारस में रहते हुए उन्होने पहले **प्रत्नकम्रनन्दिनी** मासिक पत्रिका का

---

१. विद्योदय, जनवरी १८६५.
२. शारदा [प्रयाग] ३.३ पृ० ८८-६८

प्रकाशन किया था। इसके बाद कलकत्ता से वैदिक वाङ्मय से संवलित उषा का प्रकाशन किया था, जिसकी ख्याति और प्रचार विदेशों में भी पर्याप्त था। इनका वैदिक साहित्य पर किया गया अनुसन्धान चिरस्मरणीय और पथप्रदर्शक है। दोनों पत्रिकाओं में प्रकाशित उनके विचारपूर्ण और तर्कसम्मत निवन्धों का पर्याप्त समादर था। बंगाल में वेद और वेदाङ्ग का प्रसार सत्यव्रत सामश्रमी ने पर्याप्त किया।[1] उषा का प्रत्येक अंक शोधपूर्ण रहा है। शोधानुशीलन संस्कृत में सत्यव्रत सामश्रमी ने ही प्रारम्भ किया। कन्याविवाहकाल: (१.१०) समुद्रयात्रा (१.१) अथ जीवगति: आदि निवन्ध मौलिक अनुसन्धान से ओत-प्रोत हैं। ऐतरेयालोचना, आर्षेयब्राह्मण:, सामप्रातिशाख्यं, नारदीयशिक्षा, अक्षरतन्त्रं, सामविधानब्राह्मणं, पार्षदसूत्रम् आदि श्रेष्ठ समालोचना प्रधान मूल सहित ग्रंथ हैं। उषा पत्रिका की छपाई, प्रकाशन, विषय-संजोजन आदि मनोरम और सुन्दर थे।

विद्यावाचस्पति अप्पाशास्त्री (१८७३-१९१३)

श्रीमानप्पा का जन्म कोल्हापुर से बारहमील दूर राशिवडे ग्राम में हुआ था। इनके पिता का नाम सदाशिव और माता का नाम पार्वती था। प्रारम्भ से ही शास्त्री जी की प्रतिभा प्रखर थी। जयचन्द्र सिद्धान्तभूषण के सम्पादकत्व में **संस्कृतचन्द्रिका में मातृभक्ति:** विषय पर काव्य प्रतिस्पर्धा में अप्पाशास्त्री को प्रथम पुरस्कार मिला। कालान्तर में ये अपनी प्रतिभा में कारण संस्कृत-चन्द्रिका के सम्पादक हो गये। **संस्कृत चन्द्रिका** का सम्पादकत्व ग्रहण करने के पूर्व संस्कृतभाषा में एक पत्रिका प्रकाशित करना अप्पा शास्त्री राशिवडेकर चाहते भी थे। यथा—

'सहृदया:। विदितमेवेदं भवतां चिराय किल वयं कामपि संस्कृतमासिक-पत्रिकां प्रचारयितुं कामयामहे। एतत्तु नास्माभि: सम्भावितं यत्संस्कृतचन्द्रिका-सहकारिसम्पादकत्वेन दूरतरदेशवर्तिनोऽप्यस्मानेवाऽऽश्रयेदिति।

किं तु श्री जयचन्द्रसिद्धान्तभूषणभट्टाचार्याणामसाधारणानुग्रहादस्मदीय-भाग्यप्रकर्षाद्वा महाशयानां ग्राहकाणां चन्द्रिकायामादरातिशयाद्वा चन्द्रिका-प्रचारणमस्मास्वेवापतितम्। आशास्महे प्रदत्तोत्साहां चन्द्रिकामणीयस: कारणान्न कदाचिदपि पराङ्मुखीं कुर्यासू रसिकप्रवरा भवन्त:।[2]

संस्कृतचन्द्रिका में अप्पाशास्त्री के प्रकाशित अद्वितीय प्रवन्धों के कारण

---

१. Journal of the G.N. Jha Research Institute Vol, XIII p. 156

२. संस्कृतचन्द्रिका ५.१

उन्हें विद्यावाचस्पति की उपाधि मिली ।[1] भारतरत्न, भारतोपदेशक आदि उपाधिओं से विभूषित शास्त्री जी राशिवडेकर नाम से अधिक प्रसिद्ध हुए। शास्त्री जी की प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। गद्यकाव्यों में इन्दिरा, देवीकुमुद्वती, दशापरिणति, मातृभक्ति, लावण्यमयी आदि प्रधान रूप से उल्लेखनीय हैं। रूपान्तर में आपकी तूलिका मूल भावों के प्रकाशन में विशेष चमत्कारिणी है। धार्मिक ग्रन्थों में सामान्यधर्मदीपः, मातृगोत्रवर्जननिर्णयः, पतितोद्धार-मीमांसाखण्डनम् तथा सामाजिक ग्रन्थों में समाजसंस्कारः, धर्मपीठानि धर्मा-चार्याश्च और पद्यकाव्यों में वल्लभविलापः, पंचरबद्धः शुकः, निर्धनविलापः, आदि प्रधान हैं।

अधर्मविपाकम् शास्त्री जी का सामाजिक और सरस नाटक है। विज्ञान के सम्बन्ध में लिखने का सर्वप्रथम इन्होंने प्रयास किया। अनेक ग्रन्थों की टीकायें भी शास्त्री जी ने लिखीं। अप्पाशास्त्री राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत मनीषी थे। इस संबन्ध में उनके कई निबन्ध पत्र-पत्रिकाओं में मिलते हैं। द्राक्षापाक के समान सरस और मनोहारिणी आपकी रचनायें सहृदयों को आकर्षित करने में समर्थ हैं। सहृदया के अनुसार—

'यः किल कालिदास इव मनोहरकवितानिर्माणनिष्णातः, बाण इव नानाविधसरसगद्यप्रबन्धप्रणेता, मल्लिनाथ इव सप्रमाणमहाकाव्यव्याख्यान-चतुरः, गीष्पतिरिव यथार्थमनोहारि वचनविन्यासकुशलः, चन्द्र इव समु-त्कण्ठितचकोरकुलस्य प्रसादंश्चेतांसि रसिकमण्डलस्य चन्द्रिकाविष्करणेन, सौभाग्यतिलक इव भगवत्याः सरस्वत्याः, निधिरिव विद्यानां, आदर्श इव गुणा-नां मित्रमिव धर्मस्य जीवनमिव सुहृदां यः निजेन विशुद्धेन यशसा युवाऽपि विवेकवृद्धो धवलीकृतानि दिगन्तराणि।'[2]

सहृदया, मंजूषा आदि पत्रिकाओं में अप्पाशास्त्री की जीवनी पर प्रकाश डाला गया है।[3] उन्नीसवीं और बीसवीं शती की अनेक पत्र-पत्रिकाओं में संस्कृतचन्द्रिका और सूनृतवादिनी में श्रीमानप्पा के निबन्धों में प्रयुक्त सरस भाषा-सरणि, वाग्प्रवाह और अर्थगाम्भीर्य तथा ललितपदविन्यास की यथार्थ समीक्षा मिलती है। यथा—

'तत्र हि चन्द्रिकायामर्थगाम्भीर्यं पदलालित्यं वाङ्मयमाधुर्यं सुमहती संस्कृते व्युत्पत्तिः मनोरमा विषयविवेचनासरणिः प्राचीनतत्त्वानुसंधानकौशलं प्रासाद-

१. संस्कृतचन्द्रिका ७.३
२. सहृदया १८.१
३. मंजूषा १५.७, सहृदया १८.१

गुणानुग्रहा चमत्कारिणी कविताशक्तिः तत्तद्भावप्रदर्शकं रचनाचातुर्यञ्चे-त्यादयो बहवो गुणाः समुल्लसन्ति स्म ।[1]

गद्य और पद्य में अप्पाशास्त्री का समानाधिकार था। श्रीमानप्पा की समालोचना यथार्थ और गुण-दोष को प्रकट करती है। आपकी शैली सरस, परिमार्जित और प्रवाहमयी है । माननीय भावों को प्रकट करने में आपकी तूलिका विशेष रूप से समर्थ है।

अप्पाशास्त्री में कारयित्री और भावयित्री प्रतिभा का अद्भुत समन्वय था। वे श्रेष्ठ साहित्यकार और समालोचक थे । अनेक उपन्यास, टीकायें, आलोचना तथा फुटकर गीत और निबन्ध उनकी विपुल ज्ञान-राशि के संचित कोश हैं। इन्दिरा, लावण्यमयी, कुमुद्वती, अधर्मविपाकम् आदि विख्यात ग्रंथ हैं। धाता धत्ते वियं कवेः, निर्धनविलापः और उदरप्रशस्तिः चुभते, रसीले व्यंग्यार्थ पूर्ण रचनायें हैं। आलोचनाओं में सुकवि अप्पा की सर्वत्र सूक्ष्मेक्षिका और तलस्पर्शी शेमुषी का परिचय आद्यन्त मिलता है।

अप्पाशास्त्री शिव के परम भक्त तथा श्रेष्ठ उपदेशक भी थे। धर्म के विरुद्ध कुछ भी सुनने के लिए वे समर्थ नहीं थे। उन्होंने संस्कृत भाषा की सेवा करने का व्रत लिया था और वे इसे अन्त तक निभाते रहे। संस्कृत के प्रति उनका जन्म जात अनुराग था। अतः उसके पुनरुज्जीवन में उन्होंनें अनेक कष्टों को सहन किया। उनके व्यक्तित्व का परिचय उनका इच्छापत्र है, जिसमें उनकी भावनाओं का सार आ गया है। यथा—

'भो ! भो ! संस्कृताभिमानिनो निखिलभारतवर्षदेशीयाः, विशेषतस्तु महाराष्ट्रीयाः। एषोऽहमाकारितोऽकाल एव भगवता पार्वतीजानिना ।

बाल्यात्प्रभृत्याऽऽमरणं अविगणय्यशरीरसुखं विहितगीर्वाणवाणी परिचरण-स्तेनैव सुकृतेन प्रयामि कैलासपदम्। मदीये किल दारिके संस्कृतचन्द्रिका-सूनृतवादिनी चेत्यननुष्ठितविवाहसत्क्रिये अनुरूपवरावाप्तये तपश्चरन्त्याविव संवत्सरद्वितयमिदं वाचंयमत्वेनावस्थिते। ते च खलु भवतां मध्ये यः कश्चना-धिकारसम्पन्नः सत्कीर्तिवरदक्षिणालोलुपः परिणीय यथार्हं सम्भावयति चेत्, अकृतार्थोऽप्यहं कृतार्थमिव. एकाक्यपि सुहृत्समावृतमिव अनपत्योऽपि दारिका-द्वयसनाथमिव मृतोऽपि जीवन्तमिवात्मानमाकलयेयम्'[2]।

श्रीमानप्पा उच्चकोटि के सफल पत्रकार थे। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के अनुसार साप्ताहिक समाचार पत्रों में जो गुण होने चाहिये, वे सब

---

१. मधुरवाणी [गदग] ७.५-७

२. सहृदया, १९१ पृ० ७

सूनृतवादिनी पत्रिका में हैं; तथा **संस्कृतचन्द्रिका** और **सूनृतवादिनी** के सम्पादक श्रीयुत अप्पाशास्त्री राशिवडेकर बड़े भारी विद्वान् और काव्यशास्त्र के परमोत्कृष्ट ज्ञाता हैं। कविता आपकी बड़ी ही रसवती है।'[1] अप्पाशास्त्री से सम्बन्धित साहित्य विपुल है। **शारदा** पत्रिका के दो विशेषाङ्क बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं जो साहित्यिक समीक्षा को छोड़कर अन्य सभी पहलुओं पर पर्याप्त प्रकाश डालते हैं।[2]

महामहोपाध्याय रामावतार शर्मा (१८७७-१९२९ ई०)

रामावतार शर्मा का जन्म विहार प्रदेश के छपरा नगर में हुआ। बारह वर्ष की अवस्था तक शर्मा जी ने घर पर ही अपने पिता से अध्ययन किया। प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् शर्मा जी ने काशी के तत्कालीन सुप्रसिद्ध विद्वान् महामहोपाध्याय गंगाधर शास्त्री के सान्निध्य में अनेक शास्त्रों का अध्ययन गुरुमुख से किया।

सन्१९०१ से सेन्ट्रल हिन्दू कालेज बनारस में सर्वप्रथम शर्मा जी संस्कृताध्यापक नियुक्त हुए। १९०५ ई० तक उस पद पर इन्होंने कार्य किया। इस अवधि में काशीविद्वन्मण्डली में इनका नाम अग्रगण्य था। इसी समय विविध विचारों से संवलित **मित्रगोष्ठी** नामक उच्चस्तर वाली संस्कृत पत्रिका का प्रकाशन किया। यह पत्रिका विद्वानों द्वारा समादृत और नितान्त लोक-प्रिय थी। सन् १९०६ से शर्मा जी पटना कालेज में प्राचार्य नियुक्त हुए और अन्तिम समय तक इसी पद पर कार्य किया। सन् १९१९ से १९२२ तक काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के ओरियन्टल कालेज में प्राधानाचार्य भी रहे।

शर्मा जी का व्यक्तित्व उदात्त था। उनकी प्रखर प्रतिभा के सामने सभी नत थे। शर्मा जी प्राचीन भारतीय विद्याओं के सर्वांगीण मर्मज्ञ थे। उन्होंनें वैज्ञानिक विधि से नवीन और प्राचीन सभी शास्त्रों का अध्ययन किया था। ऐसा प्रतीत होता है कि वे सभी शास्त्रों के मर्मज्ञ थे। नाटक, गीति काव्य, निबन्ध आदि रचनाओं के अतिरिक्त दर्शनग्रन्थ और संस्कृत का विश्वकोष इनकी अपनी कोटि की निराली रचनायें हैं।

शर्मा जी अनेक भाषाओं के ज्ञाता थे। संस्कृत, पाली, हिन्दी, अंग्रेजी लैटिन आदि भाषाओं में उनकी रचनायें मिलती हैं। उनकी कुछ रचनायें अनेक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं। सूत्रवद्ध **परमार्थदर्शन** का प्रकाशन

---

१. सरस्वती, मार्च १९१०

२. शारदा [पुणे] शारदा गौरवग्रंथमाला, ७,३०

संस्कृत संजीवनम् में आरम्भ हुआ था। दर्शन के क्षेत्र में यह अद्वितीय और नूतन दार्शनिक प्रणाली को स्थापित करने वाला विशाल ग्रन्थ है। संस्कृत-चन्द्रिका, मित्रगोष्ठी, सूक्तिसुधा तथा शारदा पत्रिकाओं में शर्मा जी की गद्य और पद्य की रचनायें प्रकाशित हुई हैं। हास्यरसप्रधान **मुद्गरदूतम्** की रचना महाकवि कालिदास के मेघदूत के आधार पर उन्होंनें की है। इसका प्रकाशन शारदा पत्रिका (१.३) में हुआ है। **सूर्यशतकम्, मारुतिशतकम्** आदि शतक ग्रन्थ भी शारदा में प्रकाशित हुए हैं। **भारतीयमितिवृत्तम्** कवि की ऐतिहासिक रचना राजतरंगिणी के आदेश पर लिखी गई है। **वाङ्मयमहार्णवः** श्लोकबद्ध रचना संस्कृतविश्वकोष है। मित्रगोष्ठी में सतत प्रकाशित **साहित्यरत्नावली** स्तम्भ में संस्कृत कवियों के विषय में प्रामाणिक सामग्री मिलती है।

शर्मा जी उच्चकोटि के दार्शनिक थे जैसा कि **परमार्थदर्शन** से प्रकट है। प्राच्य एवं पाश्चात्य दोनों दर्शनों पर उनका समान अधिकार था। भारतीय दर्शन की तरह समग्र यूरोपीय दर्शन के विवेचन में उन्हें सफलता मिली। प्रत्येक क्षेत्र में उन्होने चिन्तन किया और जो ठोस वस्तु मिली उसी का प्रकाशन अपनी रचनाओं में किया। उनके ज्ञान की अगाध गरिमा और बहुज्ञता का परिचय उनकी रचनाओं में मिलता है। सरस वाङ्मय मधुधारा तथा मनोरम पदविन्यास और प्रवाहमयी भाषा का एवं उनकी चमत्कृत करने वाली शैली का ज्ञान निम्न उदाहरण से होता है—

'धनमित्रो ललाटन्तपतपनांशुतापितकपिशसिकतेषु विरलतरकतिपयनिम्बशमीतरुषु मरुषु आस्यंस्तृपार्त्तो नातिविप्रकृष्टसैकतसमागतं खरांशुमरीचिचयं तोयसमानरूपमुपलभते। संदिग्धायामपि चेदृशे जलरूपे जलरसास्वादनाशायां तां सद्यः सफलीकर्तुं प्रवृत्तस्तद्बाधमुपलभ्य नैराश्ये मज्जति। विष्णुमित्रस्तु तत्सहचरो जलरूपाभासमात्रं तत्रोपलब्धं प्रतिपद्यमानः प्रथमत एव संदिग्धरसास्वादनाशः पश्चान्निश्चितेऽपि रसास्वादनाबाधे निर्वेदरहितो जलमन्यत्रान्विष्यति प्राप्नोति च तत्कूजत्पक्षिकुलकलकलमुखरितप्रान्ते।[1]

विचार में विलक्षणता के भण्डार और आचार में सरलता के अवतार इन्हीं दो शब्दों में शर्मा जी का सम्पूर्ण व्यक्तित्व निहित है। यह महापुरुष अपने समय का प्रखर चिन्तक, सुधारक और श्रेष्ठ साहित्य स्रष्टा था। उनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी।

विधुशेखर भट्टाचार्य [१८७७-१९४६ ई०]

विधुशेखर भट्टाचार्य का जन्म कालीवाटी (बंगाल) नामक स्थान में

---

१. संस्कृतसंजीवनम्, सं० २००२, पृ० १५

हुआ था। इनके पिता का नाम त्रैलोक्यनाथ भट्टाचार्य था। श्रीकृष्णरत्न-भट्टाचार्य और श्रीकृष्णकेशवभट्टाचार्य से इनका प्रारम्भिक अध्ययन हुआ। इन्होंने सोलह वर्ष की अवस्था में काव्यतीर्थ ससम्मानित उत्तीर्ण कर प्रखर प्रतिभा का परिचय दिया।

सन् १८९७ में अध्ययनार्थ विधुशेखर काशी आये और महामहोपाध्याय कैलाशचन्द्र तर्कशिरोमणि से विविध विषयों का, विशेष कर न्याय का अध्ययन किया। सन् १९०४ से महामहोपाध्याय रामावतार के सहयोग से **मित्रगोष्ठी** पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया। सन् १९०७ के आसपास शान्तिनिकेतन विश्वविद्यालय में भट्टाचार्य की नियुक्त अध्यापक पद पर हुई। भट्टाचार्य की पहली कृति **यौवनविलासम्** है। इसका प्रकाशन मित्रगोष्ठी में हुआ है। यह ग्रन्थ अत्यधिक सरस और भावप्रधान है। सारस्वतीसुषमा पत्रिका में इसका संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया गया है। तदनुसार—

'निसर्गसिद्धकवित्वशक्तेः परिपाकमहिम्ना सरस्वत्या यौवनविलासमिव यौवनविलासनामकं लघुकाव्यं प्रथमनिर्मितिरेतेषां विदुषां चेतश्चमत्कारमचीकरत्। संस्कृतमासिकपत्रिकायाः मित्रगोष्ठ्याः सम्पादनं विधाय विशिष्टसम्पादन-लेखनादि कौशलं प्रादर्शि ततश्च साहित्यपरिषत्पत्रिकायाः सम्पादनविभागे प्रविष्य अकारविषये शताधिकं पृष्ठपरिमितां लेखमालां प्रकाश्य विचित्रं बुद्धिवैभवं प्रादर्शि।[1]

संस्कृत और बंगला के महान् पण्डित विधुशेखर की लेखनी से निःसृत अनेक प्रकार के ग्रन्थों का प्रकाशन मित्रगोष्ठी में हुआ है। **उमापरिणयः** और **हरिश्चन्द्रचरितं** महाकाव्य, **यौवनविलासः**, **चित्तविलासः** (खण्डकाव्य), **बद्धविहंगः**, **प्रभातकुन्दम्**, **जीर्णतरुः**, **नैराश्यम्**, **वारिदामंत्रणम्** आदि फुटकर सरस कवितायें, **अपत्यविक्रयः**, **क्षुत्कथा**, **दीनकन्यका** आदि कहानियाँ, **जयपराजयम्**, **चन्द्रप्रभा** उपन्यास और अनेक मौलिक तथा अनुसन्धान प्रधान निबन्ध संस्कृतचन्द्रिका और मित्रगोष्ठी में प्रकाशित हुये हैं।

विधुशेखर भट्टाचार्य ने सतत गीर्वाणवाणी की सेवा की है। मित्रगोष्ठी में प्रकाशित उनके निबन्धों से प्रतीत होता है वे चिन्तक और सरल प्रकृति के पुरुष थे। जैसे उनकी भाषा सरल थी, वैसे ही वे सरल थे। कृष्णमाचारियार ने अपने इतिहास में इनके वैदुष्य की चर्चा अनेक वार की है।[2]

---

१. सारस्वतीसुषमा ४.१

२. K. History of Classical Sanskrit Literature, p. 302, 308K.

अन्नदाचरण तर्कचूड़ामणि

अन्नदाचरण तर्कचूडामणि का जन्म सोमपाद (बंगाल) में हुआ था। कलकत्ता और बनारस में इन्होंने अध्ययन किया। इनके प्रखर पाण्डित्य के कारण काशी समाज ने इन्हें तर्कचूड़ामणि की उपाधि से विभूपित किया था। मीमांसा, सांख्य और योग के ये प्रकाण्ड पण्डित थे। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में कुछ काल के लिए प्राध्यापक थे। सुप्रभातम् तर्कचूड़ामणि के सम्पादत्व में अच्छा पत्र था। कृष्णमाचारियार के अनुसार—

His writings began when he was yet young. A combination of attainments in Sastras and poetry is rare and in his retirement he pursues his service to Sarasvati, being an agnihotri in true orthodoxy.[2]

अन्नदाचरण अनेक सरस लघु गीतों के प्रणेता था। संस्कृतचन्द्रिका में उनका प्रकाशन हुआ है। **आशा, शिशुहास्यं, वनविहंगः, निद्रा, तदतीतं, कल्पना** आदि उत्कृष्ट मनोरम लघुगीत हैं, जिनका प्रकाशन संस्कृतचन्द्रिका में हुआ है। **रामाभ्युदयम्** और **महाप्रस्थानम्** दो महाकाव्य हैं। **ऋतुचित्रं** और **काव्यचन्द्रिका** काव्यशास्त्र से सम्बन्धित महनीय रचनायें हैं। सुन्दरतम दृश्य उपस्थित करने में अन्नदाचरण सिद्धहस्त एवं कविकर्म में निष्णात महाकवि थे। अनेक शास्त्रों में अन्नदाचरण का अव्याहत प्रवेश था। **तत्त्वसुधा** नाम से सांख्यकारिका की टीका, **न्यायसुधा, वैशेषिकसुधा** आदि शास्त्रीय ज्ञान के ज्वलन्त निदर्शन हैं। **किमेष भेदः** उनकी सामाजिक रचना हैं, जिसका एक सुन्दर चित्र देखिए—

एको विलासी शशिरश्मिधौतप्रासादवातायनवातसेवी।
अन्यश्चिरं पर्णकुटीरवासी किमेषभेदः समदर्शि सर्गे॥

चन्द्रशेखर शास्त्री (१८८४-१९३४ ई०)

आरा जिले के निमेज में श्रीशंकरदयाल ओझा के पुत्र श्रीचन्द्रशेखर शास्त्री का जन्म हुआ। परिवार के सदस्य शिक्षा के प्रति उदासीन थे। अतः आठ वर्ष के पश्चात् शास्त्री जी अध्ययनार्थ पैदल ही काशी आये। आरम्भ में इन्हें अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, तथापि ये अध्ययन से पराङ्मुख नहीं हुये।

साहित्याचार्य की परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् प्रथम बार महाराज जयपुर के राजकुमार के शिक्षक बन कर जयपुर में नियुक्त हुए। कुछ समय

---

१. वही पृ० ३०८६.

पश्चात् वहां से अलग होकर उपदेशक रूप में देश के विभिन्न भागों की यात्रा आरम्भ की। भ्रमण में जो कटु अनुभव संसार का हुआ, उसने इन्हें आजीवन नौकरी या परवशता से दूर रखा। सन् १९११ में इलाहाबाद में स्थायी रूप से शास्त्री जी रहने लगे। इस समय इनकी जीविका का साधन एकमात्र स्वतंत्र लेखन रहा। सन् १९१३ से इन्होंने **शारदा** पत्रिका का प्रकाशन १९१५ ई० तक किया। यह पत्रिका बहु प्रशंसित हुई। समाज, शिक्षा आदि हिन्दी पत्रों का भी सम्पादन किया।

चन्द्रशेखर शास्त्री संस्कृत के प्रकाण्ड होते हुए भी परम्परा वादी थे। वे बड़े उदारचेता, स्वस्थ चिन्तक तेजस्वी और प्रगतिशील विचारक थे। स्वाभिमान उनका प्राण था और इसकी रक्षा उन्होंने अन्तिम समय तक की। अन्याय और असत्य से वे कदापि समझौता नहीं कर सके। इसके कारण उन्हें अधिक हानि उठानी पड़ी। शास्त्री जी ने जीवन के आरम्भ में ही निर्धनता का व्रत लिया था, और वे अन्त तक बड़े गौरव के साथ उसका निर्वाह करते रहे। उनकी एक छोटी सी पुस्तक **दरिद्रकथा** से उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति का संकेत मिलता है। जीवन के अन्तिम समय में इन्होंने उसका स्पर्श करना छोड़ दिया। बालगंगाधर शास्त्री, विधुशेखर भट्टाचार्य आदि संस्कृतज्ञों के ये प्रिय शिष्य थे। शास्त्री जी नि:शुल्क शिक्षा के समर्थक थे। इन्होंने शिक्षा से कभी एक कौड़ी नहीं लिया। शास्त्री जी शिवोपाशक और परम धार्मिक थे। उनका व्यक्तित्व विशाल था। वे संस्कृत भाषा के प्रचारारार्थ सतत प्रयत्न शील रहे। उनकी संस्कृत की समस्त रचनायें **शारदा** में प्रकाशित हुई हैं।

मथुरानाथ शास्त्री

भट्ट मथुरानाथ शास्त्री का जन्म जयपुर में हुआ था। इनके पिता द्वारकानाथ शर्मा प्रकाण्ड पण्डित थे। शास्त्री जी अनेक परीक्षाओं को उत्तीर्ण करने के पश्चात् सर्वप्रथम महाराजा विद्यालय में हिन्दी-संस्कृत में प्रधानाध्यापक का पद ग्रहण किया।

महामहोपाध्याय गिरिधरशर्मा के सम्पादकत्व में भट्ट जी **संस्कृतरत्नाकर** के सहसम्पादक रहे। सन् १९५० से इनके सम्पादकत्व में **भारती** पत्रिका का प्रकाशन अनेक वर्षों तक होता रहा।

भट्ट जी की अनेक रचनायें **संस्कृतरत्नाकर** और **भारती** में प्रकाशित हुई हैं। अनेक ग्रन्थों की प्रामाणिक टीकाओं में रसगंगाधर और कादम्बरी अधिक प्रसिद्ध हैं। सुरभारती महत्त्वम्, गोविन्दवैभवम्, भारतवैभवम्, निबन्ध-

विधा, गाथारत्नसमुच्चय, जयपुरवैभवम् आदि उच्चकोटि के काव्य-ग्रन्थ हैं। **जयपुरवैभवम्** एक महाकाव्य है। शास्त्री जी ने हिन्दी के अनेक छन्दों को को संस्कृत छन्दों में अपनाया। दोहा, सोरठा, चौपाई छन्दों में आपकी सरस रचनाएँ अधिक प्रभावशाली हैं।

नारायण शास्त्री खिस्ते

नारायण शास्त्री का जन्म काशी में हुआ था। इनके पिता का नाम भैरवपन्त था तथा महामहोपाध्याय श्रीगंगाधर शास्त्री गुरु थे। संस्कृत विश्वविद्यालय में अनेक वर्षों तक आपने कार्य किया। इन्होंने सन् १९२० से लिखना प्रारम्भ किया। इनका पहला खण्ड काव्य **दक्षाध्वरध्वंशः** है। यह वीर रस प्रधान उत्तम रचना है।

खिस्ते के ग्रन्थों में **विद्वच्चरित् पंचकम्** चम्पू काव्य है। **दरिद्राणां हृदयं** और **दिव्यदृष्टिः** उपन्यास ग्रन्थों का इन्होंने प्रणयन किया। सन् १९४४ में **अमरभारती** पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया। इसमें खिस्ते की नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा का परिचय मिलता है। अनेक ग्रन्थों के सम्पादन से इन्हें विशेष ख्याति मिली।[1] वे स्वभाव से बड़े सरल तथा उदारचेता और भारतीय संस्कृति के संरक्षक थे।

क्षितीशचन्द्र चट्टोपाध्याय (१८९६-१९६१ ई०)

क्षितीशचन्द्र चट्टोपाध्याय का जन्म कलकत्ता में हुआ था। आरम्भिक शिक्षा के पश्चात् इन्होंने १९१७ ई० में कलकत्ता विश्वविद्यालय से एम० ए० उत्तीर्ण किया। कुछ पश्चात् इसी विश्वविद्यालय से डी० लिट्० उपाधि से सम्मानित हुए। चट्टोपाध्याय जी कुछ समय के लिए आशुतोष विद्यालय में प्राध्यापक रहे। अन्तिम समय तक कलकत्ता विश्वविद्यालय में अध्यापन का कार्य करते रहे। इन्होंने भाषा विज्ञान का विशेष अध्ययन किया था।

क्षितीशचन्द्र ने अनेक पत्र-पत्रिकाओं को प्रकाशित किया, जिनमें **मंजूषा** को श्रेष्ठ स्थान प्राप्त है। मंजूषा में अधिकांश निबन्ध इनके ही प्रकाशित होते थे। इनकी व्याकरण शास्त्र की अगाध ज्ञानगरिमा **मंजूषा** में प्रकट हुई। अनेक पुस्तकों का प्रकाशन और संशोधन इन्होंने किया। क्षितीशचन्द्र ने लगातार सोलह वर्ष तक **मंजूषा** का सम्पादन-कार्य कुशलता के साथ किया। इनका जीवन वृत्तान्त **मंजूषा** के अन्तिम अंक में प्रकाशित हुआ है। तदनुसार

---

१. अर्वाचीन संस्कृत साहित्य, पृ० ४२९

'Dr. Chatterji's single-handed effort to revive the glory that was Sanskrit through the Manjusha is bound to inspire admiration in every one. It is one of his greatest achievements. It has recently been described by Professor Louis Renou as a precious periodical. Dr. Chatterji's articles in the Manjusha show not only his wonderful command of the Sanskrit language, but also his intimate knowledge of the different branches of Sanskrit literature. His innumerable grammatical and philological discussions published in the Manjusha deserve special mention.[1]

क्षितीशचन्द्र की शैली व्यंग्यप्रधान और सरल है। उनकी नम्रता तथा व्यक्तित्व का परिचय **मंजूषा** ही है। अनेक पत्र-पत्रिकाओं में उनके धैर्य और वैदुष्य की प्रशंसा मिलती है—

'बहवः खल्विदानीं पण्डिताः कार्यरता अप्यहंकारभयंकरमकरग्रस्ताः, पूर्णविज्ञानशून्याश्च। सुदुर्लभ एव पुनः श्रीक्षितीशचन्द्रशास्त्रिसदृशः प्रखरपाण्डित्यसमुल्लसितः गर्वाग्रहनिग्रही विद्वद्वरेण्यः। न तावन्मंजूषायामेकमप्यक्षरमेतन्महाभागस्य गर्वविषपरिस्फुरद् दृश्यते।

मंजूषा पत्रिकायाः सम्पादकमहाभागाः नैकशास्त्रपारंगताः गद्यरचनासु सिद्धहस्ततया प्रथितयशसः। प्रायः संस्कृतपत्रिकासम्पादकेषु अनधिगतस्थानमाङ्गलभाषाप्रभुत्वं प्रकृतसम्पादकेषु कनके मणिरिव पुष्यति प्रकाशविशेषं येन पाश्चात्यविद्याभिनिविष्टचेतसामपि संस्कृतानुरागोत्पादनकर्मणि प्रभावमाविष्कुर्युः। इतरसंस्कृतपत्रिकासु अनुपलभ्यमानः कोऽपि पद्धतिविशेषोऽपि समेधयत्येतत् पत्रिकासुषमाम्। तदेवं गुणविशिष्टा अमौल्यलेखरत्नमञ्जूषायमाणा यथार्थनाम्नी मंजूषा विपुलार्थकामैः व्युत्पन्नैः विद्वद्भिश्च अवश्यं संग्रह्या।[2]

उल्लिखित कतिपय सम्पादकों के व्यक्तित्व से यह सहज ही निष्कर्ष निकलता है कि संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादक उदारचेता और संघर्षपरायण मनीषी थे। कतिपय पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादक अवश्य सम्पादन कला से अनभिज्ञ होने के कारण उनमें अनेक त्रुटियाँ मिलती हैं, जिनमें वर्ष, मास, दिनाङ्क, अङ्क, पृष्ठ, स्थान आदि का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है। विषयगत तारतम्य भी समुचित नहीं मिलता। कौन सा निबन्ध, कौन सी कहानी कहाँ प्रकाशित करनी है—इस कला से सर्वथा अपरिचित होने के कारण

---

१. मंजूषा, क्षितीशचन्द्र स्मरणांक, पृ० १२-१३

२. शारदा (पूना) ३.८

अनावश्यक प्रकाशन भी ऐसे सम्पादकों के कारण हुआ है, जो अल्पायु या अल्प प्रत्यत्न से कीर्ति-कौमुदी को शीघ्र हस्तगत करना चाहते थे। ऐसी पत्र-पत्रिकायें खद्योत की तरह अपना प्रकाश दिखाकर गहन अन्धकार में विलीन हो गयीं और उनकी आशा-लता धरा में लुण्ठित हो गयी।

उन्नीसवीं शती के श्रेष्ठ सम्पादकों में हृषीकेश भट्टाचार्य, सत्यव्रत सामश्रमी, अप्पाशास्त्री आदि थे, जिनका त्याग, आदर्श तथा भावना अनुकरणीय है। इस शती के अन्य सम्पादकों में श्रीनिवासशास्त्री, पुन्नशेरि नीलकण्ठ शर्मा, आर० कृष्णमाचार्य और पी० वी० अनन्ताचार्य प्रमुख हैं। **श्रीनिवास शास्त्री** (सन् १८५०-१९०१) परमधार्मिक और वैष्णव थे। इनका **ब्रह्मविद्या** में अधिकांश साहित्य प्रकाशित हुआ है। जिनमें स्तोत्र साहित्य तथा शतक, अष्टक प्रधान हैं। **शूरमयूरम्** और **सौम्यसोमम्** प्रसिद्ध नाटक हैं। सोलह वर्षों तक श्रीनिवास शास्त्री ने ब्रह्मविद्या का योग्यता से सम्पादन किया।

पुन्नशेरि नीलकण्ठ शर्मा (सन् १८५९-१९३५) केरल राज्य के प्रतिष्ठित विद्वान् थे। पण्डितराज आदि उपाधियों के विभूषित शर्मा जी बहुत सरल और मधुरभाषी थे। शर्मा जी ने संस्कृत प्रचार और प्रसार का अप्रतिम माध्यम पत्र-पत्रिकाओं को अपनाया। अतः आपके सम्पादकत्व में **विज्ञान-चिन्तामणि** और **साहित्यरत्नावली** का प्रकाशन हुआ। पट्टाम्बि संस्कृत-विद्यालय के संस्थापक भी शर्मा जी थे। नीलकण्ठ ने संस्कृत के अभ्युत्थान के लिये यावज्जीवन प्रयत्न किया। व्यंग्यात्मक निवन्धों के लेखक तथा अनेक शतकों के प्रणेता नीलकण्ठ थे। **पट्टाभिषेकप्रबन्ध** और **आर्याशतक** नीलकण्ठ की प्रसिद्ध रचनायें हैं।

सहृदया पत्रिका आलोचनात्मक दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ पत्रिका थी। इसमें नवीन अनुसन्धानों के आधार पर अनेक कवियों की कृतियों का सम्यक् निरूपण मिलता है। **आर० कृष्णमाचार्य** (१८६९-१९२४ ई०) का **सुशीला** भारतीय नारी का चित्रण करने वाला सरस गद्यकाव्य है। **मेघसन्देशविमर्शः** अनुसन्धान प्रधान समीक्षा है तथा **वासन्तिकस्वप्नः** और **यथाभिमतम्** शेक्सपियर के नाटकों का अनुवाद है। **आर० वी० कृष्णमाचार्य** (१७८४-१९४४ ई०) श्रेष्ठ समीक्षक और सम्पादन कला तथा अनेक शास्त्र निष्णात मनीषी थे। अनेक ग्रंथों में **रघुवंशविमर्शः** प्रधान हैं। **अनन्ताचार्य** (१८७४-१९४२) श्रीरामानुज सम्प्रदाय के प्रकाण्ड पण्डित और महान् दार्शनिक तथा धर्म प्रचारक सन्त थे। कांचीवरस्थ प्रतिवाद भयंकर मठ के अधिपति थे। **मंजुभाषिणी** पत्रिका

का अनेक वर्षों तक सुचारु से सम्पादन किया। संसारचरितम् और **वाल्मीकिभावप्रदीप** श्रेष्ठ रचनायें हैं।

वीसवीं शती के महनीय उल्लेखार्ह सम्पादकों में **भवानीप्रसादशर्मा** (सूक्तिसुधा) **कालीप्रसाद** (संस्कृतं) **केदारनाथ शर्मा सारस्वत** (सुप्रभातम्) **ताताचार्य** (उद्यानपत्रिका) **लक्ष्मणशास्त्री** (ब्राह्मणमहासम्मेलनम्) **नित्यानन्द शास्त्री** (श्रीः) **कालीपदतर्काचार्य** (संस्कृतपद्यवाणी), **गलगली रामाचार्य** (मधुरवाणी, वैजयन्ती), **वलदेवप्रसाद मिश्र** (ज्योतिष्मती), **पी० सुब्रह्मण्य शास्त्री** (शंकरगुरुकुलम्), **रामबालकशास्त्री** (संस्कृतसन्देशः तथा गाण्डीवम्), **एस्० नीलकण्ठ** (श्रीचित्रा), **रुद्रदेव त्रिपाठी** (मालवमयूरः), **रामस्वरूपशास्त्री** (बालसंस्कृतम्), **पी० वी० अण्णङ्गराचार्य** (वैदिकमनोहरा) **श्रीधरभास्कर वर्णेकर** (भवितव्यम्) **डा० वे० राघवन्** (प्रतिभा), **प्रो० रामजी उपाध्याय** (सागरिका), **दिवाकरदत्त शर्मा** (दिव्यज्योतिः), **वसन्त अनन्त गाडगिल** (शारदा) आदि बीसवीं शती के श्रेष्ठ और सफल सम्पादक हैं। व्यक्तिगत व्यय से प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादकों की भारती के प्रति सेवा प्रशंसनीय है।

विभिन्ना विषयों में निवन्ध, कवित आदि की रचना कर संस्कृत भाषा को समृद्ध बनाने में सभी सम्पादकों ने अकथनीय परिश्रम किया है। उनमें आत्मवल का आधिक्य और प्रतिभा का सन्निवेश मिलता है। वे अपने पथ से कभी विचलित नहीं हुए। सुरभारती की सेवा ही सम्पादकों के जीवन का चरम लक्ष्य रहा है।

उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी में प्रकाशित होने वाली पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन का प्रमुख कारण सम्पादकों का व्यक्तित्व ही है। लेखक, द्रव्य, प्रोत्साहन आदि के अभाव का अनुभव करने पर भी लगभग तीन सौ पत्र-पत्रिकायें प्रकाशित हुई हैं। सरकार की सहायता भी पर्याप्त नहीं मिलती है। धनाभाव के कारण मुद्रण की सुलभता भी नहीं है। ग्राहकों की कमी रहने पर भी जिस अदम्य उत्साह से सम्पादकों ने हानि और अपमान आदि सहन कर पत्र-पत्रिकाओं को प्रकाशित किया, वह नितान्त प्रशंसनीय है।

पत्र अथवा पत्रिका के प्रकाशन के पूर्व सम्पादकों को कई प्रकार के प्रश्नों का उत्तर देना पड़ता है। मित्रगोष्ठी, दिव्यज्योति, भारतवाणी आदि पत्रिकाओं के सम्पादकों ने प्रकाशन के प्रथम अंक में इसका पर्याप्त निदर्शन किया है। **मित्रगोष्ठी** पत्रिका के सम्पादक रामावतार शर्मा और विधुशेखर भट्टाचार्य ने उन समस्त प्रश्न-पुंजों का उत्तर अप्रतिम नम्रता से दिया।[1]

१. मित्रगोष्ठी १.१

के विशाल व्यक्तित्व के सामने अनेक कठिनाइयाँ होने पर भी वे उनसे विचलित नहीं हुए है। संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन से तनिक भी स्वार्थ न होने पर भी सतत गीर्वाणवाणी का सेवा करने की निष्काम-कर्म सम्पादकों की सिद्ध ने किया है।

संस्कृत पत्रकारिता सदा सम्पादकों के साहस और उत्साह पर अवलम्बित रही है। लेखन, संयोजन, सम्पादन, संशोधन, वितरण आदि कार्य सम्पादकों ने किया है और कर रहे हैं क्योंकि उनके पास धन के अभाव के कारण सम्पादकीय कार्यालय का अभाव रहता है, अतः स्वयं सर्वकर्ता की तरह सम्पादकों का क्षेत्र है। इसलिये **सर्वे भवन्तु सुखिनः** का स्वर सम्पादकीय पृष्ठ में मिलता है। वह सुरभारती की सेवा करने में अघाता नहीं है। वे आत्मवल का सम्वल ले सतत कार्य करते रहते हैं।

इस प्रकार सम्पादकों के व्यक्तित्व का इतिहास अपने आप में मनोरंजक और ज्ञानवर्धक होने पर भी सीमित क्षेत्र में चर्चित हुआ है। परन्तु उनका जीवन ज्ञानमय, तपोमय और क्रियानिष्ठ है। प्रायः प्रत्येक सम्पादक पत्र-पत्रिका के प्रकाशन के लिये वचन-वद्ध सा प्रतीत होता है। भले ही समय पर पत्र-पत्रिका का प्रकाशन न हो सके, परन्तु वह उसके प्रकाशन पर्यन्त सुख की निद्रा नहीं सोता है। ये कर्मठ मनीषी हैं। **यः क्रियावान् सः पण्डितः** का सच्चा आदर्श इनमें मिलता है। **सागरिका** के सम्पादक **प्रो० रामजी उपाध्याय** क्रियावान् विद्वान् हैं। उनके जीवन का चरम लक्ष्य गीर्वाणवाणी की सतत सेवा करते हुए, सुदामा का आदर्श सामने रखकर कर्म करते हुए मोक्ष प्राप्त करना है। भारतीय संस्कृति के उन्नायक और पोषक उपाध्याय जी हैं। ऐसे ही कर्मठ विद्वानों के सतत प्रयत्न से गीर्वाणवाणी अपनी लुप्त प्रतिष्ठा प्राप्त करने में समर्थ हो सकती है।

संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादकों के समक्ष आज भी अनेक कठिनाइयाँ, संस्कृत बोल-चाल की भाषा एवं संस्कृतज्ञों का इस ओर ध्यान न देने के कारण हैं। वाचकाभाव या ग्राहकाभाव का यही कारण हैं। **दामोदर शास्त्री** के अनुसार 'मैं ही सम्पादक हूँ, मैं ही ग्राहक हूँ, मैं ही मुद्रक हूँ और मैं ही पाठक हूँ' वस्तुस्थिति के समीप है। यह स्थिति तभी आमूल परिवर्तित होगी जब प्रत्येक संस्कृतज्ञ, भले अल्पमात्रा में हैं, अपना ध्यान देकर इनके अभ्युत्थान में सहायक होगा।

---

१. विद्यार्थी ६.३

अष्टम अध्याय

क्रमिक विकास और महत्त्व

सन् १८६६ से संस्कृत में पत्र-पत्रिकाओं के विकास का इतिहास भारत में अंग्रेजी राज्य की स्थापना के अनन्तर प्रारम्भ होता है। देश में योरपीय शिक्षा का प्रचार, मुद्रण-यन्त्रों के आविष्कार तथा अर्वाचीन गद्य के विकास के साथ-साथ पाश्चात्य प्रगति-क्रम से परिचित कुछ विद्वानों का ध्यान पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन की ओर आकृष्ट हुआ था। संस्कृत का पहला पत्र **काशीविद्यासुधानिधि** है। यह पत्र सन् १८६६ में वाराणसी से प्रकाशित किया गया था। सन् १८६६ से लेकर आज तक संस्कृत पत्रिका-साहित्य क्रमश: अभ्युदय शील रहा है। आरम्भिक अवस्था होने पर भी उन्नीसवीं शती में प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं का स्तर कुछ बातों में बीसवीं शती में अद्यावधि प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं की अपेक्षा अधिक समुन्नत था।

संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं के क्रमिक इतिहास में **काशीविद्यासुधानिधि** संस्कृत पत्र के पूर्व हिन्दी, उर्दु, बंगला, मराठी आदि अन्य भारतीय भाषाओं में अनेक पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन आरम्भ हो चुका था। यद्यपि इस पत्र का कोई विशेष योग दान संस्कृत पत्रकारिता में नहीं है तथापि अनेक संस्कृत पत्र-पत्रिकायें इस पत्र का अनुसरण करती हुई आगे प्रकाशित हुई।

सन् १८७१ में **विद्योदय** पत्र के प्रकाशन से संस्कृत पत्रकारिता की दिशा में प्रगति हुई और इसने तत्कालीन संस्कृतज्ञों की आवश्यकताओं की पर्याप्त पूर्ति की थी। वास्तव में संस्कृत गद्य की नूतन और मौलिक प्रणाली का प्रादुर्भाव **विद्योदय** पत्र से ही होता है। यद्यपि इसके सम्पादक हृषीकेश भट्टाचार्य पर अंग्रेजी, बंगला आदि भाषाओं का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है परन्तु सबके सम्मिश्रण से उन्होंने संस्कृत गद्य की जिस शैली को अपनाया, वह नितान्त नूतन और हृदयग्रही थी। आधुनिक संस्कृत गद्य का विकास और परिष्कार उनकी ही लेखनी से आरम्भ होता है। इस पत्र की भाषा सरल, व्यंग्य गर्भित और परिमार्जित थी। **विद्योदय** के प्रकाशन से व्यंग्यात्मक एवं चुभते निबन्धों का उदय हुआ और एक नवीन विधा प्रारम्भ हुई।

इसके पश्चात् कई पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ, किन्तु धनाभाव

के कारण वे अधिक समय तक प्रकाशित न हो सकीं। **विद्यार्थी, आर्षविद्यासुधानिधि, ब्रह्मविद्या** और **श्रुतप्रकाशिका** आदि सन् १८८७ के पूर्व की पत्र-पत्रिकायें हैं। सन् १८८८ में **विज्ञानचिन्तामणिः** पत्र का प्रकाशन आरम्भ हुआ। यह समाचार प्रधान पत्र उच्चकोटि के पत्रों में प्रथम है। इसकी प्रमुख विशेषता भाषा की सरलता और सुगमता है। संस्कृत को जन-जन में मुखरित करने के लिए इस पत्र के सम्पादक **नीलकण्ठ पुन्नश्शेरि** सतत प्रयत्नशील रहे हैं। १८९९ में **उषा** वेद, वेदांग विषय प्रधान पत्रिका प्रकाशित हुई। इसमें प्रकाशित निवन्धों में प्रौढता और विषय की परिपक्वता मिलती है। **सत्यव्रत सामश्रमी** ने इसके पूर्व **प्रत्नकम्रनन्दिनी** पत्रिका प्रकाशित की थी। दोनों पत्र-पत्रिकाओं ने संस्कृत पत्रकारिता के विकास में यथेष्ट सहयोग दिया, साथ ही इनसे ऐसी अनेक नूतन उद्भावनायें सामने आईं, जिनसे प्रायः संस्कृतज्ञ अपरिचित था। वैदिक वाङ्मय के सम्बन्ध में गवेषणापूर्ण सामग्री **उषा** पत्रिका में मिलती है। इस पत्रिका से ही गवेषणात्मक निवन्धों के लिखने की परम्परा का विशेष विकास हुआ।

सन् १८९३ में संस्कृत पत्रकारिता ने अभिनव सम्पन्नता प्राप्त की। उसे **अप्पाशास्त्री** का अकथनीय परिमार्जन प्राप्त हुआ। **संस्कृतचन्द्रिका** की अधिकाधिक उन्नति होने का प्रधान कारण उनका महान् त्याग था। उनके निधन के पूर्व ही यह पत्रिका धनाभाव और राजनैतिक कारणों से प्रकाशन से विरत हो गयी थी। संस्कृत पत्रकारिता के क्षेत्र में **श्रीमानप्पा शास्त्री** का प्रवेश सचमुच एक युगान्तर और क्रान्तिकारी घटना है। उन्होने अपने वैदुष्य और सम्पादन से अनेक संस्कृतेतर सम्पादकों को भी पर्याप्त प्रभावित किया था। उन्होंने संस्कृत पत्रकारिता को सुदृढ़ आधार अथवा मेरुदण्ड प्रदान किया। उनके कर्मठ कार्य-कौशल ने संस्कृत पत्रकारिता के स्तर को उत्तरोत्तर अग्रगामी बनाया। अतः पत्रकारिता का स्तर, सम्पादकीय कौशल एवं उत्तरदायित्व और विषयादि का संचयन तथा सम्पादन एवं संयोजन बहुत ही नैपुण्य और सूझ बूझ के साथ किया। यावज्जीवन उनकी यह श्रम-साधना सतत चलती रही। उनकी सम्पादन कला से अनेक सम्पादक प्रभावित हुए तथा उनकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की। **अप्पाशास्त्री** जैसा सम्पादन कर्म में परम चतुर और वैदुष्य से भरपूर अन्य सम्पादक नहीं हुये। **संस्कृतचन्द्रिका** और **सूनृतवादिनी** उनकी विमल कीर्ति-पताकायें थीं। सम्पादन सम्पादक की बहुविध प्रतिभा पर आधारित रहता है। **अप्पाशास्त्री** में कारयित्री और भावयित्री दोनों प्रतिभायें मिलती हैं।

उषा के पश्चात् सन् १८९३ में कलकत्ता से जयचन्द्र सिद्धान्तभूषण ने **संस्कृतचन्द्रिका** का प्रकाशन आरम्भ किया। सिद्धान्त भूषण ने एक नूतन प्रणाली अपनायी। अब तक प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं में **विद्योदय** और **संस्कृतचन्द्रिका** का नाम अविस्मरणीय है। इन दोनों पत्रों की भाषा सभी पत्र-पत्रिकाओं का अपेक्षा अधिक परिष्कृत और परिमार्जित थी। इनमें देश के सभी विशिष्ट विद्वानों की रचनाये प्रकाशित होता थीं। इनमें विभिन्न विषयों पर लेख प्रकाशित किए जाते थे। इनका महत्त्व सामयिक साहित्य के प्रकाशन की दृष्टि से भी है।

संस्कृतचन्द्रिका आरम्भ से ही विविध विषयों की पत्रिका बनकर प्रकाशित गयी और प्रकाशित होने के पश्चात् ही संस्कृत जगत् में इसने अद्वितीय कार्य प्रारम्भ किया। **अप्पाशास्त्री** के संचालन में पत्रिका की प्रगति उल्लेखनीय है इसमें निष्पक्ष विचारों और आलोचनाओं का प्रकाशन हुआ है। सरस और सरल भाषा के माध्यम से जो कुछ उपादेय कहा जा था, इसमें कहा गया है। इसमें विद्या थी परन्तु उसका प्रदर्शन तनिक भी नही था। सम्पादक का कठिन परिश्रम था परन्तु उपालम्भ न था। पूर्ण संघटन था लेकिन विज्ञापन रहित। **श्रीमानप्पा** के सम्पादक होने पर इसके द्वारा समाज की बहुमुखी अनेक लेखकों की आकांक्षाओं की पूर्ति हुई। उन्होंनें संस्कृत में लिखने की अनेक लेखकों को प्रेरणा दी। कुछ संस्कृत के महान् लेखक इसकी उत्कृष्टता देखकर अपने आप इसकी ओर आकृष्ट हुए।

अप्पाशास्त्री उच्चकोटि के साहित्यकार थे। नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा का परिचय उनकी कृतियों में मिलता है। **संस्कृतचन्द्रिका** में समकालीन संस्कृत के मूर्धन्य विद्वानों और साहित्यकारों ने पत्र-पत्रिकाओं के विकास में पर्याप्त सहयोग दिया। इसमें असाधारण और महत्त्वपूर्ण समाचारों का प्रकाशन भी होता था। इसके अतिरिक्त साहित्य, हास्य, व्यंग्य, ज्ञान-विज्ञान, समालोचना, पत्र आदि विविध विषयों पर गम्भीर और ज्ञानवर्धक सामग्री प्रकाशित होती थी।

संस्कृतचन्द्रिका के अनन्तर **सहृदया** (१८९५ ई०) का नाम विशेष उल्लेखनीय है। समालोचना में यह सर्वश्रेष्ठ पत्रिका थी। पाश्चात्य शैली में सर्वप्रथम संस्कृत ग्रन्थों की आलोचना पत्रिका में निरन्तर प्रकाशित हुई। समकालीन साहित्य के प्रकाशन में यह अद्वितीय पत्रिका थी। इसके सम्पादकद्वय कृष्णमाचारी प्रत्युत्पन्न मनीषी थे। इसमें सरस कविता तथा सुन्दर गद्य-लेख रहते थे।

उन्नीसवीं के शती के अन्तिम समय में **मंजुभाषिणी** (१९०० ई०) पत्रिका का प्रकाशन हुआ। यह पत्रिका अपनी लोक-प्रियता के कारण निरन्तर प्रगति करती रही। इसके कारण यह पत्रिका मासिक से पाक्षिक और कुछ ही दिनों में साप्ताहिक पत्रिका हो गई थी। इसका महत्त्व समाचारों के प्रकाशन की दृष्टि से अधिक रहा है। इसमें साहित्यिक निबन्धों के अतिरिक्त विज्ञान, यात्रा आदि विषयों पर लेख प्रकाशित हुए हैं।

इस समय की अन्य पत्र-पत्रिकायें **काव्यकादम्बिनी**, **संस्कृतपत्रिका**, **साहित्यरत्नावली**, **विद्वत्कला** और **समस्यापूर्तिः** प्रधान हैं। **काव्यकादम्बिनी**, **विद्वत्कला** और **समस्यापूर्तिः** पत्र-पत्रिकाओं से नवीन लेखकों को विशेष प्रोत्साहन मिला। इनमें केवल समस्यापूरक श्लोकों का ही प्रकाशन हुआ है। इससे नये-नये कवि सामने आये और रचना में प्रवृत्त हुए। **संस्कृतचन्द्रिका** और **साहित्यरत्नावली** साहित्यिक पत्रिकायें थीं। इनमें विषय की विविधता, परिपक्वता और नवचेतना मिलती है।

उन्नीसवीं शती की संस्कृत पत्रकारिता का अधिकांश भाग कष्ट, साधना एवं त्याग से आगे बढ़ा है। संस्कृत पत्रकारिता ने तप और त्याग तथा संघर्ष की कथा अपने में समाहित किया है। संस्कृत की रक्षा और उसकी वृद्धि करने में जीवन का उत्सर्ग कर देने वालों ने ही इस पथ का निर्माण किया है। इस समय की **विद्योदय**, **संस्कृतचन्द्रिका**, **उषा**, **सहृदया** और **मंजुभाषिणी** प्रधान पत्रिकायें थीं। इनमें भावनाओं का एकनिष्ठ प्रवाह मिलता है। साहित्यिक अभिवृद्धि के अतिरिक्त राजनैतिक चेतना का उत्थान और प्रकाशन पत्र-पत्रिकाओं में हुआ है। इनकी सबसे बड़ी विशेषता उनके सम्पादकीय लेख होते थे, जो ओज, विनय, प्रबुद्ध और सरस भाषा में उस समय अतुलनीय थे। कविहृदय-जनित रसार्द्रता का परिचय पत्र-पत्रिकाओं के निवेदनों में मिलता है। इस समय की पत्र-पत्रिकाओं में विभिन्न अंगों की वृद्धि, विषय-विविधता, नवीन लेखकों की दृष्टि तथा सृष्टि मिलती है।

बीसवीं शती के प्रथम दशक में अनेक पत्र-पत्रिकायें प्रकाशित हुईं, जिनमें **सूनृतवादिनी** साप्ताहिक पत्रिका तथा मासिक **मित्रगोष्ठी** प्रधान हैं। **सूनृतवादिनी** समाचार प्रधान राजनैतिक पत्रिका थी। इनमें तत्कालीन राजनैतिक समस्याओं पर व्यंगात्मक निबन्धों का प्रकाशन हुआ, जिसके फलस्वरूप पत्रिका का प्रकाशन शीघ्र ही रोक दिया गया। **मित्रगोष्ठी** में साहित्यिक, सामाजिक, ऐतिहासिक और वैज्ञानिक लेख प्रकाशित होते थे। ये दोनों पत्रिकायें तत्कालीन परिस्थितियों में पत्रकार-कला का सुन्दर आदर्श उपस्थित करने में

समर्थ हुईं। दोनों पत्रिकाओं के सम्पादक उस काल के सर्वोत्तम विद्वान् थे।

बीसवीं शती का आरम्भ जागरण का युग था। इस समय सभी प्रकार की राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक और साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन आरम्भ हुआ। इन पत्र-पत्रिकाओं ने संस्कृत गद्य-पद्य के अर्वाचीन विकास में पर्याप्त योग दिया। इस समय अनेक पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन तथा योग्य सम्पादकों एवं लेखकों के सहयोग से पत्रकारिता और पत्रकार-कला की पर्याप्त प्रगति हुई।

महामहोपाध्याय गंगाधर शास्त्री के संरक्षण में उनके शिष्य भवानी दत्त शर्मा द्वारा प्रकाशित **सूक्तिसुधा** मासिक पत्रिका में समस्या पूर्तियाँ, दार्शनिक-लेख, कवितायें तथा अन्य सामग्री प्रकाशित होती रही है। इसमें महामहोपाध्याय लक्ष्मण शास्त्री और सोमनाथ की कवितायें विशेष सरस थीं।

अखिल भारतीय संस्कृत सम्मेलन जयपुर से **संस्कृतरत्नाकर** नामक पत्र १९०४ ई० में प्रकाशित हुआ। इसमें प्रारम्भ में प्रधानतः मनोरंजक कहानियाँ प्रकाशित हुई हैं। इसका स्थान निरन्तर परिवर्तित होता रहा है। इसमें सरस रचनाओं का प्रकाशन हुआ है। महामहोपाध्याय गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी तथा मथुरानाथ शास्त्री आदि की रचनायें इसमें प्रकाशित हुईं।

भारतधर्म, वैष्णवसन्दर्भ, सद्धर्म, भारतदिवाकर, विद्यारत्नाकर आदि पत्र ग्राहक और धनाभाव के कारण अधिक समय तक न प्रकाशित हो सके। ये सभी पत्र साधारण कोटि के थे।

सन् १९०९ में कलकत्ता से **आर्यप्रभा** पत्रिका प्रकाशित हुई। इसमें भारतीय संस्कृति विषयक उच्चकोटि के निबन्ध प्रकाशित होते थे। तदनन्तर १९१३ ई० में संस्कृत सेवा की भावना से प्रेरित होकर चन्द्रशेखर शास्त्री ने **शारदा** नामक सर्वाङ्ग सुन्दर और हृदयाकर्षक पत्रिका का प्रकाशन किया। इसका सम्पादन बड़ी योग्यता से किया जाता था। शास्त्री जी ने पूर्ण उद्योग के साथ इसका प्रकाशन किया था। इसमें रामावतार शर्मा, विधुशेखर भट्टाचार्य आदि उद्भट विद्वानों की कृतियाँ प्रकाशित हुईं। यह अपने समय की सर्वाधिक श्रेष्ठ और लोकप्रिय पत्रिका थी। यह चित्रमयी पत्रिका थी। अब तक प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं में यह अपने ढंग की एक निराली पत्रिका थी। इसमें प्रायः सभी उपयोगी विषयों पर निबन्ध प्रकाशित किए जाते थे। विषय की गम्भीरता के साथ साथ इसका प्रकाशन, मुद्रण, कागज आदि सभी यथायोग्य थे। ग्राहकों की उपेक्षा और पर्याप्त धन के अभाव में ही यह प्रकाशन से विरत हो गई। सामयिक साहित्य का प्रकाशन इसमें हुआ है।

सन् १९१८-१९ में कलकत्ता से दो पत्र प्रकाशित हुए। **संस्कृतसाहित्य-परिषत्पत्रिका** और **संस्कृतमहामण्डलम्** दोनों में तत्कालीन परिस्थितियों का पर्याप्त प्रभाव परिलक्षित होता है। इनमें स्त्री-शिक्षा, समाज-सुधार संस्कृतभाषा आदि विषयों पर लेख प्रकाशित होते रहे। संस्कृतसाहित्य-परिषत्पत्रिका आज भी प्रकाशित हो रही है। इसके पश्चात् दो साप्ताहिक पत्र प्रकाशित हुए। **संस्कृतं और संस्कृतसाकेत** दोनों गान्धी जी के आन्दोलन को सबल बनाने के लिए प्रकाशित किए गए थे। इस समय पत्र-पत्रिकाओं और व्याख्यानों में कई प्रकार के प्रतिबन्ध थे। सरकार की नीतियों की आलोचना पर रोक थी। ऐसे समय में हास्य और व्यंग्य के सहारे उपर्युक्त विषयों का निरूपण किया जाता था। इनमें विविध विषयों पर लेख निकलते रहे। ये दोनों पत्र मुख्यतः समाचार-प्रधान और धार्मिक रहे हैं।

वाराणसी से सन् १९२३-२४ **सुप्रभातम्** तथा **सूर्योदयः** पत्र प्रकाशित किये गये। **सुप्रभातम्** प्रगतिशील पत्र था और इसे अधिक सम्मान मिला। केदारनाथ शर्मा सारस्वत के सम्पादकत्व में इसमें अनेक गवेषणात्मक निबन्ध प्रकाशित किए गए। अन्नदाचरण तर्कचूणामणि के सम्पादनकाल में सूर्योदय पत्र का अच्छा विकास हुआ और इस समय यह एक श्रेष्ठ पत्र था।

सन् १९२५-२६ में **श्रीमन्महाराजकालेजपत्रिका** (मैसूर), **संस्कृतपद्य-गोष्ठी, उद्यानपत्रिका** और **सहस्रांशु** आदि पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन आरम्भ हुआ। **श्रीमन्महाराजकालेज** पत्रिका में काव्य, नाटक, चम्पू आदि विविध प्रकार के काव्यांगों का प्रकाशन धारावाहिक क्रम से होता रहा है। यह उत्कृष्ट पत्रिका थी। इसमें स्थायी और महनीय साहित्य प्रकाशित मिलता है।

संस्कृतपद्यगोष्ठी कलकत्ता से प्रकाशित की गई थी। इसमें एकमात्र पद्यात्मक प्रबन्धों का प्रकाशन होता था। **उद्यानपत्रिका** का प्रकाशन **सहृदया** के स्थगित होने के पश्चात् हुआ था। **सहस्रांशु** विनोद प्रधान पत्र था। इसमें बालकों के लिए सरल भाषा में सामग्री प्रकाशित होती थी। **सहस्रांशु, बाल-संस्कृतम्** आदि बालोपयोगी पत्र प्रकाशित हुए हैं। जिनका उद्देश्य संस्कृत में सभी विषयों का प्राथमिक ज्ञान कराना था।

संस्कृत में **बालपत्रकारिता** का विशेष विकास आज तक नहीं हुआ, जो अपेक्षित है। अन्य भाषाओं में बालपत्रकारिता दिनोदिन प्रगति कर रही है। सचित्र मनोरंजक सामग्री का प्रकाशन बालपत्रकारिता का चरम लक्ष्य होता है। संस्कृत में प्रकाशित ऐसी कतिपय पत्र-पत्रिकाओं का लक्ष्य संस्कृत का ज्ञान रहा है। **बालपत्रकारिता** का आधार विषयगत सम्पादन या प्रतिपादन न होकर आकर्षक साज-सज्जा और सचित्र प्रस्तुतीकरण होता है। अतः रंगीन,

सुन्दर, वैचित्र्यपूर्ण चित्रों के द्वारा बालकों को ज्ञान सहज ग्राह्य होता है, और वह पत्र-पत्रिका उपादेय हो जाती है। संस्कृत में बालपत्रिका का अधिक विकास नहीं हुआ। **विद्यार्थी** पाक्षिक पत्र से बालपत्रकारिता प्रारम्भ अवश्य हुई, परन्तु जितना विकास अपेक्षित था, नहीं हुआ। बालपत्रकारिता की दृष्टि से **बालसंस्कृतम्** श्रेष्ठतम पत्र है। इसमें सचित्र सुन्दर, सरल और सरस विषयों का सम्पादन हुआ है। इसके सम्पादक वैद्य रामस्वरूप साधुवाद के पात्र हैं।

ब्राह्मणमहासम्मेलन धार्मिक पत्र था। इसमें धर्म के सम्बन्ध में सभी प्रकार की सामग्री मिलती है। **उद्योत**, **भारतसुधा** और **पीयूषपत्रिका** कुछ समय के लिए प्रकाशित हुईं। **पीयूषपत्रिका** दार्शनिक थी।

सन् १९३३-३४ में **श्रीः** और **अमरभारती** (वाराणसी) निबन्ध प्रधान पत्रिकायें प्रकाशित हुईं। इसी समय कलकत्ता से चित्र काव्यों को प्रकाशित करने के लिए **संस्कृतपद्यवाणी** का प्रकाशन आरम्भ हुआ। इसके अवलोकन से प्रतीत होता है कि भारवि, माघ, हर्ष आदि की परम्परा में काव्य-रचना करने वाले कवियों की कमी नहीं थी और न आज है। इस वैचित्र्यमार्ग में आज भी साहित्य का निर्माण हो रहा है।

सन् १९३६ में **ब्रह्मविद्या** और **कालिन्दी** पत्रिकाओं का प्रकाशन आरम्भ हुआ। पहली दर्शन प्रधान पत्रिका थी, तो दूसरी साहित्य-प्रधान पत्रिका थी। सन् १९४० के पूर्व **ज्योतिष्मती**, **श्रीशंकरगुरुकुलम्**, **संस्कृतसंजीवनम्**, **संस्कृत-सन्देश** (वाराणसी) आदि पत्र-पत्रिकायें कुछ समय के लिए प्रकाशित हुईं। श्रीशंकरगुरुकुलम् में ग्रन्थों का प्रकाशन होता था। अन्य पत्र साधारण कोटि के थे। तदनन्तर **उच्छृंखलम्** हास्यरस प्रधान पत्र प्रकाशित हुआ। इसमें हास्य रस सम्पृक्त रचनाओं का प्रकाशन हुआ है।

१९४२ ई० में **सारस्वतीसुषमा** गवेषणात्मक निबन्ध प्रधान उच्चकोटि की पत्रिका का प्रकाशन वाराणसी से आरम्भ हुआ। इसमें वाराणसी के सभी विद्वानों के निबन्ध प्रकाशित होते थे। इसके पश्चात् **श्रीचित्रा**, **अमरभारती**, **कौमुदी**, **सुरभारती**, **मालवमयूर** आदि पत्र-पत्रिकायें प्रकाशित हुईं। इनमें सामयिक साहित्य प्रकाशित हुआ। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व के इन पत्र-पत्रिकाओं में उच्चकोटि की सामग्री प्रकाशित हुई है।

सन् १९४७ के पश्चात् संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं की स्थिति में यद्यपि कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया, तथापि उन पर स्वातन्त्र्य का प्रभाव स्पष्ट रूप से पड़ा है। सन् १९२० के पश्चात् महात्मा गांधी के नेतृत्व में राष्ट्रीय आन्दोलन ने अधिक व्यापक रूप धारण किया, जिसके फलस्वरूप ही **संस्कृतं** और **संस्कृतसाकेत** का प्रकाशन हुआ था। देश की यह चेतना पत्र-पत्रिकाओं के

में अतिरिक्त साहित्य में भी प्रतिबिम्बित हुई। कुछ समय पश्चात् संस्कृत को सम्मान मिला और इसका प्रचार शीघ्रता से पुनः होने लगा। इस प्रकार इस समय राजनैतिक और साहित्यिक दोनों विधाओं में परिवर्तन होना आरम्भ हुआ। राष्ट्रीय आन्दोलन को जिन पत्र-पत्रिकाओं ने अधिक महत्त्व दिया, उनका प्रकाशन अधिक समय तक न हो पाया। इस काल में राष्ट्रीय चेतना और साहित्यिक नवचेतना को मुखरित करती हुई अनेक संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ। उनमें समय पर साहित्यिक लेखों के साथ ही साथ सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक आदि विषयों की चर्चा हुई है।

मनोरमा, भारती, वैदिकमनोहरा, भवितव्यम्, संस्कृतसन्देश (नेपाल) **पण्डितपत्रिका, वैजयन्ती, भाषा** आदि पत्र-पत्रिकाओं में विविध सामग्री मिलती हैं। इसमें **संस्कृतभवितव्यम्** का विशेष महत्त्व है। यह पत्र संस्कृत में नयी विचारधारा को लेकर प्रकाशित हुआ है।

कुछ पत्र-पत्रिकाओं ने प्रधानतया साहित्यिक साधना को ही अपना लक्ष्य बनाया। यद्यपि इस प्रकार की पत्र-पत्रिकाओं में यथासमय अन्य प्रकार की सामग्री भी प्रकाशित मिलती है तथापि नव साहित्य रचना के लक्ष्य को इनमें अधिक महत्त्व दिया गया है। **दिव्यज्योतिः, विद्या, प्रणवपारिजात, भारतवाणी, मधुरवाणी, संस्कृतप्रतिभा, शारदा, जयतुसंस्कृतम्** आदि इसी कोटि की पत्र-पत्रिकायें हैं।

संस्कृत भाषा में साहित्यिक पत्र-पत्रिकायें अधिक प्रकाशित हुईं। संस्कृत-साहित्य की विविध गतिविधियों का पर्याप्त ज्ञान इन्हीं पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से होता है। मासिक पत्र-पत्रिकाओं के अतिरिक्त साप्ताहिक एवं दैनिक पत्रों का प्रकाशन-कार्य भी संस्कृत में हुआ। बीसवीं शती में प्रकाशित सभी साप्ताहिक पत्र प्रायः समाचार प्रधान रहे हैं, साथ ही विभिन्न विषयों पर निबन्ध तथा अन्य साहित्यिक सामग्री प्रकाशित होती है। उच्चकोटि की कहानियाँ, एकांकी नाटक एवं हास्य-व्यंग्य पूर्ण निबन्धों को इन साप्ताहिक पत्रों में विशेष स्थान मिला है। कतिपय साप्ताहिक पत्रों के विशेषांक भी प्रकाशित हुए हैं। इस समय प्रकाशित होने वाले साप्ताहिक पत्रों में **संस्कृतभवितव्यम्** सर्वोपरि है।

संस्कृत पत्रकारिता को तीन युगों में विभाजित किया जा सकता है—

१. उन्नीसवीं शती
२. स्वतन्त्रता के पूर्व
३. स्वतन्त्रता के पश्चात्

उन्नीसवीं शती में प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं के मूल में सम्पादकों का आत्म-बल, उत्साह और त्याग प्रधान था। इस काल में मुख्यतया उच्चकोटि की मासिक पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ। इनसे संस्कृत भाषा के प्रति जन-जागृति का महत्त्वपूर्ण कार्य हुआ। साहित्यिक, सामाजिक, और राजनैतिक आदि क्षेत्रों में इनके द्वारा लेखकों और पाठकों का ध्यान आकृष्ट करने का प्रयास सफलता-पूर्वक सम्पन्न हुआ। अप्पाशास्त्री इस युग के अद्वितीय रत्न थे। यह युग संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं के विकास की दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण रहा है। वास्तव में इसी युग में संस्कृत पत्रकारिता का आरम्भ हुआ और अन्तिम समय में अपनी चरम सीमा तक पहुँच गई। **विद्योदय, उषा, संस्कृतचन्द्रिका, सहृदया** आदि इस युग की सर्वश्रेष्ठ पत्र पत्रिकायें थीं। **संस्कृतचन्द्रिका** में अर्वाचीन संस्कृत साहित्य विशेष संवर्धित हुआ तो **सहृदया** में आलोचना के सम्बन्ध में नये मानदण्ड स्थापित हुए। **विद्योदय** और **उषा** में क्रमशः व्यंगात्मक गद्य का विकास और वैदिक अनुसन्धान हुआ। ये चारों पत्र-पत्रिकायें अपने अपने क्षेत्र में अद्वितीय थीं।

हृषीकेश भट्टाचार्य, सत्यव्रत सामश्रमी, आर० कृष्णमाचारियार और अप्पाशास्त्री कुशल सम्पादक थे। ये विद्वान् अपनी प्रतिभा और सम्पादन कुशलता के कारण पत्र-पत्रिकाओं के स्वरूप, स्तर, सामग्री-संचयन आदि के परिवर्तन एवं परिष्कार करने में सफल हुए।

द्वितीय युग (१९०१-१९४७ ई०) में सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक आन्दोलनों का सूत्रपात हुआ। **सूनृतवादिनी** राजनैतिक तत्त्वों का परिचय कराने में समर्थ सिद्ध हुई। राजनैतिक आन्दोलन धीरे धीरे बढ़ने लगा और कुछ पत्र-पत्रिकायें इस राष्ट्रीय आन्दोलन का अग्रदूत होकर प्रकाशित हुईं। इस प्रकार की पत्र-पत्रिकाओं में **विज्ञानचिन्तामणि, संस्कृतसाकेत, ज्योतिष्मती** आदि का अधिक महत्त्व है। **मंजुभाषिणी, विज्ञानचिन्तामणि** आदि साप्ताहिक पत्र-पत्रिकाओं में राजनैतिक विषयों पर अधिक संख्या में लेख निकले थे।

द्वितीय युग नव जागरण का काल था। यद्यपि इस युग में **विद्योदय, सहृदया, उषा, संस्कृतचन्द्रिका** के समान महनीय पत्र-पत्रिकायें नहीं प्रकाशित हुई हैं तथापि विकास की दृष्टि से यह युग सर्वाधिक सफल रहा है। इस युग में अनेक प्रकार की पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ। **मित्रगोष्ठी, शारदा, सुप्रभातम्, श्रीः, मंजूषा, संस्कृतपद्यवाणी, मधुरवाणी, सारस्वतीसुषमा, कौमुदी** आदि इस युग की प्रधान पत्र-पत्रिकायें हैं। इनमें भी **मित्रगोष्ठी** इस समय की सर्वश्रेष्ठ पत्रिका थी। इसमें साहित्य, इतिहास आदि से सम्बधित गवेषणात्मक, तर्कसंगत और पाण्डित्यपूर्ण लेख प्रकाशित हुए और उसने अतभुद्

उन्नति की तथा इसके द्वारा नये आदर्शों की स्थापना हुई। रामावतार शर्मा इसके युग के नेता थे और इनके नेतृत्त्व में **मित्रगोष्ठी** श्रेष्ठ पत्रिका थी।

इनके अतिरिक्त इस युग में अन्य अनेक पत्र-पत्रिकाओं के द्वारा संस्कृत साहित्य की प्रगति के साथ ही साथ नयी वस्तुये सामने आई। **मंजूषा** व्याकरण प्रधान पत्रिका थी। इसमें नयी उद्भावनायें प्रकट हुई। **मधुरवाणी** श्रेष्ठ साहित्यिक पत्रिका थी।

इस युग में अर्वाचीन संस्कृत ग्रन्थों के प्रकाशनार्थ कई पत्र-पत्रिकायें प्रकाशित हुई। **श्रीशंकरगुरुकुलम्, सूक्तिसुधा, संस्कृतपद्यवाणी, श्रीचित्रा, उद्यान-पत्रिका, संस्कृतभारती, श्रीः, भारतसुधा** आदि प्रधान रूप से उल्लेखनीय हैं। उच्चकोटि के निवन्धों को प्रकाशित करने वाली पत्र-पत्रिकाओं में **संस्कृत-महामण्डलम्, सुप्रभातम्, उद्योत, कालिन्दी, अमरभारती, सारस्वतीसुषमा** आदि का नाम प्रथम आता है। **सागरिका** शोध प्रधान सर्वश्रेष्ठ पत्रिका है।

अत्याधुनिक पत्र-पत्रिकाओं में **शारदा, अमृतलता, संविद्, विश्वसंस्कृतम्, संगमिनी, पाटलश्री, संस्कृतप्रतिभा, मागधम्, विमर्शः** आदि विशेष रूप से उल्लेख-नीय है। इनमें समय समय पर अच्छे निबन्ध और मधुर कवितायें तथा सामयिक समस्याओं पर भी निबन्ध आदि प्रकाशित हो रहे हैं। संस्कृत भाषा के प्रचार और प्रसार की दिशा में इन पत्र-पत्रिकाओं का विशेष महत्त्व है। **मुखर वाणी** के द्वारा संस्कृत के अभ्युत्थान और अधिकार आदि की चर्चा रहती है।

धार्मिक और दार्शनिक पत्र-पत्रिकाओं में **ब्राह्मणमहासम्मेलनम्, पीयूष-पत्रिका, ब्रह्मविद्या,** आदि का स्थान ऊंचा है। हास्य रस प्रधान और बालकों के लिए पत्र-पत्रिकायें इस युग में प्रकाशित हुई। जिनमें **उच्छृंखलम्, संस्कृत-सन्देश** अनेक त्रुटियों के रहने पर भी अच्छे पत्र थे। इस प्रकार इस युग में जहाँ अनेक प्रकार की साहित्यिक प्रगति पत्र-पत्रिकाओं द्वारा हुई, वहीं दूसरी ओर अन्य सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक आदि परिस्थितियों का भी इनसे ज्ञान होता है।

स्वतन्त्रता के पश्चात् यद्यपि अधिकांश संस्कृत की पत्र-पत्रिकाओं में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ, तथापि उनमें स्वतन्त्रता की भावना विशेष रूप से परि-लक्षित हुई। इनमें देश के लिए वलिदान होने वाले वीरपुरुषों की गाथा गाई गयी। राष्ट्र के अभ्युत्थान की कामना और पंचशील तथा राष्ट्रध्वज सम्बन्धी साहित्य का प्रकाशन हुआ।

इस युग में प्रकाशित होने वाली पत्र-पत्रिकाओं में स्फुट गीत अधिक प्रकाशित हुए हैं। गान्धीवाद का स्पष्ट प्रभाव पड़ा और उनके विषय में अनेक कवितायें लिखी गई। **भारतं त्यज** की भावना इस युग में **भारत भा रतम्** में

परिवर्तित हो गई। भारत और भारती तथा देश की विभूतियों का वर्णन प्रारम्भ हुआ। इस युग में पद्य गीत, स्फूर्तिदायक देशभक्तिपूर्ण कवितायें और ओजस्वी वर्णनात्मक कवितायें पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई। विविध विषय सम्बन्धी लेख, कहानियाँ, नाटक और उपन्यास तथा ऐतिहासिक गवेषणा, अनुवाद आदि प्रकार का साहित्य इस युग में विशेष रूप से मिलता है। प्रेमगीत तथा सौन्दर्य-गीत स्वतंत्र रूप से लिखे गये। मुक्तक छन्द अपनाया गया। इस समय बाल साहित्य पर भी अधिक लिखा गया।

इस युग में अनेक दैनिक पत्रों का प्रकाशन हुआ। समाचारों के अभाव की पूर्ति **संस्कृति** और **सुधर्मा** के प्रकाशन से हुई। इस युग में अर्वाचीन साहित्य के प्रकाशन के साथ-साथ गवेषणात्मक पद्धति को विशेष महत्त्व दिया जा रहा है।

संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं का महत्त्व

संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं का विभिन्न दृष्टियों से महत्त्व है। किसी भी भाषा की पत्रकारिता नवीन विचारों के सूत्रपात में पूर्ण सहयोग देती है। इनसे अनेक राष्ट्रीय भावनाओं का विकास होता है।

संस्कृत की साप्ताहिक तथा दैनिक पत्र-पत्रिकाओं में देश और समाज के प्रति सम्मान की भावना मिलती है। उनका जन-जीवन से सम्बन्धित होने के कारण वे नये पथ को प्रदर्शित करने में सफल हुई हैं।

आज का संस्कृत साहित्य विभिन्न दिशाओं में प्रगति की ओर उन्मुख हो रहा है। पत्र-पत्रिकाओं के क्षेत्र में भी आधुनिक संस्कृत साहित्य की पर्याप्त उन्नति हुई है। किसी भाषा की विविध पत्र-पत्रिकायें जन-जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध रखती हैं। वे युग-विशेष को वाणी प्रदान करतीं हैं।

दूसरी ओर पत्र-पत्रिकाओं का महत्त्व स्थायी साहित्य के निर्माण में है। संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं ने अर्वाचीन साहित्य के निर्माण और विकास में पर्याप्त सहयोग दिया है तथा कई प्रकार का नया साहित्य इनके द्वारा सामने आया है। व्यंग्यात्मक गद्य का विकास **विद्योदय** से प्रारम्भ हुआ। नये परिवेश में लघु गीत और लघु कहानियाँ तथा उपन्यास प्रकाशित हुये हैं।

संस्कृत पत्र-पत्रिकायें संस्कृत साहित्य के संवर्धन में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से सहायता प्रदान कर रही है। मासिक पत्र-पत्रिकाओं में वाद-विवाद और साहित्य-समालोचना के लिए नियमित स्तम्भ रहते हैं। इनके प्रकाशन से साहित्य के प्रति उत्साह का जागरण हुआ है।

पत्र-पत्रिकाओं के द्वारा अनेक साहित्यकारों एवं उदीयमान लेखकों को साहित्य-सेवा का प्रोत्साहन मिला है। संस्कृत लेखकों की प्रायः प्राथमिक रचनाओं का प्रकाशन इन पत्र-पत्रिकाओं में हुआ है।

संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं द्वारा साहित्य में नूतन भावों एवं विचारों का प्रसार हुआ है। अर्वाचीन संस्कृत साहित्य में गीत, चलचित्रगीत, समालोचना, प्रेमगीत, स्फुट गीत आदि का विकास पत्र-पत्रिकाओं के द्वारा हुआ।

अनेक पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादक साहित्यकार एवं अनुभवी आलोचक रहे है। वे साहित्य को एक नई दिशा की ओर मोड़ने की क्षमता रखते थे। साहित्य में ऐसे परिवर्तनों तथा सुझावों से एक अच्छा साहित्य सामने आता है। संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादक केवल पत्रकार ही नहीं थे, अपितु साहित्य के विभिन्न अंगों की रचना करने में समर्थ थे। उनकी रचनाओं का प्रकाशन इन पत्र-पत्रिकाओं में हुआ है।

अप्पाशास्त्री के अनुसार पत्र-पत्रिकाओं द्वारा साहित्य का अभ्युदय होता है। यही उनका प्रमुख महत्त्व है। यथा—

'तासां तासां च भाषाणामेकान्तिकाऽभ्युदये विशेपतश्च विलीनप्रायप्रचाराणां पुनः प्रचारोपक्रमे तत्तद्भापामयाणि संवादपत्राणि मासिकपत्रिकाश्च भूयसीं हेतुतामधिगच्छन्तीति'[1]।

संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं के द्वारा भाषा और साहित्य की कितनी ही समस्यायें सुलझाई गयी हैं। संस्कृत मृतभाषा है, इसे सामान्यता प्रत्येक पत्र-पत्रिकाओं में लेखादि से दूर किया गया। दैनिक साहित्य और सामयिक साहित्य की सृष्टि पत्र पत्रिकाओं द्वारा हुई। तात्कालिक प्रभावशाली साहित्य का सर्जन सर्वप्रथम इन्हीं से सम्पन्न हुआ। अमर साहित्य के साथ ही साथ तात्कालिक साहित्य भी पत्र-पत्रिकाओं से पल्लवित हुआ है।

प्रमोदैकनिकेतन

किसी भी भाषा की पत्रकारिता का लक्ष्य विविध सामग्री के द्वारा पाठकों को अधिक से अधिक आनन्द प्रदान करना है। यह आनन्द भौतिक धरातल का न होने के कारण स्वस्थ और अतीन्द्रिय होता है। अतः सोपदेश प्रधान आनन्द ही श्रेयस्कर है। **रामादिवत् वर्तितव्यं न रावणादिवत्** का स्वस्थ एवं ग्राह्य विचार पत्र-पत्रिकाओं के द्वारा सहज ही में सम्पन्न होता है। अतः संस्कृत पत्रकारिता प्रमोदैकनिकेतन अर्थात् आनन्द-गृह है। जिस प्रकार आतप-ताप से संतप्त व्यक्ति स्वगृह प्राप्त कर आनन्द का अनुभव करता है। उसी प्रकार भौतिकता से संत्रस्त व्यक्ति पत्र-पत्रिकाओं को प्राप्त कर उनका सम्यक् अध्ययन कर आत्मतोष प्राप्त करता है।

कालान्तरेऽप्यहीनरस

समाचार पत्रकारिता को छोड़कर साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं का महत्त्व

---

१. मंजूषा १.४ पृ०५३

काल और देश सापेक्ष नहीं होता है। सैकड़ों वर्ष पूर्व प्रकाशित पत्रिका का आज भी अनुसन्धान, स्थायी साहित्य, तत्कालीन प्रवृत्ति की दृष्टि से उसका अक्षुण्ण महत्त्व रहता है। अतः उसका महत्त्व सतत संवर्धित होता रहता है। वह पुराणी युवती है। ऊषा की तरह नित्य नवीन है। जीर्ण-शीर्ण होने पर भी उसका रस-प्रवाह कम नहीं होता है ।

प्रतिपलनव्यतावसापेक्ष

नये नये भावों की अभिव्यक्ति का माध्यम पत्र-पत्रिकायें हैं। प्रत्येक पाठक उनका आद्यन्त अध्ययन रस-मग्न होकर करता है। उनमें प्रतिपल नवीनत्व रहता है। अग्रिम अंक की तृषार्त प्रतीक्षा भी उनके महत्त्व संवर्धन का कार्य करती रहती है।

प्रबन्धरमणीयत्व

साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं में चिरसाहित्य का प्रकाशन सतत होता रहता है। संस्कृत पत्रकारिता साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं से बाहुल्यमयी है। इनमें महाकाव्य, खण्डकाव्य, उपन्यास, कथा, चम्पूकाव्य, एवं नाट्यसाहित्य, लघुगीत लघुकहानियाँ, अनुसन्धान एवं सामान्य निबन्ध, पत्रसाहित्य आदि प्रकाशित होते हैं। इस युग का अधिकांश साहित्य संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं में ही प्रकाशित हुआ है क्योंकि उन उन ग्रन्थों का स्वतन्त्र प्रकाशन नही हुआ है। अतः संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं का प्रबन्ध की दृष्टि से विशेष महत्त्व है। अनाकलित साहित्य रत्नाकर में रत्न की तरह बिखरा पड़ा है। श्रीमानप्पा शास्त्री ने वत्सरारम्भ के निवेदनों में प्रायः पत्र-पत्रिकाओं के महत्त्व की चर्चा करते रहते थे। एक श्रेष्ठ पत्र-पत्रिका को प्राप्त कर पाठक उसे आद्यन्त पढ़े बिना आहार-विहार आदि का परित्याग कर देता है। ऐसी पत्र-पत्रिकाओं के लिए किया गया धन-व्यय निरर्थक नहीं होता है। जिनका सुन्दर-सम्पादन, सुनियोजित विषय-संचयन रहता है, उनकी तुलना में धन की सार्थकता कहाँ ? यथा—

ते तु विषया आहारविहारादयो नैकविधाः किन्तु तेषु नैकोऽपि सुसरलरसवद्वाग्विलासमयीनां मासिकपत्रिकाणां तुलामधिरोपयितुं योग्यः। अतएव भूयानल्पीयान्वा व्ययो मासिकपत्र-पत्रिकादीनां प्रमोदैकनिकेतनानां कलान्तरेऽप्यहीनरसानां विषयाणां कृते सोऽवश्यं विधातव्यः[1] ।

उपर्युक्त मुख्य कारणों से संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं की उपयोगिता है। आज इस जागरण के युग में संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं की और अधिक उपयोगिता बढ़ रही है। विभिन्न रुचि वाले मनुष्यों को तदनुकूल सामग्री प्रदान करने

---

१. संस्कृतचन्द्रिका ५.१

के कारण उनकी उपादेयता है। **मंजुभाषिणी** पत्रिका में संस्कृत पत्रिका की परिभाषा करते हुए कहा गया है—

'पत्रिका हि नाम सुहृदामादरमेकमेव शरणयन्ती नरपतिरिव जनानुरागं विभिन्नरुचिषु सर्वेषु कान्तमात्मीयं पश्यत्सु पत्रिका ग्राहकेष्वावलम्बनम्'।[1]

इस प्रकार साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं का अनेक दृष्टियों से महत्त्व है। यद्यपि समय पर प्रकाशन संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं का नहीं हो पाता है तथापि उनका महत्त्व कम नहीं होता। 'यथाकालप्रकाशो संस्कृतभाषामयीनां साम्प्रतिकीनां मासिकपत्रिकाणां दोषः'[2] होनें पर भी पत्र-पत्रिका सम्पादक की **बहिश्चरप्राण** की तरह होती है। अतः इनका महत्त्व अनेक प्रकार से है। मंजुभाषिणी में पत्रिका का विशेष महत्त्व प्रतिपादित किया गया है, उससे विभिन्न रुचि की तृप्ति होती है। महाकवि कालिदास का नाट्य के प्रति कथन पत्र-पत्रिकाओं के प्रति भी सार्थक है।

पत्रं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम्।

अर्थात् पत्र-पत्रिकाओं से भिन्न भिन्न रुचिवाले मनुष्यों का समाराधन होता है, क्योंकि इनमें विविध प्रकार का वाङ्मय सतत प्रकाशित होता रहता है। पत्रकारिता का महत्त्व अयत्नविहित है। यह एक सर्वश्रेष्ठ जन सेवा है। यथा—

'पत्रिका नाम नो वणिग्वृत्तिर्न च शासनाधिकारो न वा धनपिशाचाराधनकल्पो नैव भिक्षावृत्तिर्याचकत्वं पौरोहित्यं वा पत्रकारिता तु तावल्लोकसेवायज्ञाङ्कितपोकर्मोपासनायोगाभ्यासोऽन्यायविरुद्धं युद्धं जननेतृत्वमपि शिक्षकत्वमिव किमपि विचित्रं सत्कर्म।[3]

इस विचित्र सत्कर्म की प्रतिष्ठा नव-साहित्य के प्रकाशन से सम्भाव्य है। ऋणार्णव समुपस्थित होने पर भी इसके महत्त्व को ही ध्यान में रखकर सम्पादकों ने इनका प्रकाशन बन्द नहीं किया है। रसिकों को आनन्दित करने वाली संस्कृत पत्रकारिता श्रेयस्करी है।

समाचार प्रधान पत्रकारिता का महत्त्व कम नहीं है। इसमें भले ही चिरसाहित्य का प्रकाशन अत्यल्प होता है तथापि निर्बल को सबल, उदीसीन को उत्साही, लघु को गुरु और अज्ञ को विद्वान् बनाने में इनका महत्त्व है। यथा—

समाचारपत्राण्येव निर्बलान् सबलयन्ति निरुत्साहानुत्साहयन्ति लघून् गरयन्ति अज्ञांश्च विद्वदयन्ति[4]।

---

१. मंजुभाषिणी १.१,
२. मित्रगोष्ठी ३.८
३. दिव्यज्योतिः १.१२ पृ० १२
४. सूर्योदयः ८.२-३

यद्यपि संस्कृत में समाचार पत्रों का महत्त्व नगण्य है क्योंकि पाठक दैनिक अथवा साप्ताहिक पत्र की अपेक्षा संस्कृत की मासिक पत्र-पत्रिकाओं को ही अधिक उपादेय समझते हैं। यह तथ्य अनेक सम्पादकों को भलीभाँति अवगत रहा है। यथा—

ग्राहकैः साप्ताहिकपत्रापेक्षया मासपत्राण्येव भावसम्पदा अर्थगौरवेण आकारसौन्दर्येण भाषामाधुर्येण च साधीयांसि स्वादीयांसि गरीयांसि चेति।[1]

अतः समाचार प्रधान पत्रों की अपेक्षा संस्कृत में मासिक पत्रिकाओं का अधिक महत्त्व है। प्रादेशिक मैत्री संवर्धन, जागरण आदि इन पत्र पत्रिकाओं में वर्णित होता है। यथा—

उत्पथगामिनः अन्यायकारिणः अधिकारिवर्गस्य सन्मार्गप्रापणाय दोषाविष्करणाय नीतिपाठशिक्षणाय चिरकालीनाज्ञानभीतिदास्यधी-आलस्यादिनैकरोगपरिक्षीणसमाजरुजाविचिकिच्छायै च पत्रिका एव जीवातवः।[2]

आज भी अनेक तपस्वी सम्पादकों के हाथ संस्कृत पत्रकारिता यथेष्ठ सुरभारती की सेवा कर रही है। अप्पाशास्त्री ने संस्कृतचन्द्रिका में पाठकों से नम्र निवेदन करते हुए कहा था कि पत्रिका का बालिका की तरह लालन, कीर्ति की तरह पालन और कान्ता की संरक्षण करना चाहिये। यथा—

बालेव लाल्यतामेषा पाल्यतां निजकीर्तिवत्।
कान्तेव रक्ष्यतां धीराः सततं निजसन्निधौ॥

संस्कृत के विकास के विषय में जो प्रश्न है, उनके बारे में बहुत सा स्थान इन पत्र-पत्रिकाओं में दिया गया है। संस्कृत की राष्ट्रभाषा योग्यता, संस्कृत का सरलीकरण, संस्कृत-शिक्षा की पद्धतियाँ, संस्कृत की महत्ता, संस्कृत की वर्तमान दुर्दशा, संस्कृत विद्यालय आदि विषयों के संबंध में इनमें कई बार लिखा गया है।

इन पत्र-पत्रिकाओं की उपादेयता उनमें प्रकाशित साहित्य के कारण अधिक है। संस्कृत भाषा में रचना का प्रवाह उसी प्रकार आज भी उपलब्ध होता है जैसा कि आज से हजारों वर्ष पूर्व था। आधुनिक युग में संस्कृत साहित्य की अनेक विकासमयी प्रवृत्तियों का परिचय पत्र-पत्रिकाओं के द्वारा प्रतीत होता है। पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित रचनाओं के चयन से स्पष्टतया यह ज्ञान होता है कि आज का कवि या नाटककार उसी परम्परागत शैली में रचना करने का प्रयास कर रहा है, जिसकी प्रतिष्ठा कालिदास, बाण, भवभूति आदि कवियों ने किया था।

---

१. मधुरवाणी १२.१
२. वही० ११.६-१२ पृ० ४

संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं में विभिन्न प्रकार की रचनाओं का प्रकाशन होता रहा है। इन पत्र-पत्रिकाओं में लघु कवितायें, छोटी कहानियाँ तथा उपन्यास आदि प्रकाशित हुये हैं, साथ ही निबन्धों और सम्पादकीय टिप्पणिओं में समकालीन घटनाओं, सामाजिक प्रश्नों, नये परिष्कारों और परिवर्तनों पर भी पर्याप्त प्रकाशन डाला गया है। विभिन्न प्रकार की आधुनिक प्रवृत्तियाँ इनसे पल्लवित हुई हैं। महाकाव्य, कथा, उपन्यास, नाटक, खण्डकाव्य, चम्पू, इतिहास और जीवनी, व्यंग्य और विनोद, भ्रमणवृत्तान्त, स्तुतियाँ, अनुवाद और रूपान्तर, व्याकरण, सूत्र, अन्योक्ति, समस्यापूर्ति, शोध-निबन्ध, समालोचना, बालसाहित्य, टीका, नीति और उपदेश, दार्शनिक और धार्मिक ग्रन्थ, करुणगीत, लहरी, प्रहेलिका, कूट-आदि प्रकार की रचनायें संस्कृत पत्र-पत्रिकाओ में प्रकाशित हुई हैं। डा० राघवन् ने पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित साहित्य का विवेचन करते हुए उनके विविध स्वरूप का दिग्दर्शन और उपादेयता निम्न प्रकार से बतलाया है—

संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं में विविध प्रकार के विषयों की चर्चा की गई है। इसका कुछ अनुमान इन नमूनों से किया जा सकता है। जर्मनी में शिक्षा, रिक्शा और रिक्शेवाले की दयनीय स्थिति में सुधार, भारत में पशुधन की वृद्धि, सन्तति निरोध, भावी अकाल का भय, किसान का भाग्य, अणु-शक्ति का शान्तिपूर्ण उपयोग, राष्ट्रीय और अन्तः मैत्री संवर्धन आदि विषयों की पूर्ण चर्चा रहती है।[1]

भारतीय साहित्य के विविध रूपों की सम्प्राप्ति इन पत्र-पत्रिकाओं में होती है। संस्कृत के संरक्षण के साथ ही उसकी सार्वत्रिक उपयोगिता भी चर्चित हुई। संस्कृत केवल पूजापाठ अथवा श्राद्धपक्ष की भाषा न होकर लोक व्यवहार की भाषा होने में सभी दृष्टियों से समर्थ और महत्त्वपूर्ण है। इस महत्त्वपूर्ण तथ्य की अभिव्यक्ति विद्योदय, संस्कृतचन्द्रिका, सूनृतवादिनी, मंजुभाषिणी आदि पत्र-पत्रिकाओं में हुई है। इन तत्त्वों का विवेचन असाधारण प्रतिभा सम्पन्न सम्पादकों ने अनेक बार किया है और भरपूर प्रयत्न संस्कृत के संवर्धन में लगाया है। साम्प्रदायिक संघर्षों से अलग रहकर भी श्रेष्ठ सम्पादकों ने संस्कृत की भावात्मक एकता का प्रचार और प्रसार किया है। संस्कृत की आध्यात्मिकता के साथ ही उसकी भौतिक उपयोगिता का महत्त्व भी बताया गया। पौर्वात्य, पाश्चात्य सभी विधाओं को अपना कर उसे समृद्ध बनाया। इस दृष्टि से संस्कृत की शब्दराशि बढ़ती रही है। नये नये आविष्कारों के लिये नये पद-

---

१. आज का भारतीय साहित्य पृ० ३३०

प्रयोगों का प्रचलन इनमें सम्पन्न हुआ। प्राचीन और नवीन विषयों का समन्वय भी हुआ। इस प्रकार के विषयों का वर्णन करते समय सम्पादकों का असाधारण भाषा-प्रभुत्व एवं प्रखर पाण्डित्य प्रतीत होता है।

प्रारम्भ से ही संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं की बद्धमूल धारणा रही है जिस प्रकार संस्कृत को मृतभाषा कहना व्यर्थ है उसी प्रकार उसकी उपयोगिता न मानना गज-निमीलित है। इसी प्रकार संस्कृत को धर्म विशेष के पिजरे में बन्द करना कोरी अज्ञानता है। संस्कृत केवल धार्मिक कार्य-कलापों अथवा पुरोहित की बपौती अथवा श्राद्ध तक सीमित भाषा नहीं है अपितु धार्मिक व्यवहार आदि की भाषा होने पर भी लौकिक व्यवहार की भाषा है। उसमें क्षमता है, अनन्त शब्द-राशि है और असीमित प्रयोग क्षेत्र है। अतः व्यावहारिक प्रयोग-योग्यता के लिए सम्पादकों ने अभिनव उपक्रम प्रारम्भ किये। इतना अवश्य है कि संस्कृत का राज्याश्रय से जितना अधिक कभी सम्बन्ध था, आज वह उतना ही अधिक दूर है। अतः राज्याश्रय और लोकाश्रय के अभाव में इस युग में भी उसके क्रमिक विकास की सतत प्रवाहमयी धारा विलीन या अवरुद्ध नहीं है। कभी कभी वह अन्तः सलिला सरस्वती की तरह लुप्तप्राय भले हो जाती है। संस्कृत की उपयोगिता तथा व्यवहार क्षमता का ही आधार लेकर शताधिक पत्र-पत्रिकायें प्रकाशित हुई हैं।

नवीन विचार धारा का प्रथम प्रवाह संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से आया। अर्थनाश और मनस्ताप रहने पर भी वैचारिक संघर्ष के युग में संस्कृत के मनीषियों ने सुव्यवस्थित प्राचीन परम्परा का तथ्यान्वेषण किया। नवीन विचारों से प्रभावित होने पर भी अतीत का गान सर्वत्र मिलता है। इस नवीन विचार धारा से सम्पृक्त विविध साहित्य का निर्माण एवं प्रकाशन पत्र-पत्रिकाओं में है। किसी भी प्रदेश की पत्र या पत्रिका का लेखक क्यों न हो, वह अपनी प्राचीन वैभवपूर्ण परम्परा से अनुस्यूत रहकर नवीन विधाओं का स्वागत करता है। अतः संस्कृत में नवचेतना फूँकने का कार्य पत्र-पत्रिकाओं द्वारा ही हुआ है। इसलिए उनका उनमें प्रकाशित विविध वाङ्मय की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण स्थान है। उत्तमशैली, उदात्त विषय, समुचित एवं समयोचित सदुपदेश तथा ऐक्य-स्थापन की दृष्टि से भी संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं का महत्त्व है।

अतः संस्कृत पत्रकारिता **बहुजनहिताय** और **बहुजनसुखाय** है। किसी भी भाषा की प्रगति के लिए पत्र-पत्रिकायें बहुत उपयोगी हैं। यद्यपि संस्कृत के विकास का प्रश्न नहीं है, क्योंकि यह समृद्धतम भाषा है तथापि उसके

प्रचार और प्रसार से लिए पत्र-पत्रिकायें सर्वश्रेष्ठ साधन हैं। आज भी जितनी संस्कृत पत्र-पत्रिकायें प्रकाशित हो रहीं हैं, वे इस बात के पुश्कल प्रमाण प्रस्तुत करती हैं कि संस्कृत का पठन-पाठन और लेखन पूर्ववत् विद्यमान है, भले ही कालिदास, भवभूति के समान महनीय साहित्य का सृजन नहीं हो रहा है, परन्तु अजस्र प्रवाह आज भी प्रवाहित हो रहा है।

कुछ पत्र-पत्रिकायें प्रथम अंक के पश्चात् न प्रकाशित हो सकी हैं। इसमें आर्थिक कष्ट के साथ ही महनीय सम्पादकीय नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा का न होना भी प्रतीत होता है, क्योंकि पत्र-पत्रिका की सफलता सम्पादक पर निर्भर रहती है, न कि अन्य तत्त्वों पर। सम्पादन सम्पादक की बहुविध प्रतिभा पर ही आधारित है। अतः सामान्यस्तर के सम्पादकों के कारण भी पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन बन्द हुआ है। सफल और श्रेष्ठ सम्पादकों के सहयोग से पत्र-पत्रिकाओं की प्रगति में अनेक बाधायें आने पर भी उनका प्रकाशन स्थगित नहीं हुआ है। सम्पादक पुरोधा होता है। उसे भूत का अनुभव, भविष्य का आभास और वर्तमान का ज्ञान रहता है। सम्पादक समस्त कार्य करते रहें है। इससे सन्त्रस्त होकर भी कतिपय सम्पादक सम्पादन कर्म से अलग हुए। यथा—

पत्र-पत्रिकाणां सम्पादका महता श्रमेण स्वयमेव लेखनकार्यं सम्पादनकर्म धनार्जनं मुद्रणव्यवस्थां च कुर्वतो ग्राहकवैरल्याद्धनदौर्बल्यात् सहयोगसहकारभावाच्च विवशतया हतोत्साहाः सन्तो विरमन्ते।[1]

परन्तु संस्कृत के अनेक ऐसे भी सम्पादक रहे हैं, जिन्होंने यावज्जीवन अनेक कष्ट सहन कर भी अङ्गीकृत कार्य का परित्याग नहीं किया है। संस्कृत भाषा के पुनरुज्जीवन और उसकी समृद्धि के लिये हजारों कष्टों को सहन किया है। हृषीकेश भट्टाचार्य, सत्यव्रत सामश्रमी, अप्पाशास्त्री, पुन्नशेरि नीलकण्ठ शर्मा आदि उन्नीसवीं शती के श्रेष्ठतम सम्पादक थे, जिनकी विमल कीर्तिपताका-पत्रिका आज भी तथैव दिगन्तव्यापिनी है। इनका अभिमत मत रहा है संस्कृत का अभ्युदय पत्र-पत्रिकाओं पर निर्भर है और तभी सही अर्थों में भारत की उन्नति कही जायगी। यथा—

यावच्च नारोहत्यभ्युदयं भगवती संस्कृतभाषा दूर एव तावद्दूराधिरोहिणी भारतोन्नतिप्रत्याशेति। निपुणमेतदवधार्यतां प्रज्ञावद्भिः यत् संस्कृतभाषाभ्युदयश्च प्राधान्यतः संस्कृतपत्रिकास्वायतते। अत एव प्रार्थयामहे रसिकान्यदवश्यं संगृह्य प्रकाश्यतां संस्कृतभाषागतमात्मनो निर्व्याजं प्रेमेति।[2]

---

१. दिव्यज्योतिः १.१२ पृ० ३

२. संस्कृतचन्द्रिका १२:६ पृ० १४१

इस निर्व्याज प्रेम का प्रकाशन सतत पत्र-पत्रिकाओं के अवलोकन से प्रतीत होता है। ऐसे सम्पादकों के लिये पत्र-पत्रिकायें जीवन थीं। यथा—

'नूनं नास्तीदृशं किमप्यस्माकमनुष्ठेयान्तरं यन्नाम परित्यज्यैनां क्षणमपि प्राधान्येनावलम्ब्येत्। **चन्द्रिका हि नाम परे प्राणा** अस्माकम्।'[1]

यदि वैजयन्तीं न पश्यामि तदा मम रात्रौ नैव निद्रा दिवा नैव भोजनं रुचिकरं भवति। **मम वहिश्चरप्राणायते सा संस्कृतपत्रिका**[2]।

इस प्रकार महनीय सम्पादकों ने संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं और संस्कृत भाषा के प्रचार, प्रसार और पुनरुज्जीवन के लिए सतत प्रयत्न किया। **रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातम्** की भावना और संस्कृत का अतीत आदर्श उनके समक्ष था। युगीन भावना का समावेश रहने पर भी वे लेखकों, पाठकों को सदैव अपने अतीत का स्मरण करा कर संस्कृत भाषा की उन्नति के लिए तत्पर रहे। **अप्पाशास्त्री** का निम्न उद्बोधन महनीय है। यथा—

क्वेदानीं सरससरसानामपि नितान्तमनवद्यानां दुरितगिरिनिर्दलनवज्रायमाणपठनानां श्रीमद्रामायणमहाभारतादीनां रचयितारो वाल्मीकिव्यासचरणादयो महामुनिप्रवरा यानेव किलोपघ्नानवलम्ब्य सुखं प्ररुढा पल्लविता विस्तृता पुष्पिता फलितप्राया च शाखाशतसहस्रैरशेषमपि भारतं वर्षं व्याप्तवती भगवती देववाणीकल्पलता। चिरायैव खल्वयमतीतः कालः स्मरणमपि यस्य समुदञ्चयति रोमाञ्चमङ्गेषु स्वदेशभक्तानां पातयत्यश्रूणि रुघ्नाति च क्षणं कण्ठम्। हा धिक् क्वेदानीं तत्तादृशं वैभवं गीर्वाणभाषाया इति।

सुदूरं तावत्तिष्ठत्वयं समयः। ततोऽर्वाचीनकालेऽपि क्षितिपालैः किल संरक्षिताः संस्कृतभाषायाः प्राणाः परिवर्धिता कान्तिरुज्जृम्भिता गुणनिकराः समुज्ज्वलिता अलङ्काराः सुदूरमुत्सारिता दोषनिकुरम्बा हृदयङ्गमत्वमनुप्रापितानि रीतिजालानि मनोहरत्वमुपनीता वृत्तयो माधुर्यमनुप्रापिताश्च ध्वनयः। येषामेव च प्रसादभाजनतामुपगता मनोज्ञपदविन्यासा निखिलरसविलाससविशेषकमनीया विमलतरगुणजालहृदयहारिणी नैकविधरुचिरालङ्कारसमधिकसमुज्ज्वला प्रकृतिरमणीया नवविलासनीव केषां न वशीकृतवती हृदयानि भगवती गैर्वाणी वाणी।

सम्प्रति दुरपनेयं वज्रलेपनिर्विशेषं च पुनरेतद्दूषणमार्यवशीयानां यत्पश्यतां जीवितामेव चैतेषां मृतप्रायतामुपगता संस्कृतवाणीति। अहो निरपत्रपत्वमार्याणां यदेते सुललितामपि भगवतीं संस्कृतभाषां मृतभाषेति वदन्तो नांशतोऽपि लज्जन्ते। संस्कृतभाषा चेयमधिदैवतं भवत्पितृपितामहप्रभृतीनाम्। तन्नो-

१. संस्कृतचन्द्रिका ११.१-४

२. मधुरवाणी [गदग] १.१

चितमिदमिदानीमस्यामौदासीन्यं भवताम्। अद्यापि किल नेयं सर्वांशतो नामशेषतामनुप्राप्ता, अद्यापि प्रसरति श्रीमतां वचनविषयिणी शक्तिः, किमधिकमद्यापि खलु विद्यते भवतां चेतना नाम। सम्प्रत्यपि हि प्रादुर्भवन्ति हृदयङ्गमा दर्शनप्रबन्धानामभिनवा व्याख्या। इदानीमपि सम्भवन्ति सहृदयाह्लादकानि नवनवानि काव्यरत्नानि अधुनापि कृतार्थयन्ति श्रवणकुहरं पण्डितानामुपन्यासाः। किन्तु नैते यथापूर्वमाविर्भवन्तीति नूनमत्र साहायाभाव एव निदानम्। आर्याः सुनिपुणं तावद् विचार्यतामेतद् वितीर्यतां च यथार्हं यथासमयं च साहाय्यं निराक्रियतामयशः सम्पाद्यतां संस्कृतभाषायाः पुनरुज्जीवनजन्यं श्रेयः समलंक्रियतां च वंश आर्याणाम्। वान्यदुच्यतामस्माभिस्तदुज्जीवनायासक्लेशसहस्रं सोढुं सज्जा भविष्याम इति शम्।[1]

—:०:—

१. मंजूषा १.४ पृ० ५२-५५

परिशिष्ट

काल-क्रमानुसार संस्कृत और संस्कृत मिश्रित पत्र-पत्रिकायें

उन्नीसवीं शती

प्रकाशन समय सन्	पत्र-पत्रिका का नाम	प्रकाशन स्थल
१८६६	काशीविद्यासुधानिधि:	वाराणसी
१८६७	प्रत्नकम्रनन्दिनी	वाराणसी
१८६७	धर्मप्रकाश:	आगरा
१८७१	विद्योदय:	लाहौर
१८७५	सद्धर्मामृतवर्षिणी	आगरा
१८७५	प्रयागधर्मप्रकाश:	प्रयाग
१८७५	षड्दर्शनचिन्तनिका	पूना
१८७८	विद्यार्थी	पटना
१८७८	काव्येतिहाससंग्रह:	पूना
१८७८	आर्यविद्यासुधानिधि:	कलकत्ता
१८७९	कामधेनु:	वाराणसी
१८८०	धर्मनीतितत्त्वम्	पटना
१८८२	काव्यनाटकादर्श:	धारवाड़
१८८२	आर्य:	लाहौर
१८८३	धर्मोपदेश:	बरेली
१८८३	विज्ञानचिन्तामणि:	पट्टाम्बि
१८८५	ब्रह्मविद्या	नांदुकावेरी
१८८६	श्रुतप्रकाशिका	कलकत्ता
१८८७	आयुर्वेदोद्धारक:	मथुरा
१८८७	लोकानन्ददीपिका	मद्रास
१८८७	आर्यसिद्धान्त:	इलाहाबाद
१८८७	द्वैभाषिका	जैसोर
१८८७	ग्रन्थरत्नमाला	बम्बई
१८८८	विद्यामार्तण्ड:	प्रयाग
१८८९	उषा	कलकत्ता
१८९०	पीयूषवर्षिणी	फर्रुखाबाद
१८९०	अरुणोदय:	कलकत्ता
१८९१	मानवधर्मप्रकाश:	कलकत्ता
१८९२	सकलविद्याभिवर्धिनी	विजगापट्टम
१८९३	संस्कृतचन्द्रिका	कोल्हापुर
१८९३	काव्याम्बुधि:	बेंगलोर
१८९३	श्रीपुष्टिमार्गप्रकाश:	बम्बई
१८९५	आर्यावर्ततत्त्ववारिधि:	कलकत्ता
१८९५	संस्कृत टीचर	गिरगांव
१८९५	कवि:	पूना
१८९५	प्रयागपत्रिका	प्रयाग
१८९५	सहृदया	मद्रास
१८९६	श्रीवेंकटेश्वरपत्रिका	मद्रास
१८९६	काव्यकादम्बिनी	लश्कर
१८९६	संस्कृतपत्रिका	पदुकोटा
१८९७	काव्यकल्पद्रुम:	बेंगलोर
१८९७	भारतोपदेशक:	मेरठ
१८९७	काव्यमाला	बम्बई
१८९८	पण्डितपत्रिका	वाराणसी
१८९८	चिकित्सासोपान	कलकत्ता
१८९९	साहित्यरत्नावली	पट्टाम्बि
१८९९	शास्त्रमुक्तावली	कांची
१८९९	कथाकल्पद्रुम:	कोल्हापुर

१६००	मंजुभाषिणी	कांचीवरम्
१६००	समस्यापूर्तिः	कोल्हापुर
१६००	विद्वत्कला	लश्कर
१६००	देवगोष्ठी	हरिद्वार
१६००	विद्यार्थिचिन्तामणिः	कुट्टूर (केरल)

बीसवीं शती

१६०१	ग्रंथप्रदर्शिनी	मद्रास
१६०१	श्रीकाशीपत्रिका	काशी
१६०१	भारतधर्मः	चिदम्बरम्
१६०२	ब्रह्मविद्या	चिदम्बरम्
१६०२	विचक्षणा	पेरुदुम्बूर
१६०२	रसिकरंजिनी	कोटिलिंग-पुरम्
१६०३	सूक्तिसुधा	वाराणसी
१६०३	वैष्णवसन्दर्भः	वृन्दावन
१६०४	संस्कृतरत्नाकरः	जयपुर
१६०४	मित्रगोष्ठी	वाराणसी
१६०५	मिथिलामोदः	विहार
१६०५	विद्वद्गोष्ठी	काशी
१६०५	विशिष्टाद्वैतिनि	श्रीरंगम्
१६०६	केरलग्रंथमाला	मलावार
१६०६	विद्याविनोदः	भरतपुर
१६०६	सद्धर्मः	मथुरा
१६०६	सहृदया	त्रिचनापल्ली
१६०६	सूनृतवादिनी	कोल्हापुर
१६०६	विश्वश्रितः	मद्रास
१६०६	वीरशैवप्रभाकरः	मद्रास
१६०६	विद्यावति	मद्रास
१६०६	मनोरंजिनी	मद्रास
१६०६	वीरशैवमतप्रकाशः	पूना
१६०६	भारतदिवाकरः	अहमदावाद
१६०७	जयन्ती	केरल
१६०७	विद्वन्मनोरंजिनी	कांचीवरम्
१६०७	षड्दर्शिनी	श्रीरंगम्
१६०६	आर्यप्रभा	कलकत्ता
१६१०	पुरुषार्थः	नरंगुद
१६१०	साहित्यसरोवरः	काशी
१६१०	विद्यारत्नाकरः	काशी
१६१०	अमरभारती	केरल
१६१२	हिन्दूजनसंस्कारिणी	मद्रास
१६१३	आयुर्वेदपत्रिका	दिल्ली
१६१३	उषा	हरिद्वार
१६१३	शारदा	इलाहाबाद
१६१४	बहुश्रुतम्	वर्धा
१६१४	व्याकरणग्रंथावली	तंजौर
१६१६	गीर्वाणभारती	अहमदाबाद
१६१८	संस्कृतभारती	वाराणसी
१६१८	मित्रम्	पटना
१६१८	संस्कृतसाहित्य-परिषत्पत्रिका	कलकत्ता
१६१६	संस्कृतमहामण्डलम्	कलकत्ता
१६१६	जिनमतप्रकाशिका	मैसूर
१६२०	संस्कृतसाकेतः	अयोध्या
१६२०	सरस्वतीभवनग्रंथ-माला	वाराणसी
१६२०	सरस्वतीभवना-नुशीलनम्	वाराणसी
१६२०	संस्कृतम्	अयोध्या
१६२३	सुप्रभातम्	वाराणसी
१६२३	सरस्वती	मुक्त्याला
१६२३	आनन्दचन्द्रिका	बेंगलौर
१६२३	द्वैतदुन्दुभिः	विजापुर
१६२४	सूर्योदयः	वाराणसी
१६२४	कामधेनुः	मद्रास
१६२५	श्रीमन्महाराज-कालेजपत्रिका	मैसूर
१६२६	संस्कृतपद्यगोष्ठी	कलकत्ता
१६२६	सुरभारती	वाराणसी
१६२६	उद्यानपत्रिका	तिरुपति
१६२६	सहस्रांशुः	वाराणसी

१९६० जयतुसंस्कृतम्	काठमाण्डू	१९६४ संगमिनी	प्रयाग
१९६० संस्कृतप्रभा	मेरठ	१९६४ ऋतम्भरा	जबलपुर
१९६१ संस्कृतिः	पूना	१९६४ गाण्डीवम्	वाराणसी
१९६१ मधुकरः	दिल्ली	१९६४ संविद्	बम्बई
१९६१ मेधा	रायपुर	१९६५ सनातनधर्मशास्त्रम्	कलकत्ता
१९६२ सागरिका	सागर	१९६५ ऋतम्भरम्	अहमदाबाद
१९६२ मध्यभारती	जबलपुर	१९६५ मालविका	भोपाल
१९६२ गैर्वाणी	चित्तूर	१९६५ संस्कृतस्रोतस्विनी	आगरा
१९६२ सुरभारती	बड़ौदा	१९६६ पाटलश्रीः	पटना
१९६३ विश्वसंस्कृतम्	होशियार-पुर	१९६६ गुंजारवः	अहमदाबाद
		१९६७ संस्कृतसमाजः	कलकत्ता
१९६३ कामेश्वरसिंह-संस्कृतविद्यालय-पत्रिका	दरभंगा	१९६७ मागधम्	आरा
		१९६९ ऋतम्	लखनऊ
		१९७० शिक्षाज्योतिः	दिल्ली
१९६४ संस्कृतसम्मेलनम्	पटना	१९७० प्राची	काशी
१९६४ देववाणी	मुंगेर	१९७० मधुमती	उदयपुर
१९६४ अमृतलता	पारडी	१९७० सुधर्मा	मैसूर
१९६४ कल्याणी	जयपुर	१९७३ विमर्शः	दिल्ली
१९६४ हितकारिणी	जबलपुर	१९७६ प्रज्ञालोकः	बंगलोर

संस्कृत पत्रकारिता पर मेरे निबन्ध

संस्कृतपत्रकारिता (सन् १८६६-१९००)	सागरिका १.१ पृ० ७६-८६
,, (सन् १९००-१९२०)	,, १.२ पृ० १७३-१९३
,, (सन् १९२०-१९३०)	,, २.१ पृ० ६५-८४
,, (सन् १९३०-१९३५)	,, २.३ पृ० १९३-२१४
,, (सन् १९३५-१९४०)	,, २.४ पृ० ३३७-३५६
,, (सन् १९४०-१९४५)	,, ३.१ पृ० ८५-६९४
,, (सन् १९४०-१९४५)	,, ३.२ पृ० ९५-१०६
,, (सन् १९४५-१९५०)	,, ३.४ पृ० ३४९-३७३
,, (सन् १९५०-१९५५)	,, ४.३ पृ० २५७-२८०
संस्कृते प्रथमपत्रम्—मालवमयूरः	सं० २०२० पृ० १७-२१

हरिद्वारतः प्रकाशिताः संस्कृतपत्र-पत्रिकाः गुरुकुलपत्रिका, सन् १९६४ पृ० २४३-२४५

पुस्तक-सूची

History of the Classical Sanskrit Literature :
M. Krishnamachariar.

History of Indian Literature : M. Winternitz.

Bengal's Contribution to the Sanskrit Literature :
C. Chakravarti.

Modern Sanskrit Literature : Dr. V. Raghavan.

Annual Report of the Registrar : A News papers for India. Part I-II, 1961

Government of India Report of the Sanskrit Commission

Nifor Guide to Indian Periodical 1955-1956.

National Library India Catalogue of periodicals, Newspapers, Gazettes, 1956.

The Indian National Bibliography. 1958, 59, 60, 61.

Journal of the Ganganath Jha Research Institute, Vol. XIII.

The Rise and Growth of Hindi Journalism :
Dr. Ram Ratan Bhatnagar.

Modern Sanskrit Writings : Dr. V. Raghavan.

India What can it teach us : F. Max Muller.

Kerala's Contribution to the Sanskrit Literature :
K. Kunjunni Raja.

A Supplementary catalogue of the Sanskrit, Pali and Prakrit Books in the Library of the British Museum, Part I, II and III

British Union Catalogue for Periodicals.

List of Periodicals received in the Imperial Library, Calcutta.

अर्वाचीन संस्कृत साहित्य : डा० श्रीधर भास्कर वर्णेकर

आज का भारतीय साहित्य : सम्पादक : सर्वपल्ली डा० राधाकृष्णन्

संस्कृत के विद्वान् और पण्डित : रामचन्द्र मालवीय

हिन्दी के सामयिक पत्रों का इतिहास : राधाकृष्णदास

हिन्दी पत्रकारिता विविध आयाम : डा० वेद प्रताप वैदिक

सरस्वती : हिन्दी पत्रिका

नामानुक्रमणिका

——:o:——